॥ श्रीः ॥

कुलोचितधर्मशिक्षा

भाषा टीका समेत ।

जिसमें

चारोंवर्णों के कर्म की प्रधानता श्रीशङ्कराचार्य्य जीको जैनबौद्धादिकों के मतको श्रुतिस्मृति पुराणों से खण्डन करके दिग्विजयके इतिहास व गौतम महर्षिके शाप से पाखण्ड मतकी उत्पत्तिका वृत्तान्त और अनेक प्रकार के धर्म्मों का कथन भलीभांति वर्णित है

जिसको

मालिक मतवाने उन्नाम प्रदेशान्तर्गत बरौंड़ा ग्राम निवासि सामवेदी दीक्षित पण्डित शिवगोविन्द शर्मा जीसे निर्माण कराई

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी ए, के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर (सी आई ई,) के छापेखाने में छपी

सन् १९१० ई०

कुलोचितधर्मशिक्षा की भूमिका ॥

इस जगत् में सबका हितकारक प्रत्यक्ष यदि कोई सार पदार्थ है तो वेद है यदि किसी पदार्थ को ग्रहण करने योग्य कहकर परिचय दिया जाय तो वेदके सिवाय और कुछ वस्तु नहीं है कल्याणकारिणी यदि कोई अविनश्वर सम्पत्ति अन्वेषण कीजाय तो एकमात्र वेदही ऐसी संपत्तिहै, वर्णाश्रमियों का धर्म्ममूल यदि कुछहै तो यह वेदही है, वेदही आर्यधर्म की भित्ति और एकमात्र अवलम्बनहै सब जाति और सब धर्मको परम शत्रुरूप पापिनी राक्षसी नास्तिकता प्रायः सर्वत्रही उपस्थित है यदि इससे रक्षापानेका कुछ उपायहै तो वेदहै सनातन सिद्धान्त का वेदही एकमात्र आगम परोक्ष वस्तुधर्मादिकों का निर्भ्रान्त सूचनकरेनवाला एकमात्र वेदही है।

आहा हा ! यह वही भारतवर्ष है कि जिसमें लोग धर्म्महीं को अपना सर्वस्व समझते थे सब कामों को धर्मार्थही करते थे और अपने सम्पूर्ण काल को इसीमें व्यतीत करतेथे और हमारे जीवन सर्वस्व यह धर्मरूप (वेद, तन्त्र) महामणि किसीसमय हमारेप्रतिगृह प्रति शरीरमें शिरोरत्नरूप से देदीप्यमान थे सर्वत्र वेद की ध्वनि और असंख्य यज्ञ प्रतिवर्ष हमेशः हुआ करती थीं इसमें किसी प्रकार किसी को शंका नहीं थी देश आस्तिकता तथा धर्म कर्म के प्रभाव से भरा पुरा होरहा था और द्विजातियोंको सार्थ सस्वर वेद संहितायें कण्ठाग्र थीं अब यह समय ऐसा होगया

है कि एक समग्र वेदपाठी काशी काश्मीर, नदिया शांतीपुर तक मिलना मुश्किल है और अबलोग वेद को जानते नहीं कि वेद क्या है? इस ओर कभी उन का ध्यान भी नहीं होता ये कैसे शर्मकी बात है कि- 'शोचिय विप्र जो वेद विहीना, और जो वेद तन्त्र मार्ग था सो भी छूटाजाता है इसधर्म के लोप होने का कारण यह है कि जब से पाखण्ड मत फैलकर श्रीमद्भागवत को प्रकट किया बाद इसके अनेकप्रकार के मतवाले ग्रन्थलोगों ने प्रकट किया उन मतवाले ग्रन्थोंको ब्राह्मणों[1]

१–छठे अध्यायमें यह कहा है कि "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते। वेदाभ्यासाद्भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" इस श्लोक को खण्डनकर चुके हैं परन्तु श्लोक लिखने में रहगयाथा इस वास्ते हम भूमिका में प्रमाण देते हैं और पेश्तर का श्लोक अप्रमाणिक रहा तिस्से हमको यहां पर लिखना पड़ा "जन्मना ब्राह्मणोज्ञेयःसंस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेवच॥ वेदशास्त्राण्यधीतेय शास्त्रार्थंच निबोधयेत्। तदासौ वेदविन्प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम्॥ अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक १३८। १३९ "यह प्रमाण अत्रिजीका है। अगर जो "जन्मना जायते शूद्र." ऐसा पद माना जाय तो ब्रह्माजीभी शूद्रही रहे और मनुस्मृत्यादिक झूंठी मानी जायंगी क्योंकि ब्रह्माजी ने दक्षप्रजापति को दाहिने हाथ के अंगूठे से पैदा किया है और मानसिक दशपुत्रों को भी पैदा किया है सृष्टि रचने के लिये जिनके नाम लिखते हैं " मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम। प्रचेतस्म वशिष्ठञ्च भृगु नारदमेवच॥ यह ब्रह्मा के मानसिक पुत्र हैं तो क्या यह भी शूद्र हैं। और द्विजातियों में जन्म होने के पेश्तर गर्भाधानादि सम्कार होते हैं सम्कार करनेपर तेजवान् होताहै। संस्कार रहित तेजहीन होते हैं सो इसका प्रमाण यही है कि जीवानां ब्रह्मभावा पादनं निर्गति कथ्यते। जीवाश्चब्रह्मणोऽन्यस्तनामिभिश्च इति तेषां॥

देखकर लोभायमान होकर विचार न किया इसी से वेदमन्त्र की रास्ता छूटगई इसी से कलियुग में मनुष्यों को अनेक प्रकार का क्लेश उठाना पड़ता है और इसी से ब्राह्मणों की शाका छूटगई और क्षत्रियों का क्षत्रिय-धर्म छूटगया और वैश्यों का वैश्यपना जातारहा, शूद्र-लोग अनाचार धर्म करने लगे केवल वेद के न मानने से ऐसा लोग क्लेश भोग रहे हैं और हर एक प्रकार से परमेश्वर को दोष लगाते हैं कि परमेश्वर जो करता है सो होताहै परन्तु परमेश्वर कुछ भी नहीं करता केवल अपना कर्म किया हुआ भोगना पड़ता है क्योंकि लिखा है कि–'कर्म प्रधान विश्व करिराखा। जो जस करै सो तस फल चाखा'।

जब इस प्रकार वेदधर्म की ह्रासता देखकर बहुत समय तक मनमेंही विचार करता रहा कि किसप्रकार द्विजातियों के हृदय में फिर वेदधर्म की सुझाई होवै शाखाहरित होकर पल्लवित होजाय और किसप्रकार वैदिक दृढ़ पुरातन रीतियें कर्म रेखाकी समान भारतियों के हृदयमें अङ्कित होजाय किसप्रकार से आलस्य त्यागकर कर्मकाण्डके प्रेमी होजायँ और गौरवता युक्त वेदधर्म की मर्य्यादा पालन करैं अब ऐसे महाशयों के लिये धर्मशिक्षा का सीधे से सीधा उपाय विचारने से बहुधा यही मालूम पड़ा कि जो लोग मतमतान्तरों के विवादमें लोभित होकर अपने पुरुषों के संचित कियेहुये

अमूल्य धर्मरूपी रत्न कांच के समान तुच्छ समझ कर गँवाय रहे हैं इनलोगों के वास्ते 'कुलोचितधर्मशिक्षा' नामकग्रन्थ प्रकाशित होजाय तो इस धर्मशिक्षाको अच्छे प्रकारसे पढ़कर अपने पुरुषों के संचित कियेहुये धर्मको भलीभांति समझकर फिर अपनी पुरानी रीतियों पर आरूढ़ होजायँ और अपने २ सनातन धर्मको जाननेकेलिये परमकारुणिक धर्मधुरीण भार्गववंशावतंस रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायणजी ने सकल लोकोपकारार्थ अपने व्ययसे वेदज्ञ और धर्मशास्त्रके जाननेवाले पण्डित शिवगोविंददीक्षित सामवेदी शर्माजीसे 'कुलोचितधर्मशिक्षा' नामक ग्रन्थको अपनेछापेखाने में मुद्रित कराकर प्रकाशित किया और समस्त वर्णाश्रमीलोग इसग्रन्थको पढ़कर अपनेधर्मको जानकर हमको धन्यवाद देंगे ।

पाठकमहाशयों से प्रार्थना है कि यदि कहीं मात्रा, अक्षर की अशुद्धि पावें तो कृपाकर उसे सुधार लें कारण कि सज्जन गुणग्राही होते हैं मैं स्वयं अशुद्धि से भरा हूं कारण कि 'जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहो तूल केहि लेखे माहीं।

आगमस्यावगाढत्वात् नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन्स्खलितेष्वपवाद्यते ॥ १ ॥

सामवेदोपाध्यायः ।
पण्डित दीक्षित शिवगोविन्द शर्मा.

कुलोचितधर्मशिक्षा का सूचीपत्र।

सातवां अध्याय।

आठवां अध्याय।

दशवां अध्याय।

ग्यारहवां अध्याय।

तेरहवां अध्याय।

चौदहवां अध्याय।

पन्द्रहवां अध्याय।

सोलहवां अध्याय।

इक्कीसवां अध्याय ।

बाईसवां अध्याय ।

तेइसवां अध्याय।

चौवीसवां अध्याय।

पच्चीसवां अध्याय।

छव्वीसवां अध्याय।

अट्ठाईसवां अध्याय ।

उन्तीसवाँ अध्याय ।

तीसवाँ अध्याय।

इकतीसवाँ अध्याय।

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ कुलोचितधर्मशिक्षा ॥

॥ सोरठा ॥

सिद्धि बुद्धिके धाम, हरण अमंगल विघ्न के ।
बारं बार प्रणाम, गणनायक शुभसदन के ॥ १ ॥
नारायणहिं प्रणाम, सुर सेवित नरवर सहित ।
चतुर्वर्गके धाम, असुरनिकंदन देवहित ॥ २ ॥
श्रीशारदहिं प्रणाम, हंसवाहिनी जो सदा ।
बसै सोमम उरधाम, निर्मलमतिहिं प्रकाशिनी॥३॥

॥ दोहा ॥

पाखँडमत मर्दनकरूं, सुनो सुजन मनलाय ।
कहहुँ ढिठाई एक अब, क्षमहु विप्रसमुदाय॥१ ॥

॥ चौपाई ॥

प्रथम बुझाइ कहौं निज नामा ।
संवत देश ज्ञाति पुनि ग्रामा ॥ १ ॥
शिवगोविंद यह नाम हमारा ।
कान्यकुब्ज द्विज वंश उदारा ॥ २ ॥
भागीरथि सुरसरित किनारा ।

अवधदेश यह विदित सँसारा ॥ ३ ॥
नगर बरौड़ा पुरी सुहावन ।
यक योजन भरि गंग सुपावन ॥ ४ ॥
सुनहु तात यह अकथ कहानी ।
समुझत बनै न जात बखानी ॥ ५ ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती ।
मैं संक्षेप कहौं यह नीती ॥ ६ ॥
यहां न पक्ष तात कछु राखौं ।
वेद पुराण संते मन भाखौं ॥ ७ ॥

॥ श्लोक ॥

सम्प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे-
मार्गी शृणोति मननं च परापवादान् ॥
सर्वार्थधर्मनिधिं विमलां श्रुतिं वा-
न श्रद्धया न शृणुते भुवि मन्दबुद्धिः ॥ १ ॥
वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं
नैकोमुनिर्यस्य वचःप्रमाणम् ॥
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां-
महाजनो येन गतः सपन्थाः ॥ २ ॥
इति स्मृतिनिश्चयविप्राणांनियमेदेशकर्मानिति ॥

१ मनु॰ अ॰ २०।

काणःस्यादेकहीनोपिद्वाभ्यामन्धःप्रकीर्तितः३॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १ श्लो० ३४९.

वेद और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र कहे हें इन के मध्यमें एक को जो नहीं जानता वह काणा और जो दोनों को नहीं जानता हो वह अंधा याने दोनो आंखों से यह शास्त्र (वेद में) में कहा हे ॥ ३ ॥

न वृषलैः सह ३४ ॥ गोभिल सू०
[३४ सू० । ३ प्र० ५ का०]
"वृषलैः"

"नशूद्रोवृषलोनाम वेदोहिवृषउच्यते ॥
यस्यविप्रस्यतेनालं सवैवृषलउच्यते ॥"

इत्युक्तःलक्षणैः,शूद्रैर्वा, सहनग्रामान्तरं व्रजेत् । तैश्चकेवलैरेवसह, न संभिश्चैरपि इति बोद्धव्यम् । कुलः १ । निरपेक्षश्रवणात् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेणगर्वितः ॥
तेनैवसचपापेन विप्रःपशुरुदाहृतः ॥ ४ ॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १-श्लो० ३७९ ॥

जो ब्राह्मण वेद के तत्त्वको नहीं जानताहै और जिसे यज्ञोपवीत का अभिमान है उसी पापसे ब्राह्मणको पशु (शूद्र) कहते हैं ॥ ४ ॥

अवधदेश यह विदित सँसारा ॥ ३ ॥
नगर बरौड़ा पुरी सुहावन ।
यक योजन भरि गंग सुपावन ॥ ४ ॥
सुनहु तात यह अकथ कहानी ।
समुझत बनै न जात बखानी ॥ ५ ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती ।
मैं संक्षेप कहौं यह नीती ॥ ६ ॥
यहां न पक्ष तात कछु राखौं ।
वेद पुराण संत[1] मत भाखौं ॥ ७ ॥

॥ श्लोक ॥

यःप्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे-
रागी शृणोति सततं च परापवादान्॥
सर्वार्थदंरसनिधिं विमलांश्रुतिंवा-
नष्टःकुतो न शृणुते भुवि मन्दबुद्धिः॥ १ ॥
वेदाःप्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं
नैकोमुनिर्यस्य वचःप्रमाणम् ॥
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां-
महाजनो येन गतः सपन्थाः ॥ २ ॥
श्रुतिःस्मृतिश्चविप्राणांनयनेद्वेप्रकीर्तिते ॥

१ स्मृतियों से ।

काणःस्यादेकहीनोपिद्वाभ्यामन्धःप्रकीर्तितः३॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १ श्लो० ३४९.

वेद और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र कहे हैं इन के मध्यमें एक को जो नहीं जानता वह काणा और जो दोनों को नहीं जानता हो वह अंधा याने दोनो आंखों से यह शास्त्र (वेद में) में कहा है ॥ ३ ॥

न वृषलैः सह ३४ ॥ गोभिल सू०
[३४ सू० । ३ प्र० ५ का०]
"वृषलैः"
"नशूद्रोवृषलोनाम वेदोहिवृषउच्यते ॥
यस्यविप्रस्यतेनालं सवैवृषलउच्यते ॥"

इत्युक्तःलक्षणैः,शूद्रैर्वा, सहनग्रामान्तरं व्रजेत् । तैश्चकेवलैरेवसह, न संमिश्रैरपि इति बोध्यम् । कुलः १ । निरपेक्षश्रवणात् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेणगर्वितः ॥
तेनैवसचपापेन विप्रःपशुरुदाहृतः ॥ ४ ॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १-श्लो० ३७९ ॥

जो ब्राह्मण वेद के तत्त्वको नहीं जानताहै और जिसे यज्ञोपवीत का अभिमान है उसी पापसे ब्राह्मणको पशु (शूद्र) कहते हैं ॥ ४ ॥

चत्वारोवात्रयोवापियंब्रूयुर्वेदपारगाः ॥
सधर्मइतिविज्ञेयो नेतरैस्तुसहस्त्रशः ॥ ५ ॥
पराशरस्मृतिः—अ० ८—श्लो० १५ ॥

चार वा तीन वेदके पार जाननेवाले जो मनुष्य हैं (वेदपाठी ब्राह्मण) जो येही धर्म कहें सोही ठीक है इतर हज़ार (ब्राह्मण) भी जिसे कहें वह नहीं ॥ ५ ॥

वेदैर्विहीनाश्च पठन्तिशास्त्रं
शास्त्रेणहीनाश्च पुराणपाठाः ॥
पुराणहीनाः कृषिणोभवन्ति
भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ ६ ॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १—श्लो० ३८२॥

वेद जिस मनुष्य को नहीं आताहै वे शास्त्र को पढ़ते हैं और फिर जिस मनुष्य को शास्त्र भी नहीं आताहै वे केवल पुराणही पढ़ते हैं और जिनको पुराणभी नहीं आता वे केवल खेतीही करतेहैं और जिन्होंसे खेती भी नहीं होती है वे केवल मनुष्य भ्रष्ट मार्ग में रत होतेहैं और वैरागी होजाते हैं ॥६ ॥

वेदशास्त्राण्यधीते यःशास्त्रार्थं च निबोधयेत्॥
तदासौवेदवित्प्रोक्तो वचनंतस्यपावनम् ॥७॥
एकोपिवेदविद्धर्मं यंव्यवस्यद्द्विजोत्तमः ॥

सज्ञेयः परमोधर्मोनाज्ञानामयुतायुतैः ॥ ८ ॥
अत्रिस्मृतिः—अ० १—श्लो०—१३९।१४०

जो वेद और शास्त्रको पढ़ै और शास्त्र के (धर्म) अर्थ को बतावै उससमय उस ब्राह्मणको वेदवित् (वेदका जाननेवाला) कहते हैं उसका वचन पवित्र करनेवालाहै एकभी वेद का जाननेवाला द्विजों में उत्तम जिस धर्म का निर्णय करदे वही परमधर्म जानना और मूर्खों (विनावेद के पढ़े) के दश सहस्रों के सहस्र भी जिसे कहें वह धर्म नहीं जानना चाहिये ॥ ७ । ८ ॥

आश्रमास्तुत्रयःप्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा॥
पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैवचोदिता ९ ॥
विष्णुस्मृतिः—अ० ४—श्लो० ११२ ॥

वैश्यों तथा क्षत्रियों के लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ ये तीन आश्रम कहे हैं और केवल ब्राह्मणों के लियेही संन्यासाश्रम कहागया है यह सिद्धान्त श्री विष्णु भगवान्जी ने कहा है अब इस समय इस कराल कलिकालकी महिमासे द्विजातियों ने निज २ आश्रमों को त्यागदिया है और अन्यजातियों ने भी ब्राह्मणों के आश्रमों पर पहुंचने का उद्योग किया है कहोकि उनको कौन हटा सक्ता है अहो प्रियवरो ब्राह्मणो ! उठो उठो क्यों अविद्यारूप महानिशा में अचेत होकर शयन किये

हुए पड़े हो अभी कुछ विगड़ा नहीं है अपने २ धर्मको पहिंचानो कि हमको क्या करना चाहिये ? अबभी निज२ कर्मों के कर्तव्य से अपने २ आश्रमों को पासक्ते हो परन्तु वे आश्रम गुरुजीकी कृपा से मिलते हैं और निज निज कर्मोंके करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनचार पदार्थों के फलकी भी प्राप्ति होती हे अन्यथा नहीं हो सक्ती है क्योंकि वेदमार्ग धर्म की लीक है उसको पकड़ कर जो मनुष्य चलाजाता है वह कभी भ्रममें नहीं पड़ता है देखिये श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है कि"जिमि पाखंड विवादते लुप्तभये सद्ग्रन्थ" इसलिये मनुष्यों को विचारना चाहिये कि हमलोग जिस काम को करते हैं उसका क्या परिणाम होगा ? इसका विचार कोई नहीं करता हे देखिये कर्मविपाकसंहिता व पुराणादिकों में लिखा है कि स्वर्ग, नरक ये २ हैं जो जैसा कर्म करता है वह वैसाही पाता है आजकल जो सृष्टि देख पड़ती है वह द्वापर की है जिसने जैसा कर्म किया हे वह वैसाही भोगता है इससे यह समझना चाहिये कि जो लोग वैदिकमार्ग पर चलते हैं वे सुखी रहते हैं व जिन्होंने पाखण्ड मतको स्वीकार किया है वे दुःख को भोगते हैं याने नरकमें पड़ते हैं इसलिये वैदिक मार्ग को अंगीकार कर बौद्ध. जैन, कपाली और चक्राङ्कित आदि पाखण्ड मतको त्यागना चाहिये अब इसी पर हम एक आख्यायिका कहते हैं कि पुरातनसमय श्री

शाण्डिल्यगोत्रीय परमश्रोत्रीय वेदपारगामी धीमान् गंगाधरजी हुए थे उन्होंने दीक्षायज्ञ किया था उसीसे वे लोक में दीक्षित कहाते हैं और उन्हों ने वानप्रस्थ को जीतकर सन्न्यास लेनेको काशीपुरी को पयान किया था वहां जाकर एक संन्यासी से कहा कि हमको संन्यास देदीजिये उस संन्यासी ने पूंछा कि आप कौन हैं तव गंगाधर शास्त्रीजीने कहा कि हम कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं इसको सुनकर संन्यासी ने कहा कि तुमलोग मांस मछली को खातेहो इसलिये तुमको संन्यासाश्रम नहीं मिलना चाहिये ऐसा वचन सुनकर उक्त महाशयजी मौन होगये फिर थोड़े समयके अनन्तर शास्त्रीजीने वाराणसीपुरी में डुग्गीवाले को बुलवाकर डुग्गी पिटवा दिया कि जिन महाशयों को विद्या का अभिमान होवे लोग लक्ष्मीकुण्डपर आकर सभाकर शास्त्रार्थ करें कि मांसमछली को खाना चाहिये या नहीं यदि खाना चाहिये तो इसमें क्या प्रमाण है? हमने मत्स्य की पताका बांधकर झण्डा गाड़दिया है तदनन्तर काशीस्थ सभी विद्वानों ने आकर लक्ष्मीकुण्डपर सभाकर उक्त शास्त्रीजी से मांस मत्स्य भोजन के विषय में कई दिन शास्त्रार्थ किया था परन्तु पारको नहीं पाकर उक्तशास्त्री जी की प्रशंसाकर मत्स्यपताका को नहीं उखाड़ पाया उस समय समस्त काशीस्थविद्वानों को अवाच्य कर विजय पा शास्त्रीजीने संन्यासी से कहा कि अहो सं-

न्यासी महाशयजी आपने देखा सुना व जाना कि मांस मत्स्यभोजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण ऐसे होते हैं उस समय प्रसन्नहोकर संन्यासी ने कहा कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण धन्यहैं आप संन्यासाश्रम में आजावें ऐसा सुनकर उक्त शास्त्रीजी ने कहा कि अहोसंन्यासिन्! आपका आश्रम भ्रष्टहोगया है हम आपको गुरु नहीं बनासके हैं क्योंकि तुमलोग मांस व मत्स्यकी निन्दा करतेहो इसलिये तुम लोगों को महर्षि गौतम शापित ब्राह्मण जानना चाहिये यदि गौतमशापित ब्राह्मण नहीं होते तो क्योंकर निन्दा करते तुम्हारा पंथ भ्रष्ट होजावै ऐसा शापदेकर काशी से उक्त शास्त्रीजी अपने घरको लौट आये संन्यासाश्रम को नहीं प्राप्त हुए तदनन्तर उन्हीं के पुत्र वीरेश्वर दीक्षित हुए उनके प्रियपुत्र श्रीवाणीविलासजी वि- ख्यात हुए किसी समय चन्द्रग्रहणकी पर्व में उन्होंने काशीपुरी को गमन किया था वहां जाकर कान्यकुब्जों- की निन्दा करते हुए बहुत से मनुष्यों को देखा प्रात काल होतेही अपना नैत्यिक आह्निक कर्म कर नगाड़े वाले को बुलाया व कहा कि सारी काशीपुरी में अपने नगाड़े की ध्वनि करदो और कहना कि लक्ष्मीकुण्ड- पर सभा होगी समस्त विद्वानों को इकट्ठा होकर शा- स्त्रार्थ करना चाहिये उसको सुनकर वाराणसीस्थ सभी विद्वानों ने लक्ष्मीकुण्डपर उपस्थित होकर गोष्ठी किया उस समय वाणीविलासजी ने समस्त विद्वानों से कहा

कि, अहो महाशयजी ! आपलोग कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की निन्दा क्यों करते हैं उन्हों ने क्या अपराध किया है ? उसको सुनकर काशीस्थ विद्वानों ने कहा कि कान्यकुब्ज ब्राह्मणलोग प्रायः मत्स्य मांस भोजी होते हैं इसलिये निन्दनीय हैं यह सुनकर वाणीविलास जीने कहा कि, आपलोग काशी वासी होकर चाण्डाल सरीखे होते हुए झूठ बोलते हैं देखिये वेद, स्मृति और पुराणों में कहा है कि "यज्ञार्थंपशवःसृष्टाः" यज्ञों के लिये पशुगण रचेगये हैं इसीसे " वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति " ऐसा कहागया है पुरातन समय हमारे पितामह श्रीगंगाधर शास्त्रीजी ने इसी विषय पर मत्स्य की पता का बाँधकर झण्डा गाड़ा था उसको किसी ने नहीं उखाड़ा था आजके दिवस हमभी मत्स्यकी पताका बांधकर झंडा गाड़ैंगे आपलोगों में से बड़ा भारी कोई विद्वान् होवे वह प्रमाणदेकर हमारे झंडाको गिरादेवे परन्तु किसी विद्वान् का ऐसा साहस न हुआ जो उस झंडा को गिरादेता काशीस्थ समस्त विद्वानों को पराजित कर वाणी विलासजी अपने धामको आकर प्राप्तहुए उन्हीं के वंशका मैं हूं आजकल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों संस्कारसे रहितहोकर शूद्र के समान होगये हैं जिनको वेद पढ़ने का अधिकार था वे लोग वृथाही कान्यकुब्जों की निन्दा करते हैं परन्तु सम्मुख होकर कोई निन्दानहीं करता है यदि समक्ष में निन्दा

करै तो उसको ज्ञात होसक्ताहै कि निन्दा करने का ऐसा फल होताहै "समूलएव परिशुष्यतियोऽनृतमभिवक्ति" इत्यादि उपनिषदों के प्रमाणों से जो निन्दा करताहुआ झूंठ बोलता है वह जड़समेत सूख जाता है इसलिये अहो प्रियवर ब्राह्मणो! वेद के वचनों पर विश्वास कर अपने २ संस्कारों को करना चाहिये संस्कारतो असंस्कार होगये हैं सन्ध्या गायत्री को छोड़कर ब्रात्य बनकर ब्राह्मणलोग बड़े कुलीन व पण्डित वर बनना चाहते हैं देखिये कहाहै कि॥

ॐकारंपितृरूपेण गायत्रीमातरं तथा।
पितरौयो न जानाति सविप्रस्त्वन्यरेतजः॥ १॥

ॐकार पिता और गायत्री माताहै उन माता पिताओं को ब्राह्मण होकर जो नहीं जानता है वह अपने बापसे पैदा नहीं हुआ उसे वर्णसंकर जानना चाहिये इस प्रमाणसे ब्राह्मणगणों को सन्ध्या वन्दनादि कर्म कर ॐकार समेत गायत्रीको जपना चाहिये कहाहै कि

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलं च सन्ध्या
वेदाःशाखाधर्मकर्मादिपत्रम्।
छिन्नेमूलेनैवशाखानपत्रं
तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयम्॥ २॥

ब्राह्मण वृक्ष है उसकी मूल सन्ध्या है चारो वेद

डालियां हैं और धर्म कर्मआदि पत्ते हैं जिस समय मूल का नाशहोजाता है उससमय शाखायें व पत्ते नहीं रहते हैं इसलिये बड़े उपायों से मूलकी रक्षा करनी चाहिये अहो द्विजवरो ! यह द्विजसंज्ञा तीनों वर्णोंकी है याने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये द्विज कहाते हैं इन को वेद पढ़ने का अधिकार मनुजी ने कहा [illegible] जीवन्नेवशूद्रत्वमा धीत्याद्विजोवेद मन्यत्रकु [illegible] सान्वयः) जो द्विज वेदको नहीं पढ़कर अन्यत्रश्रम करता है याने इंगरेजी, फारसी व अर्बीआदि को जानता है वह वंशसमेत जीताहुआ वेगही शूद्रता को प्राप्तहोता है अहोत्रैवर्णिकलोगो ! आपलोग शूद्र मत बनें वेद विद्याका अभ्यास करें अपने प्रियसन्तानोंको वैदिक षोडशसंस्कारों को कर वेदको पढ़ावें यद्यपि "युगोयंदारुणःकलिः" यह कराल कलियुग महादारुण युग है उसकी महिमासे ब्राह्मणलोग वेदविहीन संस्कारों से रहितहोकर अनाचार परायण होगये तथा क्षत्रिय व वैश्य लोगभी संस्कार विहीनहोकर अपने २ धर्मोंको त्यागकर अधर्मपरायण होगये याने क्षत्रियों तथा वनियों में यज्ञोपवीतका होनाही वन्द होगया है कहते हैं कि हमारे यहां व्याहके उछाहमें जनेऊ पहिराजाता है यह उन लोगोंका कहना असंभवित व महाअयोग्य है देखिये शूद्र लोगोंको तीनोंवर्णोंकी सेवा करनाही लिखागया था वे लोग सूर्यको अञ्जली देते

व ऊंचे आसनपर बैठकर उपदेश देतेहैं उनको देखकर तीनों वर्णोंको लाज नहीं आतीहै अहो त्रैवर्णिकलोगो! तुम लोगोंने अविद्यारूप गाढ़निद्रामें बहुत समय शयन किया है अब उठकर अपने २ धर्मों कर्मों व आचारों को ग्रहण करो तभी तुम लोगोंका भला होगा इन्हीं लोगों को जगाने व वेदमार्ग चलाने के लिये हमने कुछ [illegible] उद्योग किया है—चारो वर्णों में ब्राह्मणही प्रधान गिनाजाता है [illegible] वर्णोंकी सेवा कदापि नहीं करनी चाहिये ॥

अगर जो असल ब्राह्मणहोगा वहहीन वर्ण को कभी भी माथा नहीं नवावेगा याने सेवा नहीं करेगा ॥

शूद्राज्ज्ञानागमःकश्चिज्ज्वलंतमपिपातयेत् ॥
अप्रणामंगतेशूद्रे स्वस्तिकुर्वन्ति येद्विजाः ॥
शूद्रोपिनरकंयाति ब्राह्मणोपितथैवच ॥ १० ॥
अंगिर स्स्मृ० अ० १ श्लो० ५० ॥

और शूद्र से किसी विद्या को लेना प्रतापी मनुष्य को भी पतित करतेहैं शूद्र के प्रणाम किये विना जो द्विज आशीर्वाद देतेहैं वे शूद्र और ब्राह्मण दोनों नरक को जाते हैं ॥

हीनवर्णेचयःकुर्य्यादज्ञानादभिवादनम् ॥ तत्र स्नानंप्रकुर्वीत घृतंप्राश्य विशुद्ध्यति ॥

समुत्पन्नेयदास्नाने भुंक्तेवापिपिवेद्यदि॥ ११॥
अत्रिस्मृतिः अ० १ श्लो० ३१२॥

जो मनुष्य अगर अपने से हीनवर्ण को अज्ञान से नमस्कार याने पूजन करता है तो वह मनुष्य स्नान कर और घीकी आचमन (तीनवार) कर अच्छी तरह से शुद्ध होजाता है॥ ११॥

विद्वानों को चाहिये कि अपने कुलोचित धर्म को (वेद मार्ग) न त्यागन करै, त्याग करने से (वेद मार्ग को छोड़ने से) सूर्य्यनारायणजी के पुत्र (यमराज) दण्ड देने को विद्यमान हैं यह हम चारों वर्णों के लिये कहते हैं केवल ब्राह्मणों के लिये नहीं॥ क्योंकि युगोंका धर्म यहीहै कि मनुष्य अपने २ न्यूनाधिक कर्म करते आये हैं अब इस कलियुगके विषे देखने में ऐसा आता है कि अपने २ धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म में प्रवृत्त होते हैं और अपने गोत्र को छोड़कर दूसरे गोत्र के बनते हैं और अपनी विद्या को छोड़कर दूसरों की विद्या सीख कर अपने धर्म की तिलांजलि देते हैं और जो श्रेष्ठ पुरुष अपने धर्म में प्रवृत्त हैं उनकी हँसी करते हैं तो क्या सूर्य के पुत्र इतने बलवान् यमराज के सामने भी हँसी करैंगे क्या यह सचहै क्या यमराज के यहांपर दण्ड नहीं पावेंगे ये तो कहावति है कि, "दिना चारि की चाँदनी फिरि अंधियारा पाख" दिन रात्रि सब कोई

जानताहै इसीप्रकार सुख और दुःख यही शरीर में भोगना पड़ताहै और स्वर्ग नरक. याने अच्छा कर्म का करने वाला स्वर्ग को जाता है और वेदमार्ग की रास्ता छोड़ कर मनुष्य (बुरा कर्म करने वाले) नरक में जाता है यह सब कोई जानताहै अब ज्यादा कहने से क्या प्रयोजनहै अब हम आगे पूरे तौर से मनुष्यों की परीक्षा को बतलावैंगे॥कि यह मनुष्य नरक में जांयगे और ये मनुष्य स्वर्ग में जांयगे ॥

जो मनुष्य अपने कुलोचित धर्म को करताहै वही मनुष्य स्वर्ग में जाताहै और अपने कुलोचित धर्म को जो मनुष्य छोड़ देताहै तो वह अवश्यही नरक को जाता है इसमें संदेह नहीं है ॥

इति श्रीपंडितशिवगोविंदसामवेदिकृतसभाष्य
कुलोचितधर्मशिक्षायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अब चारो वर्णों की उत्पत्ति वर्णन करते हैं—

प्रकृतिविशिष्टंचातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतःऊरूतद स्ययद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रोऽजायतेतिनिगमोभवति गायत्र्याछंदसा ब्राह्मणमसृजत्त्रिष्टुभाराजन्यंज

गत्यावैश्यं नकेनचिच्छन्दसाशूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायतेत्रिष्वेवनिवासः ॥ १ ॥

स्वभाव और संस्कार की विशेषता से चारो वर्णों की विशेषता हे और यह वेद भी है कि इस ईश्वर के मुखसे ब्राह्मण और भुजाओं से क्षत्रिय और जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र पैदा हुआहे। और गायत्री छंद (वेद) से ब्राह्मण, और त्रिष्टुभछन्द से क्षत्रिय और जगती छन्द से वैश्यको ईश्वरने रचा अर्थात् उक्त वेदके मंत्रों से इनका संस्कार होताहै और शूद्र को ईश्वर ने किसी भी छंद से नहीं रचा इससे शूद्र संस्कार के अयोग्य जाना जाताहै और तीनों वर्णों से ही संस्कार की स्थिति है ॥ १ ॥

विद्वद्भिःसेवितःसद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो योधर्मस्तंनिबोधत ॥ २ ॥

अब सामान्य धर्मका लक्षण कहते हैं कि वेदके जाननेवाले और धर्म के रसिक और राग और द्वेषसे रहित-सज्जनों (ऋषियों) ने किया और हृदय से मुख्य जाना जो धर्म उसको तुम सुनो-इस श्लोक में उक्त ऋषियों ने जाना और हृदय से मुख्य जाना यह कहने से यह सूचितकिया कि यह धर्मही कल्याणका हेतु है-क्योंकि उसीमें रसके ज्ञानसे मन अभिमुख होता है और वेदके जाननेवालोंने जाना-इस कहने से यह सू-

चित किया है कि वेदका जाननाही कल्याणका कारण है क्योंकि कोई यह कहै कि खड्गधारीने मारातो धारा हुआ खड्गही मारने समर्थ है अर्थात् यह सिद्धभया कि वेद है प्रमाण जिसमें ऐसा धर्महीं कल्याण (मोक्ष) का कारण है–सिद्धान्त यह कि (१) "वेदविद्भिर्ज्ञात"– इस विशेषणसे मनुजीने यह सूचित कियाहे कि वेदसे ही से धर्मजानाजाता है–और " हृदयेनाभ्यनुज्ञात ". यह कहने से कल्याणका हेतु धर्महै–और ऐसे धर्मको मन दुहता है–इससे पूर्वोक्तही धर्मका लक्षण मुनियोंने रचा–इसीसे हारीत ऋषिने यह कहा है (२) इसके अनन्तर धर्मका वर्णन करते हैं कि वेद है प्रमाण जिसमें वही धर्म है–और श्रुतिके दो भेद हैं एक वेदकी दूसरी तन्त्रकी (३) भविष्यपुराणमें भी यह लिखाहै कि धर्म

---

(१) वेदविद्भिर्ज्ञातइति प्रयुञ्जानोविशेषणम् ॥
वेदादेवावगतो धर्मइत्युक्तवान्मनुः ॥ १ ॥
हृदयेनाभिमुख्येन ज्ञातइत्यपिनिर्दिशन् ॥
श्रेयःसाधनमित्याह तदुक्तातिसुगमनः ॥ २ ॥
वेदप्रमाणकश्रेयः साधनंधर्मइत्यतः ॥
मनूक्तमेवमुनयःप्रणिन्युर्धर्मलक्षणम् ॥ ३ ॥

(२) अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः श्रुतिप्रमाणकोधर्मःश्रुतिश्चद्विधावैदिकीतान्त्रिकीच ॥

(३) धर्मः श्रेयःसमुद्दिष्टः श्रेयोऽभ्युदयलक्षणम् ।
सतुपञ्चविधःप्रोक्तोवेदमूलःसनातनः ॥ १ ॥
अस्यसम्यगनुष्ठानात्स्वर्गोमोक्षश्चजायते ।
इहलोकेसुखैश्वर्यमतुलंचखगाधिप ॥ २ ॥

ही कल्याणरूप कहा है और अभ्युदय (प्रतापकी वृद्धि को श्रेय) कल्याण कहते हैं हे गरुड! वह अभ्युदय पांच प्रकारका कहा है और वेद जिसमें प्रमाणहो और जो नित्यहो ऐसे धर्मको भलीप्रकार करने से स्वर्ग और मोक्ष होताहै-और इसलोकमें अतुलसुख-ऐश्वर्य-होताहै अर्थात् इन कल्याणों का साधन धर्म है और (१) जैमिनि ने भी कहाहै कि यह भी धर्मका लक्षण उत्पन्न होता है कि चोदना है लक्षण जिसका ऐसा जो पदार्थ उसे धर्म कहते हैं अर्थात् दो प्रकार की तर्क (हित अहित) से जो जानाजाय वही धर्म है कल्याण का हेतु जो ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ-और प्रत्यवाय (पाप) का हेतु जो श्येन आदि यज्ञ वह अनर्थ है उन दोनों में वेद जिसमें प्रमाणहै ऐसा ज्योतिष्टोम आदि ही धर्म है और आगे हम(मनु स्मृति)को दिखावेंगे कि स्मृति आदि भी वेदमूल होनेसेही धर्म में प्रमाणहैं और गोविन्दराज ने (हृदये नाभ्यानुज्ञातः) इसका यह अर्थ कहाहै कि अन्तःकरण में सन्देहरहित जो हो वही धर्म है ऐसा अर्थ करने से धर्म का यह लक्षण होगा कि वेद के जाननेवालों ने नहीं किया और संदेह रहित जो हो वही धर्म है इस लक्षण में पंडित जन इससे श्रद्धा नहीं करते कि ग्राम में जाना आदि जो प्रत्यक्ष देखा लौकिक धर्म उससें भी यह लक्षण घट सकताहै-और

(१) इदमपि धर्मलक्षणमसूत्रयच्चोदनालक्षणोधर्मइति ॥

मेधातिथि तो यह अर्थ करते हैं कि जिसमें चित्त प्रवृत्त हो वा हृदय नाम वेद वेदही भावना (विचार) से पढ़ा हुआ हृत् कहाता है उसमें जिसकी स्थिति हो वही धर्म अर्थात् वेद से जाना हुआ ही धर्म होताहै १ ॥

एषा धर्मस्यवोयोनिः समासेन प्रकीर्तिता ।
सम्भवश्चास्यसर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत॥ २ ॥

अब वर्णों के धर्मोंको सुनो—यहां योनि शब्दसे ज्ञानका कारण लेते हैं और वह वेदोखिल धर्म मूलं इत्यादि श्लोकों में कहाहै—यह गोविन्दराज ने तो धर्म शब्द से अपूर्वरूप (जो कर्म करने से सुख का जनक अदृष्ट आत्मामें पैदा होताहै) अदृष्ट लियाहै—इस श्लोक में वर्णधर्म शब्द से वर्णधर्म्म—आश्रयधर्म्म—वर्णाश्रय धर्म्म गुणधर्म्म—नैमित्तिकधर्म—लेते है—और ये पांचो भविष्यपुराण *

---

* वर्णधर्मः स्मृतस्त्वेकआश्रमाणामतः परम् ।
वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गौणो नैमित्तिकस्तथा ॥ १ ॥
वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्त्तते ।
वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं नृप ॥ २ ॥
यस्त्वाश्रमस्समाश्रित्य अधिकारः प्रवर्त्तते ।
स खल्वाश्रमधर्मस्तु भिक्षादण्डादिको यथा ॥ ३ ॥
वर्णत्वमाश्रमत्वञ्च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते ।
स वर्णाश्रम धर्मस्तु मौञ्जीयामेखलायथा ॥ ४ ॥
यो गुणेन प्रवर्तेत गुणधर्मः स उच्यते ।
यथामूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानांपरिपालनम् ॥ ५ ॥
निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्त्तते ।
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥ ६ ॥

में इसप्रकार कहे हैं कि वर्ण १ धर्म्म २ आश्रमधर्म्म ३ और वर्णाश्रम धर्म्म—और तीसरे वर्णाश्रम धर्म्म के दो भेद हैं १ गौण और २ नैमित्तिक—वर्ण के आश्रय से जो धर्म प्रवृत्त हो उसको वर्णधर्म कहते हैं—हे राजन्! जैसे यज्ञोपवीत और जो धर्म्म आश्रमके आश्रयसे प्रचलित हो वह आश्रय धर्म है जैसा कि भिक्षाका मांगना और दण्ड आदि—और जो धर्मवर्ण और आश्रम दोनों के आश्रयसे माना जाय वह वर्णाश्रय धर्म कहा है जैसे ब्राह्मण को मूंजकी मेखला (कौंदनी) क्षत्रिय को मूर्वा की और वैश्य की शण की लिखी है और जिस धर्मकी गुण से प्रवृत्ति हो वह गुणधर्म कहाताहै जैसे मूर्द्धाभिषिक्त (चक्रवर्त्ती राजा) का धर्म प्रजा की रक्षा—और जो एक किसी निमित्तके आश्रयसे कियाजाय वह धर्म नैमित्तिक जानना जैसे प्रायश्चित्त का करना ॥ २ ॥

नतिष्ठतितुयःपूर्वांनोपास्तेयश्चपश्चिमाम्।
सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ३ ॥

जो द्विज प्रातःकाल की संध्या को नहीं करता और जो सायंकाल की संध्या की उपासना नही करता अर्थात् शास्त्रोक्त गायत्री के जपको नहीं करता वह अतिथि के सत्कार आदि सम्पूर्ण द्विजों के कर्मों से बाह्य इसप्रकार करने योग्य है जैसा शूद्र—इसी प्रत्यवाय से संध्या आदि कर्म नित्य कहे हैं और नित्य होने पर भी

सर्वदा उपेक्षित (त्यागने योग्य) पापों का नाश इनका फल होने में कोई विरोध नहीं है ॥ ३ ॥

अब चारोंवर्णों के कर्मकरने योग्य ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनं तथा ।
दानंप्रतिग्रहंचैवब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ४ ॥

पढ़ाना और पढ़ना—यज्ञ करना और यज्ञ कराना—दान देना और प्रतिग्रह (दान लेना) ये छःकर्म ब्राह्मणों के ब्रह्मा ने रचे हैं ॥ ४ ॥

प्रजानांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्यसमासतः ॥ ५ ॥

प्रजाओंकी रक्षा—दानदेना—यज्ञकरना—पढ़ना और विषयों में आसक्त न होना अर्थात् गीत,बाजा,नृत्य और वनिता (वेश्यादि) आदि विषयों में आसक्त न होना किन्तु सर्वथा अपने शास्त्रोक्त[1] कर्मों में ही लीन रहना क्षत्रिय के संक्षेप से ये कर्म ब्रह्मा ने रचे हैं ॥ ५ ॥

पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच ।
वणिक्पथंकुसीदंचवैश्यस्यकृषिमेवच ॥ ६ ॥

पशुओं की रक्षा—दान देना—यज्ञकरना—पढ़ना और जल और स्थल में व्यापार करना अर्थात् जलके व स्थल

१ वेद स्मृति व पुराणों में कहा हुआ धर्म

के द्वारा वृद्धि के लिये अन्यत्र अन्न आदिमाल पहुं-चाना इसको ही वणिक्पथ कहते हैं—और कुसीदवृद्धि (व्याज) के लिये धनदेना और खेती को करना ये कर्म ब्रह्माने वैश्य के रचे हैं ॥ ६ ॥

एकमेवतुशूद्रस्यप्रभुःकर्मसमादिशत् ।
एतेषामेववर्णानांशुश्रूषामनसूयया ॥ ७ ॥

प्रभु (ब्रह्मा) ने शूद्र का एकही कर्म रचा है कि इन तीनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) वर्णोंकी निंदा को त्यागपूर्वक सेवा करनी इस श्लोक में एकशब्द प्रधान का बोधक है और केवल बोधक नहीं है अन्यथा शूद्र दान देने से पतित होजाता - और दान देने का अधिकार शूद्रको भी है—सिद्धान्त यह है कि ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य इनकी सेवा करना तो प्रधान कर्म है और दान आदि इतर कर्म अप्रधान हैं ॥ ७ ॥

इति श्रीपण्डितशिवगोविन्दसामवेदिकृतसभाष्य
कुलोचितधर्मशिक्षायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

विप्रोवृत्तो मूलकान्यत्र संध्या
वेदाः शाखाधर्म्मकर्म्माणिपत्रम् ॥

तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयं
छिन्नेमूले नैववृक्षोन शाखा॥ १॥

विप्रों का मूलवृक्ष संध्या है और जो चारों वेद हैं वे चारों शाखा हैं, और धर्म्म कर्म जो हैं सो पत्तेरूप हैं अगर जो मूलनष्ट होजाता है याने संध्या नहीं करता नतो उसके शाखा रहैं और न पत्ते रहैं इस वास्ते मूल की रक्षा करना यत्नसे उचित है कारण कि विप्रका मूल जो रहैगा तो शाखा वा पत्ते भी बने रहैंगे (जो ब्राह्मण संध्या करैगा वही मुक्त होजायगा अन्य नहीं) और किसी दिन फल भी मिलेंगे लेकिन आजकल के मनुष्य संध्या को छोड़ देते हैं और फल (मोक्ष की अभिलाषा करते हैं) को लेने को दौड़ते हैं तो विना मूल के फल कहां से आवेंगे॥ १॥

संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन्काले नित्यतयाविभो॥
तांविहायद्विजाःकस्माद्गृह्णीयुश्चान्यदेवताः॥२॥

जब कि तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल) में गायत्री की ही परम उपासना वेदों में कही गई है फिर उसको ब्राह्मण क्यों त्यागकर दूसरे देवताओं की स्तुति करते हैं और देखिये कि ब्राह्मण का बल, और तेज गायत्री में ही है और अपने देवता का स्मरण करना चाहिये क्यों कि ऐसा लिखा है कि "योवैस्वां देवता मतियजते प्रच्यवते स्वायै देवतायै च्यवते न परां प्राप्नोति पापी

यान् भवति" इतिश्रुतेः।(तथाच गोपथ ब्राह्मणे गायत्र्युपनिषदि) यह ब्रह्म प्रतिष्ठा का आयतन है इसको जो धारण करताहै उसकी सत्यमें प्रतिष्ठा है उसी से गायत्री है जो जपने से पुण्य कीर्ति आदि देती है क्योंकि सामविधान और अग्निब्राह्मण में सावित्री के इस प्रकार अंग लिखे हैं कि, "शिर ब्रह्मा, द्यौ ललाट, चंद्रादित्यनेत्र, मुख अग्नि, जिह्वा सरस्वती, त्वष्टा ग्रीवा, वसु रुद्र बाहु, ऊरु वायु.पृष्ठ इन्द्र, विष्णु नाभि, प्रजापति जघन.ऊरुमरुत, वेद पाद, स्मित बिजली, उच्छ्वास वायु, अस्थि पर्वत, समुद्र वस्त्र,नक्षत्र अलङ्कार" इसप्रकार से सामवेद ने इस रूप को कहाहै और देवता ऋषि, इस सावित्री की तीनबार ब्रह्म सत्यं, ब्रह्मसत्यं, ब्रह्मसत्यं यही ब्रह्मरूप है यह वाक्य साम विधान और अग्निब्राह्मण में लिखाहै और वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि साहैषागयांस्तत्रे प्राणावै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्य द्गणायांस्तत्रेतस्माद्गायत्री नामेति" ॥ २ ॥

कटे सूत्रे कर्णपुष्पे पाषाणे लेपगन्धने ॥
काष्ठमालाधरोविप्रः सवैचाण्डाल उच्यते ॥ ३ ॥

---

१ अथ सावित्र्यंगानि व्याख्यास्याम शिरो ब्रह्मा ललाट द्यौश्चंद्रादित्यौ चक्षुषी मुखमग्निर्जिह्वा सरस्वती त्वष्टाग्रीवावसवश्चरुद्राश्च बाहूउरो वायुः पृष्ठमिन्द्रो विष्णुर्नाभि. प्रजापतिर्जघनमूरूयउतो वेदा पादौस्मित विद्युच्छ्वसितं वायुरस्थीनि पर्वता.समुद्रावासा७ सिनक्षत्राण्यलङ्काराेय एव वेद दुष्टता दुरूपमुक्तान्यूनाधिकाच्च सर्वस्मात्स्वस्ति देव ऋषिभ्य श्च ब्रह्मसत्य च पातुमामिति ब्रह्मसत्य च पातुमामिति ॥

जो ब्राह्मण करधनी (सूनकी) कमर में बांधता है और जो कानों मे पुष्प धारण करता है, और जो पत्थर (हुरसा) में चंदन रगर कर जो उसी में से पोछ २ कर लगाते हैं और जो काष्ठकी माला धारण करते हैं वे सब चांडालके समान हैं ॥ ३ ॥

गृह्यसूत्रप्रमाणम् ॥

नविष्णूपासना नित्यावेदेनोक्तातुकुत्रचित् ॥
न विष्णुदीचा नित्याऽस्ति शिवस्यापि तथै
वच ॥ ४ ॥
गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ॥
यया विनात्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्तिसर्वथा॥५॥
तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेचा द्विजस्य हि॥
गायत्रीमात्रनिष्णातोद्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥६॥
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यादिति प्राहमनुः स्वयम् ॥
विहायतां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः ॥
शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा॥७॥

सर्वथा ब्राह्मण का अधः पतन होजाताहै ब्राह्मण गायत्री से ही कृतकृत्यहै इसको और अपेक्षा नहीं है गायत्री में निष्णात होकर भी ब्राह्मण मुक्ति का अधिकारी होजाता है चाहे वह और कार्य करै वा न करै यहां पर स्वयं मनुजीने भी कहा कि "कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यत इति मनुवाक्यम्" जो ब्राह्मण अपनी परम इष्ट गायत्री का तो किंचित् भी जप नहीं करते केवल विष्णु की उपासनामें वा शिवोपासनामेंही रत हैं वे मोक्षको कदापि नहीं प्राप्तहोसके हैं वह तो आवागमनरूप दुःख में ही जाते हैं॥ ४—७॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दशर्मकृतसभाष्य कुलोचितधर्मशिक्षायांतृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

कारणंसर्वलोकानां देवदेवंजगद्गुरुम्॥
वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः॥ १॥

सर्वलोक के कारण देवदेव जगत्प्रभु वासुदेव को महातप करतेहुये देख करके॥ १॥

ब्रह्मोवाच॥

देवदेवजगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो।
तपश्चरसिकस्मात्त्वं किंध्यायसिजनार्दन॥२॥

ब्रह्माजी बोले कि हे देवदेव, जगन्नाथ ! तुम भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाताहो हे जनार्दन ! आप क्यों तपकरते हैं और किस का ध्यान करतेहो ॥ २ ॥

विस्मयोऽयंममात्यर्थं त्वंसर्वजगतांप्रभुः ॥
ध्यानयुक्तोसि देवेश किंचचित्रमतःपरम्॥३॥

इसमें मुझको बड़ा विस्मय है आप सब जगत् के प्रभु हैं और जब आप भी ध्यान करते हो तो इससे विचित्र और क्या होगा ॥ ३ ॥

त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्त्ताहमखिलस्यच ॥
त्वत्तःकोप्यधिकोगत्यत्र तंदेवंब्रूहिमापते॥४॥

और आपके नाभिकमल से उत्पन्नहुआ मैं जगत् का करनेवालाहूं हे मापते ! क्या आप से भी कोई अधिकहै सो आप कृपाकरिके हमसे कहिये ॥ ४ ॥

जानाम्यहंजगन्नाथत्वमादिःसर्वकारणम् ॥
कर्त्तापालयिताहर्त्तासमर्थःसर्वकार्यकृत् ॥ ५ ॥

हे जगन्नाथ ! मैं जानताहूं कि तुमहीं सब जगत् के आदि कारणहो कर्त्ता,पालक, हरणकर्त्ता और सब कार्य्य में समर्थ हो ॥ ५ ॥

इच्छयातेमहाराज सृजाम्यहमिदंजगत ॥
हरःसंहरतेकाले सोपिनिदेशनेसदा ॥ ६ ॥

हे महाराज ! मैं आपकी इच्छासे जगत् को सृजन

(तैयार) करता हूं और शिवजी प्रलयकाल में हरण (नाश) करते हैं सो भी आपकी इच्छा से ऐसा करते हैं ॥ ६ ॥

सूर्य्योभ्रमतिचाकाशे वायुर्वातिशुभाशुभः ॥
अग्निस्तपतिपर्जन्योवर्षतीशत्वदाज्ञया ॥७॥

और हे ईश ! आपही की आज्ञा से सूर्य आकाशमें भ्रमण करतेहैं और वायु चलती है और अग्नि तपती है और मेघ वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥

त्वन्तुध्यायसिकंदेवं संशयोऽयंमहान्मम ॥
त्वत्तःपरंनपश्यामि दैवंवैभुवनत्रये ॥ ८ ॥

हे महाराज ! आप किस देवता का ध्यान करतेहो यह मुझे बड़ाही सन्देह है त्रिलोक में आपसे अधिक कोई देवता मैं नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥

कृपांकृत्वावदस्वाद्य भक्तोऽस्मितवसुव्रत ॥
महतांनैवगोप्यंहिप्रायःकिञ्चिदितिस्मृतिः ९॥

हे सुव्रत ! आप कृपा करिके हमसे कहिये कि आप किसका ध्यान करतेहो मैं आपका परम भक्तहूं महत्पुरुषों को कुछ भी गोपनीय नहीं है यह स्मृति का वाक्यहै॥९॥

तच्छुत्वावचनंतस्य हरिराहप्रजापतिम् ॥
शृणुष्वैकमनाब्रह्मंस्त्वांब्रवीमिसनातनम्॥१०॥

यह उनके वचनको सुनकर हरि प्रजापति से बोले

कि हे ब्रह्माजी ! सावधान होकर सुनो मैं आपसे वर्णन करता हूं ॥ १० ॥

यद्यपित्वांशिवंमांच स्थितिसृष्ट्यन्तकारणम् ॥
तेजानन्तिजनाःसर्वे देवाश्चासुरमानुषाः॥११॥

यद्यपि तुम अपने को मुझको और शिवजी को सृष्टि उत्पत्ति, पालन, प्रलय करनेवाले मानतेहो तथा सब देवता,असुर, मनुष्यलोग ये भी सब जानते हैं ॥ ११ ॥

स्रष्टात्वंपालकश्चाहं हरःसंहारकारकः ॥
कृताःशक्त्येतिसन्तर्कः क्रियतेवेदपारगैः १२॥

कि तुम स्रष्टा, मैं पालन कर्त्ता, और हर (शिवजी) संहार करनेवाले हैं तो भी यह सब प्रच्छन्न कार्यरूप शक्ति के किये हैं ऐसा वेदवादी महात्मा अनुमान करते हैं ॥ १२ ॥

जगत्सर्जननेशक्तिस्त्वयितिष्ठतिराजसी ॥
सात्त्विकीमयिरुद्रेचतामसीपरिकीर्तिता १३॥

जगत् की रचना करने की तुम में राजसी शक्ति है और मुझ में पालनरूप सात्त्विकी और शिवजी में तामसी शक्ति विद्यमान है ॥ १३ ॥

तयाविरहितस्त्वंननकर्मकरणप्रभुः ॥
नाहंपालयितुंशक्तः संहर्तुंनापिशङ्करः ॥१४॥

उसके बिना तुम किसी कर्म के करने में समर्थ नहीं

हो और न मैं पालन करने में और न शिवजी संहार करने में समर्थ हैं ॥ १४ ॥

तदधीनावयंसर्वे वर्तामःसततंविभो ॥
प्रत्यक्षेचपरोक्षेच दृष्टान्तंशृणुसुव्रत ॥ १५ ॥

हे ब्रह्मन् ! हम सब उसी के अधीन होकर वर्तते हैं हे सुव्रत ! प्रत्यक्ष और परोक्षमें दृष्टांत तुम सुनो ॥१५॥

शेषेस्वपिमिपर्यङ्के परतन्त्रोनसंशयः ॥
तदधीनःसदोत्तिष्ठेकालेकालवशंगतः॥१६॥

प्रलयकालमें परतन्त्र होकर हमको शेषशय्या पर शयन करना होताहै और समयपर उसी के अधीन होकर उठना होताहै ॥ १६ ॥

तपश्चरामिसततं तदधीनोऽस्म्यहंसदा ॥
कदाचित्सहलक्ष्म्याच विहरामियथासुखम् १७॥

और उसीके अधीन होकर निरन्तर तपस्या करता हूं कभी लक्ष्मी के साथ यथासुख विहार करताहूं॥१७॥

कदाचिद्दानवैःसार्द्धं सङ्ग्रामं प्रकरोम्यहम् ॥
दारुणंदेहदमनं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ १८ ॥

कभी मैं दानवोंसहित संग्राम करताहूं जो सब लोक को भयदायी दारुण देहका क्लेशकारक होताहै ॥ १८ ॥

प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवेपुरा ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धंमयाकृतम्॥१९॥

हे धर्मज्ञ ! तुम्हारे देखतेही देखते एकार्णव सागरमें पांच सहस्र ५००० वर्षतक मैंने बाहुयुद्ध किया ॥१९॥

तौकर्णमलजौदुष्टौ दानवौमदगर्वितौ ॥
देवदेव्याःप्रसादेन निहतौमधुकैटभौ ॥२०॥

हे देव ! हमारे कर्ण के मलसे उत्पन्नहुये मदसे गर्वित व मधुकैटभ दानव देवीके प्रसादसे ही मारेगये ॥२०॥

तदात्वयानकिंज्ञातं कारणन्तु परात्परम् ॥
शक्तिरूपंमहाभाग किंपृच्छसिपुनःपुनः॥२१॥

तब तुमने उस परात्परके कारणको क्या नहीं जाना हे महाभाग ! वही शक्तिका रूप था फिर तुम क्या हमसे बारंबार पूंछते हो ॥ २१ ॥

यदिच्छापुरुषोभूत्वा विचरामिमहार्णवे ॥
कच्छपःकोलसिंहोचवामनश्चयुगेयुगे ॥२२॥

जिसकी इच्छासे पुरुष होकर महार्णव में विचरण करता हूं और युग २ में कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन अवतार धारण करता हूं ॥ २२ ॥

नकस्यापिप्रियोलोके तिर्यग्योनिषुसंभवः ॥
नाभवंस्वेच्छयावामेवाराहादिषुयोनिषु॥२३॥

तिर्यग्योनि में जन्म लेनेकी कोई भी इच्छा नहीं

करताहै हे वामे! इससे मैं स्वेच्छा से वाराह आदि योनियों में जन्म नहीं लेताहूं॥ २३॥

विहाय लक्ष्म्या सहसं विहारं
को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु॥
शय्याञ्च मुक्त्वा गरुडासनस्थः
करोति युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः॥ २४॥

लक्ष्मी के संग विहार छोड़कर हीनयोनि मत्स्यादि का कौन शरीर धारण करेगा और शय्या को छोड़कर कौन स्वतंत्रहो गरुड़के ऊपर चढ़कर संग्रामकरैगा॥२४॥

पुरा पुरस्तेऽजशिरो मदीयं
गतंधनुर्ज्यास्खलनात्क्वचापि॥
त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा॥
संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः॥ २५॥

हे ब्रह्मन्! एकवार तुम्हारे सम्मुखहो धनुष की ज्या (प्रत्यंचा) से हमारा शिर स्खलित (गिरपड़ाथा) हुवा था और उस समय त्वष्टा ने अश्व (घोड़ा) का शिर काटकर हमारे शरीरपर (गले में) लगादिया॥ २५॥

हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च
प्रत्यक्षमेतत्तवलोककर्तः॥
विडम्बनेयंकिल लोकमध्ये
कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम्॥ २६॥

तब उस दिनसे हमको हयग्रीव भी कहते हैं हे लोककर्तः ! यह आप प्रत्यक्षरूपसे देखिये यह लोकमें विख्यातहै यदि स्वतंत्र होते तो ऐसा क्यों होता ॥ २६ ॥

तस्मान्नाहंस्वतंत्रोऽस्मिशक्त्याधीनोऽस्मिसर्वथा
तामपि शक्तिं सततं ध्यायामिचनिरन्तरम् ॥
नातः परतरं किंचिज्जानामि कमलोद्भव ॥ २७॥

इससे मैं स्वतंत्र नहीं हूं सर्वथा शक्ति के अधीन हूं उसीशक्तिको मैं निरन्तर ध्यान करता हूं हे कमलोद्भव ! इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता हूं ॥ २७ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो तुमने सृष्टिमें चारों वर्ण उत्पन्न किये तो ब्राह्मण की उपासना शिवशक्ति है और इसी तरह से क्षत्रिय वैश्य की भी शिवशक्ति की है कुछ न्यूनाधिक है और इसके अनन्तर पंच देवता का गृहस्थको करना चाहिये जिन द्विजातियों को यज्ञोपवीत में गायत्री उपदेश नहीं दियागया तो न वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य है केवल शूद्रहै और सबकर्म निष्फल होते हैं बिना शिवशक्ति के मैं निरन्तर इसी शिवशक्ति का ध्यान करताहूं इतना सुन ब्रह्माजी धन्यवाद दे अपने स्थानको चले आये ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दशर्मकृतसभाष्य
कुलोचितधर्म्मशिक्षायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अब शाखाभेद प्रमाण कहते हैं ॥

आत्मतन्त्रेषु यन्नोक्तं तत् कुर्य्यात् पारतन्त्रिकम् ।
विशेषाःखलु सामान्या ये चोक्ता वेदवादिभिः १॥

तन्त्रं शास्त्रमित्यनर्थान्तरम् । आत्मनस्तन्त्रेषुयन्नोक्तं, तत् परतन्त्रोक्तं कुर्य्यात् । ये च सामान्याः सर्व्वशाखिसाधारणाः, विशेषाः ॥

"नित्यं स्नात्वा शुचिःकुर्य्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् "।

इति–

" सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्"।

इति चैवमादाय, वेदवादिभिर्मन्वादिभिरुक्ताः, ते च कर्त्तव्याः । एवं वा–

ये च साधारणा विशेषाः–आचमनादयः,–मन्त्रादिभिरुक्तास्ते च कर्त्तव्याः। तदिदंश्रौताभिप्रायं वचनम् । कथं ज्ञायते ?।

" स्मार्त्तं साधारणं तेषु ग्राह्यं श्रौतेषु कर्म्मसु "।

इति गृह्यपरिशिष्टान्तरदर्शनात् । एवं वा–

ये च सामान्याःसाधारणाः–परिभाषारूपाइत्येतत् । विशेषाः–

"उच्चैर्ऋचा क्रियते उच्चैःसाम्नाउपांशुयजुषा "।

इत्येवमादयः, वेदवादिभिरुक्ताः,ते च कर्त्तव्याः । वेदं

वदितुं शीलं येषां तइमेवेदवादिनो वेदप्रवक्तारः कठादयो भण्यन्ते । न खलु तत्रभवन्तो मन्वादयो वेदवादिनः स्मार्त्ताराेहिते वेदार्थस्य एवं वा—

सामान्याः—समानकर्म्माश्रया ये विशेषाः वेदवादिभिरुक्ताः, ते च करणीयाः, तदनेन,—शाखान्तरीयगुणानामपि शाखान्तरे उपसंहारःकर्त्तव्यः—इत्युक्तं भवति। तथा च गृह्यपरिशिष्टान्तरम्।

"श्रौतेषुसर्व्वशाखोक्तं सर्व्वस्यैव यथोचितम्"।

इति—सेयं शाखान्तराधिकरणन्यायमूलास्मृतिरिति प्रष्टव्यम्। किं भवति तर्हि प्रयोजनं पूर्व्वार्द्धस्य ? ननु परार्द्धेन गुणोपसंहार उपदिष्टः। उच्यते। यदात्मतन्त्रे उपदिष्टं तत्रपरतन्त्रोक्तगुणोपसंहारः परार्द्धस्यार्थः। यत् पुनर्नोपदिष्टमेवात्मतन्त्रे, तदपि परतन्त्रोक्तं करणीयमितिप्रयोजनंपूर्व्वार्द्धस्य। यथा खल्वग्निहोत्रमस्मच्छाखायां नोपदिष्टं, तदपि याजुर्व्वेदिकमनुष्ठीयतेऽस्माभिः। न चेतत् परिशिष्टकृतः कात्यायनस्य वचनं संवादेनानभाषितं। तच्चोदाहरिष्यामः॥ १॥

यःस्वशाखोक्तमुत्सृज्य परशाखोक्तमाचरेत् ॥
अप्रमाणमृषिंकृत्वा सोऽन्धेतमसिमज्जति ॥ ३ ॥

यःपुनः स्वशाखोक्तं त्यक्त्वा परशाखोक्तमाचरति, स खल्वयमृषिं स्वशाखाचार्यंप्रमाणं करोति। सखल्वृषिम प्रमाणं कृत्वा अन्धे तमसि—नरके पतति ।

इदमिदानीं सन्दिह्यते । एवन्तावत्—'आत्मतन्त्रेषु यन्नोक्तम्' —इत्यनेन पारतन्त्रिकमपिकर्त्तव्यतयोपादिष्टम्; 'ऊनोवाप्यतिरिक्तोवा'—इत्यनेन 'यः स्वशाखोक्तमुत्सृज्य'—इत्यनेन च पुनरेतन्निषिद्धम्, किं पुनरत्र तत्त्वम्?। उभयंतत्त्वमित्याह। कुतः? उभयोरेवोपदेशात्। विरुद्धंतर्हि?। न। विषयभेदात्। कथम्?। उच्यते। 'आत्मतन्त्रेषु यन्नोक्तम्'—इति तावत् श्रौताभिप्रायम्। 'ऊनोवा'—इत्यादिकंतु गृह्यशास्त्राभिप्रायकम्; इति विषयभेदादुभयं तत्त्वमिति निश्चीयते। कथं पुनर्ज्ञायते;— गृह्यशास्त्राभिप्रायेणोत्तरः पक्षः—इति?। पारिशेष्यादिति ब्रूमः। श्रौताभिप्रायेणपूर्वः पक्षइति खल्ववोचम्। तस्मादुत्तरः पक्षः पारिशेष्याद्गृह्यशास्त्राभिप्रायेण भविष्यति। इतश्चैतदेवं भविष्यति,—अप्रमाणमृषिं कृत्वेत्यभिधानात्। नोखल्वपि श्रौतेषु पारशाखिकमाचरन्नृषिमप्रमाणं करोति। न खल्वृषिः कर्ता वेदस्य। नित्योहिवेदराशिर्मीमांसकानाम्, अपौरुषेयश्चान्येषाम्। 'प्रवक्तेति चेत्,—इति चेद्भवान् पश्यति; माभूत कर्त्ता ऋषिर्वेदस्य,

प्रवक्तातु भवति' 'भवतु, कियतो 'भवति? 'एतदतो भवति.—यद्येवं, श्रौतेष्वपि पारशाखिकमाचरन् प्रवक्तारमृषिमप्रमाणं करोति' 'नैतत् साधुमन्यामहे। पूर्वसिद्धां हि वाचमृषिः प्रोवाच। पारशाखिकञ्चाचरन् तामेव वाचमप्रमाणं करोति, न त्वृषिम्। न वा, नित्यनिर्दोषस्य पूर्वसिद्धस्य वेदस्य अप्रामाण्यमनुपन्यस्य परासिद्धस्य प्रवक्तुर्ऋषेरप्रामाण्यं युक्तमुपन्यसितुम्। तदधीनासिद्धत्वात्तस्य। गृह्यशास्त्राभिप्रायस्त्वेतुवाक्यस्यैतत् स्यात्। वेदार्थमनुस्मरन् सूत्रकारः प्रयोगशास्त्रं रचयाञ्चकार। तत्परित्यागेन नूनमृषिमप्रमाणं करोति। तदनुमितां श्रुतिमपि,—ऋषिमप्रमाणं कुर्वन्नेवाप्रमाणं करोति'। शास्त्रान्तरदर्शनाच्चैवमवगच्छामः। तथा च गृह्यपरिशिष्टान्तरम्।

'प्रयोगशास्त्रं गृह्यादि न समुत्क्रामयेत्परैः।
प्रयोगशास्त्रतां हानेरनारम्भविधानतः ॥ १ ॥
बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म्म प्रकीर्त्तितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत् ॥ २ ॥
श्रौतेषु तद्वच्छाखोक्तं सर्वमेव यथोचितम्।
स्मार्त्तेष्वाचरणीयं तु प्राप्तं श्रौतेषु कर्म्मसु ॥ ३ ॥

इति। 'यथोचितम्'—इति कुर्वन्न विरोधिन एव परोक्तस्य स्वशाखानुक्तानामाचरणादतोऽपि कर्म्मप्रदीपे।

“ अनिषिद्धान्निषिद्धाश्चोक्ता मुनिभिः कर्म्मकारिणाम्।
स्वनिबन्धपरोक्तानां तुल्याचरणक्रिया ” ॥ १ ॥

इति श्रौतमेवाग्निहोत्रादिकंपारशाखिकंकर्त्तव्यमुप दिशति । तदेवमादिभिर्वचनैरवगच्छामः,—श्रौतेषुपार शाखिकं करणीयं गृह्योक्तेषु,—इति ।

आह । 'यदि प्रयोगशास्त्रं गृह्यादिपरैर्न समुच्चीयते, परं तर्हि सामान्यं विधानमनर्थकं भवति' । 'यदि भवत्यनर्थकं, किमिति वयमुपालभेमहि' । 'नयुष्मा नुपालभामहे,—किन्तु, माभूदनर्थकमिति तदपि समु-च्चिनुमः,—इति ब्रूमहे' । 'निरङ्कुशत्वात्ते तुण्डस्यैवंब्रवी षि,नतु प्रमाणोपेतं ब्रवीषि । प्रयोगशास्त्रविरोधाद्धिनान्यं समुच्चयःसेद्धुमर्हति । योहि सामान्यस्य विधानस्यानर्थ-क्यं परिजिहीर्षुस्तदपि समुच्चिनोति, सखल्वयं स्वशाखा-र्थ्यस्मृपिं प्रमाणं सन्तमप्रमाणं करोति । क्रममपिप्रयो गशास्त्रीयं विरुणद्धि । उत्सृजति च स्वशाखाश्रयं विधा-नम् । सेयं पितरमुपेक्ष्य श्वशुरे गाढा भक्तिः । कात्या-यनोऽपि, ।

"स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयन्तुनः ।
कर्त्तुमिच्छतिदुर्मेधा मोघंतत्तस्यचेष्टितम्" ॥

इत्यनेन एवं निन्दति । योहि ऋषिभिर्निन्द्यते, स-कथं श्रद्धेयस्तत्र भवतां शिष्टानाम्' । 'अथ यथोक्त मपिननिरोत्स्यते, तथा करिष्यामः, । 'नैवंशक्यम्' । 'कस्मात्?' । "असम्भवात्,, । स्वशाखाश्रयस्यखल्वन्त राऽन्तराकिमपि किमपि सामान्यं विधानं निवेशयन् सामान्यमपि विधानमाकुलयति, स्वशाखामपि । सो

यंसमुच्चयो न प्रयोगशास्त्रं नापिसामान्यं विधानमुपकरोति, क्रमयन्यथयन् प्रधानमपि विगुणयति । तथात्र, वृद्धिमिष्टवतोमूलमपि नष्टम्’। ‘अथ, क्रमःपदार्थाना मुपकारेवर्त्तते। पदार्थप्राप्तेरुत्तरकालं हि क्रमश्चापतति। यदाचपदार्थः प्राप्नोति, तदा क्रम एव नास्ति।न खलु पश्चिमसिद्धेन क्रमेण विरोधात् पूर्व्वसिद्धः पदार्थ एव नकर्त्तव्यो भवति । तस्मात् । न्यायविरोधस्त्वत्पक्षे दोषः ॥ ‘ भवेदेतदेवम् ,–यदि वचनमत्रार्थे प्रमाणं नस्यात् । अस्तिच वचनम्–प्रयोगशास्त्रम्–इत्यादि। किमिवहि वचनं न कुर्य्यात् । नहि वचनस्य कश्चिदति भारोनाम। भवदीयेऽपि पक्षेन्यायान्तरविरोधोजागर्ति। नचपदार्थोऽपि पूर्व्वसिद्धः । सिसाधयिषितः खल्वेषभवता । विपक्षश्चायमुपन्यासः । सर्व्वपदार्थानां शेषभूताः खल्वाचमनादयः प्राबल्यादनुष्ठीयन्ते, न सर्व्वे । नचात्रा नुतिष्ठासितानांशस्त्रं प्रामाणिकम्।

भिन्नानिचेमानि कर्म्माणि प्रयोगशास्त्रीयाणि सामान्यानिव नालम्बन्तेऽपि, यथासम्भवरूपभेदादि भवोहेतुभवः । संयोगचोदनाभेदमप्येतेषु बहुलमुपलभामहे । तत्रैव मन्नि कुत्र कस्य गुणानुपसंहरसि। कर्म्मभेदेगुणोपसंहारन्यायस्याविषयात् । अद्योस्विचेत्, प्रयोग शास्त्रीयं विधानमनुदाय यथासम्भवं सामान्यमपि विधानं कार्य्यंपृथगेवानुतिष्ठ । किन्तुभयमपिविधानमन्य थयितानगन्निष्ठाकारसभिन्नं विधानान्तरं स्वकर्त्तव्य

निर्म्मिमणोपि। यथाखल्वेकस्माद्वाक्याद्वाक्यात्पदमन्य समाच्चनाख्यपदं गृहीत्वायोवाक्यार्थः सम्पद्यते पुरुषकल्पनामूलः, तादृशोह्ययं परिचिकल्पयिषितः प्रयोगोभवति। सखल्वसपेक्षणीयस्तत्रभवताम्। तथाचोक्तम्। "धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्षंस्यात्"—इति। अत एव स्वशाखाश्रययो वैश्वदेववलिकर्म्मणोरन्ते सामान्ययोर पितपोःक्वासमनुष्टानं कात्यायनःस्मरति कर्म्मप्रदीपे,—

"नस्यातां काम्यसामान्ये जुहोति वलिकर्म्मणि।
पूर्व्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोति वलिकर्म्मणोः॥
कामयन्ते भवेयातां नतुमध्ये कदाचन।
नैकस्मिन् कर्म्मणि तत्ते कर्म्मान्यत्तायतेयतः"॥

इति। यदि समुच्चयं कात्यायनोऽभिप्रैष्यत्, नूनमव दिष्यत्। अवदनाच्चावगच्छामः,—नैवसमुच्चयः कात्यायनस्याभिप्रेतः,—इति। तस्मादियमेवावधारणा,—श्रौतेषु पारशाखिकं सामान्यञ्च विधानं कर्त्तव्यम्, गृह्योक्तेषुतु पारशाखिकं नकर्त्तव्यमेव, सामान्यञ्च विधानं गृह्योक्त विधानानुष्ठानादनन्तरमिच्छया प्रयोगान्तररूपेण करणीयम्,—इति। तदेवं सति "प्रयोगशास्त्रम्"—इत्यादीनिवचनान्यनुगृहीतानिभवन्तिनान्यथा। श्रौतेषुच तासुतासुशाखासुतत्तच्छाखिनामेवर्त्त्विजां कर्म्मोपदिष्टं न सर्व्वेषाम्, सर्व्वशाखिभिश्चर्त्त्विग्भिः प्रायोयज्ञोनिर्व्वहति; न तावन्मात्रैः,—इति विशेषोऽप्यस्ति। अन्येपि विशेषाः शाखान्तराधिकरणे शारीरके च द्रष्टव्याः"।

रघुनन्दनस्त्वेतदबुद्ध्वा वचनञ्चाजानानः—'सर्वैः वाविशेषेणाकाङ्क्षितंपारशाखिकं करणीयं न अन काङ्क्षितम्'—इति स्वरुच्यैव कल्पयाञ्चकार। तत्र ज्ञेयम्। आकाङ्क्षाऽपितदभिप्रेतानप्रामाणिकी। यत हि यावती इति कर्त्तव्यता निर्दिष्टा, तत्र तत ए आकाङ्क्षा निवर्त्तते—विशेषहेतुं विना,—इति हि तान्त्रि कानां निर्णयः, अवश्यञ्चतेनाप्येतद्वक्तव्यम्। अन्यथ पारशाखिकगुणोपसंहारेप्याकाङ्क्षा न निवर्त्तेत। इ त्यस्तु किं विस्तरेण॥

पुनरुक्तमतिक्रान्तं यच्चसिंहावलोकितम्॥
गोभिलेयेनगृह्णन्ति नतेज्ञास्यन्तिगोभिलम्॥४॥

पुनरुक्तम्—उक्तस्य पुनः कथनम्। अतिक्रान्तम्- अतिक्रम्य सम्बन्धः व्यवहितयोजना इति यावत् यच्चसिंहावलोकितम् सिंहावलोकितन्यायेन पराची नस्य—पूर्व्वेणान्वयः। ये खल्वेनत् त्रयं गोभिले—गो भिलगृह्यशास्त्रे न गृह्णन्ति, ते गोभिलगृह्यशास्त्रं तत्त्वतो न ज्ञास्यन्ति। उदाहरणममीषां गृह्यसूत्रादस्मत्कृत न्न्द्राष्याच्चोपलब्धव्यम्। विस्तरभयान्नेह प्रस्तूयते॥

एतच्छास्त्राध्ययनफलमाह—

गोभिलाचार्य्यपुत्रस्ययोऽधीतेसंग्रहंपुमान्॥
सर्व्वकर्म्मस्वसंमूढः परांसिद्धिमवाप्नुयात्॥५॥

गोभिलाचार्य्यपुत्रस्य संग्रहमिमं गृह्यासंग्रहाख्यं यः पुमानधीते, सखल्वयं सर्व्वकर्म्मसु गृह्योक्तेषु अ-संमूढः मोहरहितःपरामुत्कृष्टां सिद्धिं प्राप्नोति ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दशर्मकृतकुलोचित धर्मशिक्षायांसभाष्यसहितपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः॥

जन्मनाजायतेशूद्रः संस्काराद्विजउच्यते ।
वेदाभ्यासाद्भवेद्विप्रो ब्रह्मजानातिब्राह्मणः॥१॥

भावार्थ–जन्म होने पर शूद्रके समान है (जन्मना जायतेशूद्रोनभवति) और संस्कार से द्विज होता है और वेदारंभ से विप्र होता है और ब्रह्म जानने से ब्राह्मण होताहै यह मत वेदांतसार का है सो ठीक नहीं है।

तात्पर्य्य–वसिष्ठजीने कहा है कि ब्राह्मणका जन्म गायत्री छन्द से होता है और चरणव्यूह में ऐसा लिखा है कि " छन्दोवद्धर्णवर्णायत्यविद्योलभतेविद्यांजातिस्मरोथजायतेजन्मनिजन्मानिवेदपारगो भवत्यव्रतोव्रती भवत्यब्रह्मचारीब्रह्मचारीभवति" ऋषियों के पुत्र ऐसेही होते हैं जो यह कहागया है कि (जन्मना जायतेशूद्रः) सो यह लोकसंप्रदायक अज्ञानार्थ है यह ठीक नहीं है क्योंकि पैदा होने पर अज्ञानपुरुष को उसका तेज नहीं

---

१ स्मृति में

देखता कि जैसे सूर्य्य प्रातःकाल के चन्द्रमा सायंकाल के पूर्णदृष्टि से होते हैं लेकिन तेज प्रकाश न होनेपर सबके दृष्टि सम्पूर्ण पड़ती है सो इसीतरह से बलवान् होने पर वह तेज देखता है तबहीं मनुष्यों को प्रतीत होता है। जब हनुमान्जी का जन्म हुवा तो उसी वक्त सूर्य्य नारायण प्रातःकाल के तेज न होने पर हनुमान् जीने अपने मुख में डाल लिया तो पीछे से इन्द्रजी ने हनुमान्जी को वज्र मारा है तब उनका मुख टेढ़ा हो- गया सूर्यनारायण निकल पड़े अगर सूर्यनारायण का तेज बलवान् होने पर याने मध्याह्न में होता तो क्या हनुमान्जी मुख में डाललेते क्योंकि सूर्य पंचम अग्नि है इसी तरह से ब्राह्मणों के बालक पैदा होने पर उन का तेज नहीं देखता क्योंकि उनके माता पिताके अ- नुकूल है क्योंकि कश्यपके पुत्र गरुड़जी थे वे भी पैदा होनेपर आकाश में सूर्यमण्डल तक पहुंच गये थे और उनका प्रताप उसी दिन जाहिर हुआ कि गरुड़जी का जन्म हुआ इसी तरह हनुमान्जी का भी जन्म जाहिर होगया था कि हनुमान्जी प्रगट हुये सो यह बालक के पिता के अधीन है जैसे संस्कार से करेगा वैसे तेजवान् होगा देखिये कि उपमन्यु ऋषिने जिस दिन जन्म पाया था उनकी माता के दूध नहीं होता था तो उनकी माता यव का पिसान पानी में घोलकर पिलाती थी तो कई दिन पीलिया और एक दिन नहीं पिया तब माता ने

कहा कि वेटा! दूध क्यों नहीं पीता तब लड़के ने कहा कि हे माता! यह दूध नहीं है माता ने वारंवार कहा लेकिन उपमन्यु ने नहीं पिया तब माता ने कहा कि हे बेटा! जब महादेव जिसको दें तभी मिलता है दूध नहीं तो नहीं उपमन्यु ने कहा कि जब महादेवजी दूध देंगे तभी पियेंगे अन्यथा नहीं सारे गांवभरने कहा लेकिन नहीं माना तब ग्यारह दिन कुछ भी नहीं पान किया वाद कैलास से शङ्करजी नन्दीश्वरजी में पार्वती सहित सवार होकर उपमन्युजी को अभीष्ट वर देने को प्राप्तहुये और कहा हे पुत्र! तू क्या चाहता है तब बोले कि आप कौन हैं तब शङ्करजी बोले कि हम महादेव जी हैं तब कहा कि हमको दूध दो तब महादेवजी ने कहा कि तुम को हमने दूध दिया तुम पयोनिधि हो याने क्षीरसमुद्र के अधिपति हो इतना कह अन्तर्द्धान होगये और उनके स्थान पर माता के दूध होगया इसी तरह से गांवभर में दूधही उपमन्युजी के वास्ते होगया तो क्या शूद्रका लड़का भी ऐसे प्रताप को पहुंच सक्ता है सो अन्यथा अपने मनमें कल्पना करना ठीक नहीं है क्योंकि किसी के सींग तो होतेही नहीं हैं कि जिस में पहिचान हो लेकिन अपने प्रताप करके जाहिर हो- जाते हैं कि ब्राह्मण के गर्भाधानादिसंस्कार होते हैं इससे क्रम से सब संस्कार होते हैं यज्ञोपवीत होनेपर समावर्त्तन में वेदारम्भ कराया जाता है और (ब्रह्म

जानाति ब्राह्मणः) ऐसा पद कहा गया है सो ब्रह्मवि- द्याच गायत्री ब्रह्मस्वरूपिणी यही ब्रह्म को जो जानता है वही ब्राह्मणहै अन्यथा नहीं है कि जैसे लिखाहै कि-

नास्तिवेदात्परंशास्त्रं नास्तिमातुःपरोगुरुः ॥
नास्तिदानात्परंमित्रमिहलोके परत्र च ॥ २ ॥

अत्रिस्मृति—अ० १—श्लो० १४८

इस लोक और परलोकमें वेद से परे शास्त्र नहीं माता से परे गुरु भी नहीं और दान से परे मित्र नहीं है ॥२॥

जितने ऋषि हुये हैं सो सब ब्रह्मविद्या गायत्री, सावित्री, सरस्वतीजी करके त्रिगुणात्मक ब्रह्मविद्या यही है इसी को ब्रह्मा, विष्णु और महेश सबही को ध्यान करते हैं जो ब्राह्मण इसको जानता है वही ब्राह्मण है अन्यथा नहीं ॥

यद्दित्तंचतद्भुङ्क्ते न दत्तं नोपतिष्ठते ॥
भुक्त्वास्वर्गाद्दिजंसौख्यं पुण्यवाञ्जन्मभारते॥३॥
लभेद्विप्रकुलेष्वेव कर्मणैवोत्तमादिषु ॥
भारतेपुण्यवान्विप्रो भुक्त्वास्वर्गादिकंफलम्॥४॥
पुनःसोपिभवेद्विप्रश्चैवंचक्षत्रियादयः ॥
क्षत्रियोवाऽथवैश्योवा कल्पकोटिशतेन च ॥
नयस्माद्ब्राह्मणत्वंच न प्राप्नोतिश्रुतौश्रुतम् ॥ ५ ॥

जो दिया है सोई भोगाजाता है विना दिये नहीं

मिलता- स्वर्गादि भोगकर यह पुण्यात्मा प्राणी भारत में जन्म लेकर, ब्राह्मण होताहै क्रम से उत्तम गति को प्राप्त होताहै भारत में पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गादि फल भोगकर फिर विप्र होताहै इसी प्रकार क्षत्रियादि जानने, क्षत्रिय, वैश्य, कोई क्यों न हो सौ कोटि कल्पमें भी तपस्या करके ब्राह्मण नहीं बनता जन्मसे ही होता है यह श्रुति में कहा है ॥ ३–५ ॥

देवीभागवतनवमस्कन्ध अ० ३०–श्लो० ६६–६६

अब चारों आश्रमों को वर्णन करते हैं ॥

पहले ब्रह्मचर्य्य आश्रम का वर्णन करते हैं–

चत्वारआश्रमा ब्रह्मचारीगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकास्तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाविशीर्णब्रह्मचर्य्योपनिक्षेप्तुमावसेद्ब्रह्मचार्याचार्य्यं परिचरेत् आशरीरविमोक्षणात् आचार्य्ये प्रमृते अग्निं परिचरेत् विज्ञायतेहितवाग्निराचार्य्य इति सयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्ष्यमाचरेत् गुर्वधीनोजटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छन्तमनुगच्छेदासीनं चानुतिष्ठेच्छयानं चाशीनोपविशेत् आहूताध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भु

ञ्जीत खट्वाशयनदन्तप्रक्षालनाभ्यञ्जनवर्जीस्तिष्ठे दहनिरात्रावासीत त्रिष्कृत्वाह्युपेयादयः ॥ १ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ये चार आश्रम हैं तिन चारों में ब्रह्मचारी एक वेद वा दो वेदों को पढ़कर और नष्ट नहीं हुआ है ब्रह्मचर्य्य जिसका अपने देह को गुरु के निवेदन करने के लिये गुरुके यहां पर वसे और गुरुकी सेवा शरीर छूटने तक करै और आचार्य्य के मरने पर अग्नि की सेवा करै क्योंकि शास्त्र से जाना है कि तेरा अग्नि आचार्य है वाणी को रोके और चौथे छठे आठवें काल में भोजन करै और भिक्षा मांगे गुरुके अधीन रहै, जटा धारे वा शिखा को ही जटा समझ गमन करते हुये गुरुके पीछे गमन करै और बैठे पीछे बैठे सोने के पीछे सोवे, बुलाने पर पढ़े सम्पूर्ण भिक्षाको गुरुको देकर गुरुकी आज्ञा से भोजन करै खाट पर सोना दांतों का धोना उबटना इन को छोड़कर टिके दिन रात गुरुके यहां रहे और तीनचार जलों के पास जाय ॥ १ ॥ इति ब्रह्मचर्याश्रमः ॥

अथ गृहनिर्माणस्य चक्रमाह ॥

स्नानस्यपाकशयनास्त्रभुजेश्चधान्य
भाण्डारदैवतगृहाणिचपूर्वतःस्युः।
तन्मध्यतस्तुमथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥ १ ॥

पूर्वदिशा में स्नानगृह बनावै आग्नेय में पाकगृह अर्थात् रसोईगृह बनावै दक्षिण में शयनगृह नैर्ऋत्य में शस्त्रगृह बनावै पश्चिमसें भोजनगृह शुभ है वायव्य में धान्यसंग्रहगृह बनावै उत्तर में भाण्डारगृह अर्थात् वरतन रखना शुभ है ईशान में देवतागृह तिनके वीच में क्रमसे दधिमथनगृह वा घृतसंग्रहगृह वा पुरीषगृह अर्थात् विष्ठात्यागकरना व विद्याभ्यासकरना व रोदनगृह व रतिगृह तथा औषधगृह व सर्वधामगृह ये वीच में वनावै गृहोंको चक्रसे समझलेना ॥ १ ॥

पूर्व

ईशान	देवस्थान	कूप	स्नानगृह	मथनगृइ	पाकगृह	आग्नेय
	सर्वधाम				धान्यस्थान	
	भाण्डारगृह				शयनस्थान	
उत्तर	औषध		आंगनभूमि		मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थान	दक्षिण
	रतिस्थान					
वायव्य	धान्यगृह	रोदन	भोजनस्थान	विद्याभ्यास	अस्त्रगृह	नैर्ऋत्य

पश्चिम

अब गृहास्थाश्रम वर्णन करते हैं–

गृहस्थीनिर्वीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वा समानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत् पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः वैवाह्यमग्निमिन्ध्यात् सायमागतमतिथिं नावरुन्ध्यात् नास्यानश्नन् गृहे वसेत् " यस्यनाश्नाति वासार्थी ब्राह्मणो गृहमागतः। सुकृतंतस्य यत्किञ्चित्सर्वमादाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि तिथिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ " नैकग्रामीणमातिथिविप्रं साङ्गतिकं तथा कालेप्राप्ते अकाले वा नास्यानश्ननगृहेवसेत् श्रद्धाशीलं स्पृहालुरलमग्न्याधेयायमानाहिताग्निः स्यात् अलं च सोमपानाय नासोमयाजीस्याद्युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेपुम्यात्सर्वेषां सत्यमक्रोधोदानमहिंसाप्रजननं च पितृदेवतातिथिपजायां पशुं हिंस्यात " मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्माणि । अत्रैवचपशुंहिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः ॥ नकृत्वाप्राणिनांहिंसां मांसमुत्पद्यतेक्वचित्। नचप्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥

थापि ब्राह्मणाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा महोजं वा पचेत् एवमस्यातिथ्यं कुर्वन्तीति अभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः सूनृताभिर्मानयेत् यथाशक्तिचान्नेन सर्वभूतानि (गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यतेतपः । चतुर्णामाश्रमाणांतु गृहस्थस्तुविशिष्यते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्तिसंस्थितिम् । एवमाश्रमिणः सर्वेगृहस्थेयान्तिसंस्थितिम् ॥ यथामातरमाश्रित्य सर्वेजीवन्तिजन्तवः । एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वेजीवन्तिभिक्षवः) नित्योदकीनित्ययज्ञोपवीतीनित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जीऋतौग च्छन्विधिवच्चजुह्वन् ॥ इति वाशिष्ठवचनात् ॥

क्रोध और आनंदसे रहित गृहस्थी गुरुकी आज्ञासे स्थान (जो ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में आनेके लिये विधिपूर्वक होता है) करके अन्यगोत्रकी, जिसको मैथुनका स्पर्श न हुआ हो जो युवति (जवान) हो और अपनी तुल्यहो माता के बंधुओं से पांचवीं और पिताके बंधुओं से जो सातवीं हो ऐसी स्त्री को विवाहे और विवाहकी अग्निको प्रज्वलित करै—सायंकालके समय आये अतिथिका अवरोध (निरादर) न करै और गृहस्थीके घर में भोजनके विना अतिथि न वसे और जिस गृहस्थीके

घर में आया प्रयोजनवाला ब्राह्मण भोजन नहीं करता उसका जो कुछ पुण्यहै उस सबको लेकर चलाजाता है एकरात्र वसता हुआ ब्राह्मण अतिथि कहा है जिससे उसकी तिथि अनित्यहै इसलिये उसे अतिथि कहाहै एक ग्रामका और संग आया अतिथि नहीं होता समयपर वा असमयपर आवे परन्तु गृहस्थी के घर में भोजन के बिना अतिथि न वसै श्रद्धामें शील रक्खे स्पृहा (इच्छा) करे अग्निहोत्र के लिये समर्थ है इससे गृहस्थी अग्नि- होत्रसे हीन न हो सोमपीनेको समर्थ है इससे सोमयज्ञ से हीनहो—वेदपाठ प्रजनन (स्त्री का संग) यज्ञ इनमें सुस्करहे और सब वर्णोंका सत्य क्रोध का अभाव व दानहिंसा का त्याग और प्रजनन (जातकर्म) धर्म है और पितर देवता और अतिथि इनकी पूजा में पशुकी हिंसा करै क्योंकि मनुने यह कहा है कि मधुपर्क यज्ञ पितर और देवताओंके निमित्त कर्म इनमें ही पशुकी हिंसा करै अन्यथा न करै और प्राणियोंकी हिंसा किये बिना कहीं भी मांस पैदा नहीं होता और प्राणियों का मारना स्वर्गदेनेवाला भी नहीं है जिससे यज्ञ में हिंसा हिंसा नहीं हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय और अभ्यागत इन के लिये बड़ा बैल व बड़ा अज (बकरा) पका व इसी प्रकार उनका आतिथ्य (सत्कार) करते हैं घर में आये हुये को उठना, आसन, शय्या, कोमल वाणी इनमें माने शक्तिके अनुसार अन्न से गृहस्थही सब भूतों की

यज्ञ करताहै गृहस्थही तप करताहै और चारों आश्रमों से गृहस्थी ही श्रेष्ठ है जैसे सम्पूर्ण नद और नदी समुद्र में टिकते हैं इसी प्रकार सब आश्रमवाले गृहस्थ में टिकते हैं जैसे सब जीव माता के आश्रय से जीते हैं इसी प्रकार सब भिक्षुक गृहस्थी के आश्रय जीवते हैं जो नित्य तर्पण करे नित्य यज्ञोपवीत को धारे और नित्य पढ़ै और पतित के अन्न को त्यागे ऋतुकाल के समय स्त्री का सङ्ग करै विधि से होम करे॥

अथ पञ्चभूतनिर्णयंव्याख्यास्यामः॥

अब हम पञ्चभूत परमात्मा का निर्णय करते हैं कि जिससे हमारा शरीर उत्पन्न हुआ अर्थात् इसी शरीर में पञ्चभूत परमात्मा निवास करता है इसी पञ्चभूतदेव की उपासना होती है कि जैसे तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है कि—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशःसम्भूतआकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी"।

इस आत्मा से आकाश पैदा हुआ और आकाशसे वायु और वायुसे अग्नि और अग्निसे जल और जलों से पृथिवी पैदा हुई।

अब पञ्चभूतों के पृथक् २ देवताओं के नाम वर्णन करते हैं ॥

(१) ॐ श्रीमाकाशमूर्तये नमः । (२) ॐ उग्रायवायुमूर्तये नमः । (३) ॐ अग्नि मूर्तये नमः । (४) ॐ भवाय जलमूर्तये नमः । (५) ॐ सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः ।

आकाश में देवी का स्थान है—तदनन्तर शिवजी का स्थान है—तिसके अनन्तर सूर्य का स्थान है—फिर तिसके नीचे जल का स्थान है याने विष्णु का—तिसके नीचे पृथ्वी का स्थान है याने गणेशजी का ।

अब इन्हीं पञ्चदेवताओं की उपासना द्विजातियों को करना उचित है इसके विपरीत जो चलेगा सोही पाखण्ड है ।

अब पञ्चदेवताओं के स्थान बैठने के विधिपूर्वक वर्णन करते हैं ॥

अथ पञ्चायतनप्रकारो लिख्यते ॥

आदित्यंगणनाथञ्च देवीं रुद्रं च केशवम ॥
पञ्चदैवत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥ १ ॥

अथ सूर्यपञ्चायतनम् ॥

मध्येत्वांशुमंतमग्नौ ईशान्यांपार्वतीपतिम् ॥

आग्नेय्यामेकदन्तंच नैर्ऋत्यामच्युतंतथा॥
वायव्यांपूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकभूमितिम्॥ १॥

इति सूर्य्यपञ्चायतनम्॥

अथ गणेशपञ्चायतनम्॥

हेरम्बन्तुयदामध्ये ईशान्यामच्युतंयजेत्॥
आग्नेय्यांपञ्चवक्त्रन्तु नैर्ऋत्यांजगदम्बिकाम्॥
वायव्यांद्युमणिञ्चैव यजेन्मन्त्रीह्यतन्द्रितः॥२॥

इति गणेशपञ्चायतनम्॥

अथ देवीपञ्चायतनम्॥

भवानींतुयदामध्ये ईशान्यांमाधवंयजेत्॥
आग्नेय्यांपार्वतीनाथं नैर्ऋत्यांगणनायकम्॥ प्र
द्योतनन्तुवायव्यामाचार्यस्तुप्रपूजयेत्॥ ३॥

इति देवीपञ्चायतनम्॥

अथ शङ्करपञ्चायतनम्॥

शङ्करंतुयदामध्ये ईशान्यांश्रीपतिंयजेत्॥
आग्नेय्यांचतथाहंसं नैर्ऋत्यांपार्वतीसुतम्॥ वाय
व्यांचसदापूज्या भवानीभक्तवत्सला॥ ४॥

इति शङ्करपञ्चायतनम्॥

अथ विष्णुपञ्चायतनम् ॥

यद्वातुमध्येगोविन्दमीशान्यांशङ्करंयजेत् । आग्नेय्यांगणनाथंच नैर्ऋत्यांतपनंतथा ॥ वायव्यामम्बिकाञ्चैव यजेन्मन्त्रीसमाहितः ॥ ५ ॥

इति विष्णुपञ्चायतनम् ॥

विष्णु	शिव
देवी.	
सूर्य	गणेश
देवीपञ्चायतन ॥	

विष्णु	सूर्य
शम्भु.	
देवी	गणेश
शम्भुपञ्चायतन ॥	

शिव	गणेश.
सूर्य.	
देवी	विष्णु
सूर्यपञ्चायतन ॥	

शिव	गणेश
विष्णु.	
देवी	सूर्य
विष्णुपञ्चायतन ॥	

विष्णु	शिव
गणेश.	
देवी	सूर्य
गणेशपञ्चायतन ॥	

गणेशादिपञ्चदेवतानांवैदिकपूजन प्रकरणमाह ॥

श्रीगणेशजी के स्नान का मन्त्र ॥

ॐ आनूनइन्द्रक्षुमन्तंचित्रंग्राभ सङ्गृभाया । महाहस्तीदक्षिणेन ॥ १ ॥

श्रीसूर्य्यनारायणजी के स्नान का मन्त्र ॥

ॐ उदुत्यञ्जातवेदसंदेवंवहन्तिकेतवः ॥ दृशे विश्वायसूर्यम् ॥ २ ॥

श्रीदेवीजी के स्नान का मन्त्र ॥

ॐ इमꣳस्तोममर्हतेजातवेदसेरथमिवसम्महे मामनीषया ॥ भद्राहिनःप्रमतिरस्यसꣳसद्यग्ने सख्येमारिषामावयन्तव ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी के स्नान का मन्त्र ॥

ॐ आवोराजानमध्वरस्यरुद्रꣳहोतारꣳसत्य यजꣳरोदस्योः ॥ अग्निंपुरातनयित्नोरचित्तद्धिर ण्यरूपमवसेकृणुध्वम् ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुजी के स्नान का मन्त्र ॥

ॐ इदंविष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदं ॥ समूढ मास्यपाꣳसुले ॥ त्रीणिपदाविचक्रमेविष्णुर्गोपा अदाभ्यः ॥ अतोधर्म्माणिधारयन् ॥ विष्णोःक र्म्माणिपश्यतयतोव्रतानिपस्पशे ॥ इन्द्रस्ययुज्यꣳ

सखा॥ तद्विष्णोःपरमंपदꣳसदापश्यन्तिसूरयः॥
दिवीवचक्षुराततं॥ तद्विप्रासोविपन्यवोजागृवाꣳस
स्समिन्धते॥ विष्णोर्यत्परमंपदं॥ अतोदेवाअव
न्तुनोयतोविष्णुर्विचक्रमे॥ पृथिव्याअधिसानवि॥

ये पांचो मन्त्र देवताओंके जल से स्नान करने के हैं।

अब पञ्चामृतस्नानके मन्त्र लिखते हैं॥

ॐ अभित्वाशूरनोनुमोदुग्धाइवधेनवः॥ ईशा
नमस्यजगतःस्वर्दृशमीशानमिन्द्रतस्थुषः॥ इति
दुग्धस्नानम्॥

ॐ दधिक्राव्णोअकारिषंजिष्णोरश्वस्यवाजि
नः॥ सुरभिनोमुखाकरत्प्रणआयूꣳषितारिषत्॥
इति दधिस्नानम्॥

ॐ घृतवतीभुवनानामभिश्रियोर्वीपृथ्वीमधु
दुघेसुपेशसा॥ द्यावापृथिवीवरुणस्यधर्मणाविष्क
भितेअजरेभूरिरेतसा॥ इति घृतस्नानम्॥

ॐ रसन्नोमित्रोअर्यमापिबन्तुवरुणःकवे॥ प
वमानस्यमरुतः॥ इति शर्करास्नानम्॥

ॐ पवस्वमधुमत्तमइन्द्रायसोमक्रतुवित्तमोम
ः ॥ महिद्युक्षतमोमदः ॥ इति मधुस्नानम् ॥

अब शुद्ध जलों मे स्नान कराने का
मन्त्र लिखते हैं ॥

ॐ एतोन्विन्द्रꣳस्तवामशुद्धाꣳशुद्धेनसाम्न ॥
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ १ ॥
न्द्रशुद्धोनआगहिशुद्धःशुद्धाभिरूतिभिः ॥ शु
द्धोरयिंनिधारयशुद्धोममधिसोम्य ॥ २ ॥ इन्द्रशु
द्धोहिनोरयिꣳशुद्धोरत्नानिदाशुषे ॥ शुद्धोवृत्राणि
जेघ्नसेशुद्धोवाजꣳसिषाससि ॥३॥ इति ॥

स्नानके बाद यज्ञोपवीत देना चाहिये ॥

ॐ ब्रह्मयज्ञानंप्रथमंपुरस्ताद्विसीमतःसुरुचो
वेनआवः ॥ सबुध्न्याउपमाअस्यविष्ठाःसतश्च
योनिमसतश्चविवः ॥

चन्दन चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ अर्चतप्रार्चतानरः प्रियमेधासोअर्चत ॥
अर्चन्तुपुत्रकाउतपुरमिधृस्नर्चत ॥

अक्षत चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रियाअधूषत ॥ स्तोषतस्वभानवोविप्रान विष्ठयामतीयोजान्विन्द्रतेहरी ॥

पुष्प चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ तपोष्पवित्रंविततंदिवस्पदेर्चन्तो अस्य तन्तवोव्यवस्थिरन् ॥ अवन्त्यस्यपवितारमाशवः पृष्ठमधिरोहन्तितेजसा ॥

धूप देने का मन्त्र ॥

ॐ त्वेषस्तेधूमऋण्वति दिविसञ्छुक्रआततः ॥ सूरोनहिद्युतात्वंकृपापावकरोचसे ॥

दीप करने का मन्त्र ॥

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रोज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ॥ सूर्योज्योतिर्ज्योतिःसूर्यः ॥

नैवेद्य चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ प्रेष्ठम्वोअतिथिᳬ स्तुषेमित्रमिवप्रियम

अग्नेरथन्नवैद्यम् ॥ स्वादिष्ठयामादिष्ठयायवस्वसो
मधारया ॥ इन्द्रायपातवेसुतः ॥

ताम्बूल चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ पान्तमावोअन्धसइन्द्रमभिप्रगायत ॥ वि
श्वासोहꣳशतक्रतुम्मꣳहिष्ठंचर्षणीनाम् ॥

पूगीफल चढ़ाने का मन्त्र ॥

ॐ ऐभूर्यावतोवृक्षऊर्ज्जीवफलनीभव ॥ पर्णं
वनस्पतेनुत्वानुत्वाश्रूयताꣳरईः ॥

दक्षिणा देनेका मन्त्र ॥

ॐ हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्यजातःप
तिरेकआसीत्सदाधार पृथिवींद्यामुतेमांकस्मै देवा
यहविषाविधेम ॥

माला आसन और जप
मंत्रका संस्कार लिखतेहैं ॥

प्रकट हो कि माला तीन प्रकारकी हैं एक करमाला
दूसरी मनमाला तीसरी मणिमाला करमाला यह है
जैसा कि मालातंत्रमें श्लोक लिखा है ॥

"अनामिकाद्वयंपर्वकनिष्ठादिक्रमेणतु ॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता ॥ १ ॥
अङ्गुल्यग्रेचयज्जप्तं यज्जप्तंमेरुलङ्घनात् ॥
पर्वसन्धिषुयज्जप्तं तत्सर्वंनिष्फलंभवेत् ॥ २ ॥
संस्थाप्यहृदयेहस्तं तिर्य्यक्कृत्वाकराङ्गुलीः ॥
आच्छाद्यहस्तौवस्त्रेण दक्षिणेनसदाजपेत् ॥ ३ ॥

अर्थात् बीचमें दोपोर छोड़कर बाकी सबपोरों मे जाप करे और कपड़ेसे हाथ बन्द करके हाथको छाती लगाकर तिरछे हाथसे जाप करना चाहिये और पोरों की लकीरों मे जप करने से वह जप व्यर्थ होजाता है और अन्यमालाओं मे रुद्राक्ष की माला श्रेष्ठतर कही है ॥

गौतमसंहितायांयथा—

"इन्द्राक्षरुद्राक्षपद्माक्ष पुत्रजीवकमौक्तिकैः ॥
स्फाटिकैर्मणिरत्नैश्च स्वर्णैश्चविद्रुमैस्तथा ॥ ४ ॥
राजतैःकुशमूलैश्च गृहस्थस्याक्षमालिका ॥
अङ्गुलीगणनादेकं पर्वपर्यन्तमुच्यते ॥ ५ ॥
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतसंख्यैःसहस्रकम् ॥

कुशग्रन्थ्याकोटिशतं रुद्राक्षैस्स्यादनन्तकम्॥
सर्वैर्विरचितामाला नृणांमुक्तिफलप्रदा॥८॥"

और जब कि माला न मिले तब अँगुलियोंपर जप करना चाहिये और पचीस दानेकी माला मुक्तिदेनेवाली होतीहै और तीसदाने की माला धन और सत्ताईस दानेकी सर्व कार्य और मनोरथ और पन्द्रह दाने की माला शत्रुका नष्ट करनेवाली है और चौवन दाने की माला से तमाम काम सिद्ध होतेहैं और एकसौआठ दानेकी माला सबसे उत्तमहै। आसन १ सकाम लोगों के वास्ते लाल आसन अच्छाहै और काला आसन ज्ञान और मुक्तिके चाहनेवालोंको उचित है और माया के चाहनेवालोंको बाघम्बर का आसन योग्यहै और मंत्र केवल कुश आसन के ऊपर जप करने से सिद्ध होताहै और आसन के ऊपर मंत्र जप करने से दुःख होताहै और काठके ऊपर आसन लगाने से निर्द्धनता प्राप्त होतीहै और पत्थर का आसन रोगको उत्पन्न करताहै और घास आदि का आसन यशकीर्त्ति को नष्ट करने-वालाहै और वृक्ष के पत्तों का आसन बुद्धि का कारण है और वस्त्रके आसन से जप और तप नष्ट होजाताहै हा! यद्यपि कुछ और न मिले तो कुछ हानि भी नहीं है और जो वस्त्र में रेशम या ऊन मिलाहो तो अयोग्य नहीं और कोई गृहस्थ विना दीक्षाके मृगचर्म पर किसी

प्रकार बैठे नहीं इस कारण से कि यह आसन केवल उद्यमी ब्रह्मचारी और यती के लिये रक्खा गयाहै और भेड़, हाथी, शेर, ऊँट, रीछ और सांपकी खालपर केवल मोहन आदि मंत्र जप करते समय बैठना योग्य है और गृहस्थ को चाहिये कि मालाको विधिसंयुक्त डोरे में पिरोकर मंत्रों से ठीक करे और फिर उसको छिपाकर रक्खे नहीं तो जप नष्टहोजाता है जप चारों पदार्थ का देनेवाला है जो विधि से कियाजाये और यज्ञसे कम जप नहीं है और यह जप तीन प्रकार का है प्रथम वाचक, द्वितीय उपांशु, तृतीय मानस, जब मंत्र वचन के साथ पढ़ा जाता है तो यह वाचक जप कहाजाता है और जब कि केवल अपने कानतक कुछ सुनने में आता है तो यह उपांशु है और जब कि मंत्र केवल मनहीं मनमें अक्षर और मात्राओंसमेत जप कियागया तो यह मानस है और उचित है कि जप करने के समय मंत्र का अर्थ समझता जावे और मनको दृढ़ करके दूसरी ओर न जाने दे और मानस जप दोनों प्रकारके जपोंसे दशहजार गुण बड़ाहै।

और स्तोत्र को गुप्त और जपको ऊंचे पढ़ता है तो उस को फल नहीं प्राप्त होताहै जैसा कि पानी कच्चे कुल्हड़े से नहीं निकल सक्ता और जो मनुष्य मंत्रको अर्थ चैतन्यता भग और मुद्राके जानने विना सवा लक्ष-पर्यन्त भी जपकरे तौ भी सिद्ध नहीं होसक्ता मंत्रके संस्कार जो दश प्रकार के हैं जैसा कि रुद्रयामलतंत्र में लिखाहै कि॥

अथ मन्त्राणां संस्कारमाह॥

"जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।
तथाभिषेको विमलीकरणात्पोषणंपुनः॥
तर्प्पणंदीपनंगुप्तिरित्येतामन्त्रसंस्क्रियाः॥ ६॥"

सो जो मनुष्य विना भूप कलावती भूषण उपदेश प्रयोग और पंच आदिके मालूम करने विना कुछ जप या उपदेश करता है वह निरर्थक है॥

अव बिल्वपत्रकाव्याख्यानकरते हैं॥

विना विल्वपत्र के शिवजी की पूजा और विना तुलसी विष्णुजीकी पूजा और वलिदान विन देवीजी की पूजा उत्तम और रुचिकारक नहीं है। औरजो कोई मनुष्य दो या तीन विल्वपत्र भी शुद्धतापूर्वक शिवजी के ऊपर चढ़ावै तो उसके मुक्त होने में कुछ भी सन्देह नहीं है और जो विल्वपत्र कटी न हो तो ऐसी एक

बिल्वपत्र भी शिवजीके ऊपर चढ़ावै तो शिवलोक में जाताहै और बिल्ववृक्ष के दर्शन व स्पर्शन व प्रणाम करने से रात दिनके सम्पूर्ण पाप दूर होतेहैं। और चौथ, अमावस अष्टमी, नवमी, चौदश, संक्रांति और सोमवार के दिन बिल्वपत्रका तोड़ना मना है ॥

तदुक्तं लिङ्गपुराणे–

"अमारिक्ताचसंक्रान्तास्वष्टम्यां चन्द्रवासरे।
बिल्वपत्रंनचच्छिन्द्याच्छिन्द्यात्रोनरकंव्रजेत् ॥"

में लिखाहै कि विल्वपत्र और तुलसी उलटी चढ़ाना चाहिये बाक़ी और सव फूल फल जिस तरह पैदा होते हैं उसी तरह चढ़ाना चाहिये लेकिन स्कंदपुराण व कई अन्य पुराणों में आज्ञा है कि विल्वपत्र फूल आदि औंधे कभी न चढ़ावे वरन जिसतरह उपजते हैं उसीतरह चढ़ाना चाहिये और शिवजी महाराज का वाक्य है कि हमको रत्न, मोती, मूंगा हीरा आदि विल्वपत्र विना रोचक नहीं हैं और विल्वपत्र व कंमल चढ़ानेकी संख्या एकहज़ार तक की है पर एक या दो या अठारह हज़ार से अधिक होजाना चाहिये जव कि वासी में कुछ भी हानिहै तो संख्या पूरी करदेना चाहिये और जहां कहीं कि धूप दीप और नैवेद्य आदि न हो वहां विल्वपत्रों से पूजा पूर्ण करदेनी चाहिये और जो अपने पुत्र या शिष्य या नौकरके सिवाय किसी दूसरे मनुष्य की लाई हुई या शूद्रसे मोलपर तुलाईहुई विल्वपत्र कोई चढ़ावै तो वड़ा पाप होताहै और जो अपने हाथसे कोई मनुष्य नर्म और साफ विल्वपत्र लाकर चढ़ावै तो वह शिवलोक में पहुंच कर शिवके सदृश आपभी होजावै और जो हरदिन एक विल्वपत्र[1] भी अपनी लाई हुई कि वह कीड़े और मकड़ी आदि से साफ हो शिवजीके ऊपर चढ़ावै तो बहुत फल पाताहै और शिवजी के पञ्चाक्षर मंत्रसे निश्चयपूर्वक

१—लेकिन विल्वपत्र ऐसी न हो कि खगावहो अगर विल्वपत्र में कीड़े आदि न होंगे उसको (वासी विल्वपत्र) जलमें धोकर चढ़ावे ॥

बिल्वपत्र शिवके ऊपर चढ़ावे तो अवश्य शिव होजावे।

अथ शिवलिङ्गस्य मुद्रा लिख्यते ॥

स्कन्दपुराणे ॥

"उच्छ्रितेदक्षिणाङ्गुष्ठेवामाङ्गुष्ठेनबन्धयेत् ।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्चवेष्टयेत ॥
लिङ्गमुद्रेयमाख्याताशिवसान्निध्यकारिणी ।
श्रीकामःशीर्ष्णिकुर्वीतराज्यकामस्तुनेत्रयोः ॥२॥
मुखेत्वन्नादिकामस्तुग्रीवायांरोगशान्तिकृत् ।
हृदयेसर्वकामार्थंबन्धनार्थीनाभिमण्डले ॥ ३ ॥
गन्ध क्षामगन्नाक्षौंगाह्ल-तामस्तुपादयोः ॥ "

निम्नाः सप्तदश मुद्रा लिख्यन्ते ॥

मधुपर्क क्या पदार्थ है और किसभांति उत्पन्न हुआ कौन २ लोग इसके अधिकारी हैं यह धरणीकी विनय वाणी सुनि वाराहजी बोले कि हे धरणि! जिसभांति मधुपर्क उत्पन्न भयाहै सो सब श्रवण करो जिससमय प्रलय होगयाथा तब हम और ब्रह्मा रुद्र ये तीनों शेष रहे और उपाधि सब लय को प्राप्त भई उससमय हमारे दहिने अङ्गसे सुन्दररूपको धारण किये निज शोभा से दिशाओंको प्रकाशकरता कीर्ति लक्ष्मी और दयाकी मानो दूसरी मूर्त्ति ही धारण किये एक पुरुष उत्पन्न भया उसे देखि ब्रह्माजी ने हमसे पूंछा कि हे भगवन्! हमतीनों में यह चौथा पुरुष कौन है सो आप कृपा करके स्फुट कथन करैं इस भांति हे धरणि! ब्रह्माजी की वाणी सुनि हमने कहा कि हे ब्रह्मन्! यह पुरुष सब कर्म्मोंको साङ्गता पूर्ण करनेवाला मधुपर्क नाम भक्तों का मुक्ति देनेहारा है और इसे हमने उत्पन्न किया है इस हमारे वचन को सुनि रुद्रजी कहनेलगे कि हे विष्णो! आपने बहुत उत्तम किया जो इसे उत्पन्न किया इस रुद्रकी वाणी सुन ब्रह्माजी बोले कि हे विष्णो! इस मधुपर्क से क्याप्रयोजनहै सो आप वर्णन करैं यह सुन वाराहजी बोले कि हे ब्रह्मन्! मधुपर्क के उत्पन्न होनेका कारण और इसके देनेसे जो फल होता है और हमारे पूजन में मधुपर्क देने से जो फल होताहै सो हम वर्णन करतेहैं सावधान हो श्रवण करो और जिसभांति मधुपर्क देनेसे उत्तम दिव्यगति

प्राप्त होतीहै सो श्रवण करो हे ब्रह्मन्! पूजन के सम
सब पूजन सामग्रीसे अधिक प्यारा मधुपर्कहै जिस
निवेदन करने से हम परमपद देते हैं उसे इस रीति
निवेदन करना चाहिये कि उत्तमपात्र में मधुपर्क र
रख यह मंत्र उच्चारण करे॥

मन्त्रः।

ॐ एषोहि देव भगवंस्तव गात्रसूतः
संसारमोक्षणकरो मधुपर्कनामा।
भक्त्यामयार्थं प्रतिपादितोऽयं
गृहाण देवेश नमो नमस्ते॥

जो मधुपर्क वेदमें लिखाहे सो किस तरहसे है इसभांति धरणि की वाणी सुनि वाराहजी बोले कि हे धरणि ! सुनो मन्त्र ॐ नमो नारायणाय । इस प्रकार से हमारा पूजन करै अन्त में शांतिस्तोत्रपाठ करै ॥

ॐ नमो नमो वासुदेवत्वंगतिस्त्वं परायणम् ।
शरणंत्वां गतोनाथ संसारार्णवतारक ॥ १ ॥
आगतस्त्वंचसुमुखे ममचित्तेन वै पुनः ।
दिशःपश्य अधः पश्य व्याधिभ्योरक्षनित्यशः २
प्रसीदस्वसराष्ट्रस्यराज्ञःसर्वबलस्य च ।
गर्भिणीनां च वृद्धीनांव्रीहीणां च गवांतथा ॥ ३ ॥
ब्राह्मणानां च सततंशान्तिकुरुशुभंकुरु ।
अन्नंकुरुसुवृष्टिंचसुभिक्षमभयंतथा ॥ ४ ॥
राष्ट्रंप्रवर्द्धतुविभो शान्तिर्भवतुनित्यशः ।

---

१ मधुपर्कंपिवेन्मन्यमन्ततो हृदयंस्पृशेत् । अपूपानां चरोश्चापिसर्व्वस्या नान्यनक्किंच ॥ १ ॥ दध्यक्षतसुमनस आपश्चेति चतुष्टयम् । अर्घ्यमेषप्रदात व्यो गृहोयेअर्घ्योर्हा'स्मृताः ॥ २ ॥ दध्यक्षतःसुमनसो घृतसिद्धार्थकाय वा. । पानीयञ्चैवदर्भाश्च अष्टांगोह्यर्घ्यउच्यते ॥ ३ ॥ सर्पिषामधुनादध्ना अर्चयेदर्हयन्सदा । ऋषिप्रोक्तेनविधिनामधुपर्केणयाज्ञिकः ॥ ४ ॥ कसेत्रित यमासिच्य कसेनपरिसवृतम् । परिश्रितेषुदेयः स्यान्मधुपर्कइतिध्रुवम् ॥५॥ मधुपर्केतथासोमे अप्सुप्राणाहुतीषुच । अनुच्छिष्टो भवेद्विप्रो यथावेदविदो विदु ॥ ६ ॥ प्राणाहुतिषु सोमेषुमधुपर्के तथैवच । आस्यहोमेषु सर्व्वेषुनो च्छिष्टोभवतिद्विज ॥ ७ ॥ दध्यनिपयसिवाऽथवाकृतान्नेमधुदद्यान्मधुपर्कमे तदाहु । दधिमधुसलिलेषु सक्तवः पृथगेतेविहितास्त्रयस्तुमन्या ॥८॥ इति गृह्यसंग्रह प्र० २ श्लो० ६१ से ६८ तक ॥

देवानांब्राह्मणानांचभक्तानांकन्यकासुच ॥५॥
पशूनांसर्वभूतानांशान्तिर्भवतुनित्यशः ।
एवंशान्तिंपठित्वातु समकर्मपरायणः ॥६॥

हे धरणि ! इसभांति शांतिस्तोत्रको पढ़ि फिर इस मंत्र को पढ़े ॥

मन्त्रः ।

ॐ योऽसौभगवान्सर्वजगत्प्रसूते
यज्ञेषुदेवेषु च कर्म्मगाढी ।
शान्ति [illegible]
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] जगाम
[illegible] ॥ २

आगच्छसन्तिष्ठइमेचपात्रे
ममापिसंसारविमोक्षणाय ॥ ३ ॥

इस मंत्रको पढ़ि ताम्रपात्रमें दधि, घृत, और मधु समभाग ले हमारे अर्पण करे यदि मधु न मिले तो गुड़ मिलाय के दे हे धरणि! हमारा अंश दधिहै, रुद्र का अंश शहद है, और घृत ब्रह्माजीका अंश है इसलिये मधुपर्क सब देवताओं का प्यारा है यदि मधुपर्क में तीनों पदार्थ न मिलें तो केवल मंत्र पढ़ि जलमात्रही ले मधुपर्क अवश्य देना चाहिये ॥

मन्त्रः।

ॐयोऽसौभवान्नाभिमात्रप्रसूतो
यज्ञैश्चमन्त्रैस्सरहस्यजप्यैः।
सोऽयंमयातेपरिकल्पितश्च
गृहाणदिव्योमधुपर्कनामा ॥ ४ ॥

हे धरणि! जो मनुष्य हमारे कहे विधान से मधुपर्क निवेदन करते हैं सो सवयज्ञों के सांग फलको पाकर हमारे लोकमें प्राप्त होते हैं और भी श्रवणकरो हे धरणि! जिस किसी के प्राणत्याग का समय होय उसे विधिपूर्वक मधुपर्क देने से सब पापोंसे छूटि वह हमारे

१-गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधाःसुराः। पाणिकर्माणिगौडी स्यान्मतथामाध्वयथमासुरा ॥ १ ॥

अब बलिवैश्वदेव का क्रम कहते हैं ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्हीपेषण्युपस्करः।
कण्डनीचोदकुम्भश्च बध्यतेयास्तुवाहयन ॥१॥
तासांक्रमेणसर्वासां निष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः।
पञ्चकृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम् ॥ २ ॥
अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम।
होमोदैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम ॥ ३ ॥
पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः।
सगृहेऽपिवसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते ॥ ४ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्चयः।
ननिर्वपतिपञ्चानामुच्छ्वसन्नसजीवति ॥ ५ ॥
अहुतंचहुतंचैव तथाप्रहुतमेवच।
ब्राह्मंयहुतंप्राशितंच पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ६ ॥
जपोऽहुतोहुतोहोमः प्रहुतोभौतिकोबलिः।
ब्राह्मंयहुतंद्विजाग्र्यार्चा प्राशितंपितृतर्पणम् ॥७॥
स्वाध्यायेनित्ययुक्तःस्याद्दैवेचैवेहकर्मणि।
दैवकर्मणियुक्तोहि बिभर्तीदंचराचरम् ॥ ८ ॥
अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ ९ ॥
यथावायुंसमाश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वजन्तवः।

लोकमें प्राप्त होता है यदि प्राण निकलने का समय होय तब हाथ में मधुपर्क ले यह मंत्र पढ़े ॥

मन्त्रः।

ॐयोऽसौभवांस्तिष्ठतिसर्वदेहेनारायणः सर्वजगत्प्रधानः। गृहाणचेमंसुरलोकनाथ भक्त्योपनीतंमधुपर्कसंज्ञम्॥ ५॥

इस संसार सागरसे पार होने के लिये मधुपर्क दे॰ हे धरगि! इसभांति मधुपर्क की उत्पत्ति हमने वर्णन किया है और इस मधुपर्कमाहात्म्यको कोई नहीं जानत जो पूजन के अंतमें देवताको मधुपर्क देते हैं उनक संसार में फिर जन्म नहीं होता और परमगतिको प्राप्त होते हैं यह मधुपर्क पवित्र और निर्मल होकर सब पापों का हरनेहारा है इस विधानको उसके लिये देना चाहिये जो गुरुभक्त ज्ञानी और बुद्धिमान् होय और जो मूर्ख और विचारहीन होय उसको कभी इस (मधुपर्क) को न देना चाहिये हे धरगि! जो पुरुष मधुपर्कमाहात्म्य श्रद्धासे पढ़े वा ब्राह्मण के मुखसे श्रवणकरे उसके सब दुःख दूर होते हैं कल्याण मंगल को प्राप्त होता है और इस माहात्म्य का पाठ करनेवाला पुरुष धन और पुत्रयुक्त हो भांति २ के संसार सुखको भोगि अंतमें हमारे लोक को आता है॥

अब बलिवैश्वदेव का क्रम कहते हैं ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्हीपेषण्युपस्करः ।
कण्डनीचोदकुम्भश्च वध्यतेयास्तुवाहयन् ॥ १ ॥
तासांक्रमेणसर्वासां निष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम् ॥ २ ॥
अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम ।
होमोदैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम ॥ ३ ॥
पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः ।
सगृहेऽपिवसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते ॥ ४ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्चयः ।
ननिर्वपतिपञ्चानामुच्छ्वसन्नसजीवति ॥ ५ ॥
अहुतंचहुतंचैव तथाप्रहुतमेवच ।
ब्राह्म्यंहुतंप्राशितंच पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ६ ॥
जपोऽहुतोहुतोहोमः प्रहुतोभौतिकोबलिः ।
ब्राह्म्यंहुतंद्विजाग्र्यार्चा प्राशितंपितृतर्पणम् ॥ ७ ॥
स्वाध्यायेनित्ययुक्तःस्याद्दैवेचैवेहकर्मणि ।
दैवकर्मणियुक्तोहि बिभर्तीदंचराचरम् ॥ ८ ॥
अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ ९ ॥
यथावायुंसमाश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वजन्तवः ।

तथागृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वेआश्रमाः ॥१०॥
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणोज्ञानेनान्नेनचान्वहम् ।
गृहस्थेनैवधार्यन्तेतस्माज्ज्येष्ठाश्रमीगृही ॥ ११॥
ससंधार्यःप्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखंचेहेच्छतानित्यंयोऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः ॥१२॥
ऋषयःपितरोदेवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासतेकुटुम्बिभ्यस्तेभ्यःकार्यंविजानता॥१३॥
स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितृञ्छ्राद्धैश्चन्दनान्नैर्भूतानिबलिकर्मणा॥ १४ ॥
कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यःप्रीतिमावहन् ॥ १५ ॥
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थेपाञ्चयज्ञिके ।
नचैवात्राशयेत्किञ्चिद्वैश्वदेवंप्रतिद्विजम् ॥ १६ ॥
वैश्वदेवस्यसिद्धस्य गृह्येऽग्नौविधिपूर्वकम् ।
आभ्यःकुर्याद्देवताभ्योब्राह्मणोहोममन्वहम् १७॥
अग्नेःसोमस्यचैवादौ तयोश्चैवसमस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो धन्वन्तरयएवच ॥ १८ ॥
कुह्वैचैवानुमत्यैच प्रजापतयएवच ।
सहद्यावापृथिव्योश्चतथास्विष्टकृतेऽन्ततः ॥१९॥
एवंसम्यग्घविर्हुत्वासर्वदिक्षुप्रदक्षिणम् ।

इन्द्रान्तकाप्यतीन्दुभ्यःसानुगेभ्योबलिंहरेत २०॥
मरुद्भ्यइतितुद्वारिक्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि।
वनस्पतिभ्यइत्येवं मुशलोलूखलेहरेत॥ २१॥
उच्छीर्षकेश्रियैकुर्याद्भद्रकाल्यैचपादतः।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यांतुवास्तुमध्येबलिंहरेत २२॥
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो बलिमाकाशउत्क्षिपेत।
दिवाचरेभ्योभूतेभ्यो नक्तंचारिभ्यएवच ॥ २३॥
पृष्ठवास्तुनिकुर्वीत बलिंसर्वात्मभूतये।
पितृभ्योबलिशेषन्तु सर्वंदक्षिणतोहरेत्॥ २४॥
शुनांचपतितानांच श्वपचांपापरोगिणाम्॥
वायसानां कृमीणांच शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥ २५॥

अर्थ–जैसे पशुओं के मारने के स्थान को सूना कहते हैं इसी प्रकार जीवों के वधका स्थान होने से गृहस्थी की पांच सूना होती हैं कि चुल्ही, चक्की, उपस्कर (मार्जनी) कण्डनी (मुसल और ऊखल) और जलका पात्र इन पांचों को गृहस्थ के काम में लाता हुआ गृहस्थी बन्धनको प्राप्तहोता है। उन पांचहत्याओं की निवृत्ति के लिये महर्षियोंने गृहस्थियों को प्रति दिन पांच महायज्ञ करने कहेहैं। पढ़ाना और पढ़ना ब्रह्मयज्ञ और अन्न व जलसे पितरों का तर्पण (तृप्ति) पितृयज्ञ और होम देवयज्ञ और बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथि का

पूजन मनुष्ययज्ञ मनुआदि ने कहा है यहां अध्यापन आदि में यज्ञ शब्द और महाशब्द स्तुति के लिये गौणहैं मुख्य नहीं। जो द्विज अपनी शक्ति के अनुसार इन पांच महायज्ञों को नहीं त्यागताहै घर में वसता हुआ भी वह द्विज सूना (हत्या)के दोषों से लिप्त नहीं होता अर्थात् उसद्विज को हत्या नहीं लगती । देवता, भूत, अतिथि, पितर और आत्मा इनको जो द्विज नहीं देता वह श्वास लेताहुआ भी नहीं जीवता है। नामभेद से वाक्यका भेद होताहै यह दिखाने के लिये इतर मुनियों ने रची पांचयज्ञों की इतर भी संज्ञा कहतेहैं, अहुत १, हुत, और प्रहुत ३, और ब्राह्मय हुत ४, और प्राशित ५ इनको मुनि पंचयज्ञ कहतेहैं। जप (ब्रह्मयज्ञ) को अहुत और होम (देवयज्ञ) को हुत और भूतोंकी बलि (भूतयज्ञ) को प्रहुत और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ की पूजन (मनुष्ययज्ञ) को ब्राह्महुत और पितरों के तर्पण (पितृयज्ञ) को प्राशित मुनि कहतेहैं। यदि दारिद्र्य आदि दोष से अतिथि के भोजन आदि कराने को असमर्थ हो तो स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) और देवकर्म (होम) में नित्य युक्तहै क्योंकि देवकर्म में युक्त (तत्पर) मनुष्य इस चराचर (स्थावर जंगम) जगतकी पालना करताहै। अग्नि में भली प्रकार दीहुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है क्योंकि सूर्य मरीचियों से रसोंको खींचता है, और वह आहुति ता रस रूपी के द्वारा वृष्टिरूप होजाताहै और

वृष्टि से अन्न होताहै और अन्नके उपभोग से प्रजा उत्पन्न होतीहैं । जैसे प्राण रूप वायु के आश्रयमें सम्पूर्ण प्राणी जीवतेहैं ऐसेही गृहस्थ के आश्रय से सम्पूर्ण आश्रम वर्त्तते (निर्वाह करते) हैं कि गृहस्थी को सब आश्रमियों का प्राणतुल्य वर्णन करतेहैं कि जिससे गृहस्थसे भिन्न तीनों आश्रमी—वेद के अर्थका व्याख्यान और अन्नदान के द्वारा गृहस्थसे ही धारण किये जातेहैं तिस से गृहस्थीही सव से ज्येष्ठ बड़े आश्रमवाला है । अक्षय स्वर्गकी और इसलोक में स्त्री संभोग स्वादिष्ट अन्न भोजन आदि सुखकी निरन्तर इच्छा करनेवाले गृहस्थी को उस ज्येष्ठ (उत्तम) गृहस्थाश्रम की बड़े यत्न से रक्षा करनी क्योंकि जिस गृहस्थकी धारणा वे नहीं कर सके जिनकी इन्द्रिय वशमें नहींहै । ऋषि, पितर, देवता, भूत और अतिथि ये सव उन कुटुम्बियों (गृहस्थाश्रम) सेही अन्न जल आदि की प्रार्थना करतेहैं, इससे वुद्धिमान् गृहस्थी यह करै कि वेद के पठन पाठन से ऋषियोंका, होमों से देवताओं का, श्राद्धों से पितरों का, अन्नों से पितरों का, वलि वैश्वदेव भूतोंका यथाविधि (शास्त्रोक्त) रीतिसे पूजन करै । पितरों की प्रसन्नता चाहताहुआ गृहस्थी अन्न आदि वा जल वा दूध, मूल और फलों से प्रतिदिन पार्वणश्राद्ध करै, यह श्राद्धशब्द पार्वणश्राद्ध का वोधक है । पितरों के निमित्त किया जो पांचयज्ञोंका कर्म उसमें चाहै एक भी ब्राह्मणको जिमावै अर्थात् सा-

सर्थ्यहोय तो बहुत भी ब्राह्मण जिमावै और वैश्वदेव के लिये किसी एकब्राह्मणको भी न जिमावे। सब देवताओं के अर्थ बनाये अन्नका होम ब्राह्मण प्रतिदिन गृह्य अग्निमें ही इन देवताओं के निमित्त प्रतिदिन करे। पहिले अग्नि, सोम, के और फिर अग्नि, सोमके फिर विश्वेदेवाओं के फिर धन्वन्तरि के निमित्त प्रतिदिन द्विज होमे करे। कुहैस्वाहा और अनुमत्यैस्वाहा और धन्वन्तरये स्वाहा, सहद्यावा पृथ्वीभ्यांस्वाहा और अन्त में स्विष्टकृतेस्वाहा इस प्रकार होम करे। इस प्रकार यथाविधानी से होमों को करके पूर्व आदि चारों दिशाओं में अनुगों सहित इन्द्र, यम, वरुण, चन्द्र इनको यथाक्रमों (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा) से [illegible]।

नमः पतितेभ्योनमः श्वपाभ्योनमः पापरोगिभ्योनमः वायसेभ्योनमः कृमिभ्योनमः इन छः मन्त्रों से पृथिवी पर शनैः २ (जैसे धूलसे न मिले) धरदेवे ॥

एवंयःसर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।
सगच्छतिपरंस्थानं तेजोमूर्तिपथर्जुना ॥२६॥

इस प्रकार जो ब्राह्मण सब भूतों को नित्य पूजता है वह प्रकाशमान कोमलमार्ग होकर परम स्थान को प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते ॥

अथ संकल्पः ॥ पूर्वोक्तायां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तपुण्यफलप्राप्तिकामः ॐ अद्यपञ्चसूनाजनित सर्वपापक्षयार्थं वैश्वदेवमहंकरिष्ये ॥ अथ भूमिजपः ॥ अग्नेपश्चाद्भूमावुपरिकृतदक्षिणं यथा संभवत् एवंन्यास्तावात्मानि मुखं यथाभवंत एवं न्यंचौपर्णिकृत्वा ॥ परमेष्ठि ऋषिरनुष्टुप्छन्दोग्नि र्दैवताभूमिजपे विनियोगः ॥ इदंभूमिभजामहइदं भद्राष्ठंसुमङ्गलम् ॥ परास्वपत्नाष्ठंवादास्वान्येषां विन्दतेधनंरात्रौवस्वन्तंजपेत् ॥ प्रापरि ऋषिःयजुरदितिर्दैवता उदकाञ्जलिप्रसेचनेविनियोगः ॥ ॐ रदितेनुमन्वस्वेति दक्षिणतःप्राङ्मुखम् ॥ ॐ

प्रजापति ऋषिःयजुःअनुमतिर्देवता उदकाञ्जलि प्रसेचने विनियोगः ॥ ॐ अनुमतेनुमन्यस्वेति पश्चिमतउदङ्मुखम् ॥ ॐ प्रजापतिऋषिःयजु सरस्वतीदेवताउदकाञ्जलिप्रसेचने विनियोगः ॥ ॐसरस्वत्येनुमन्यस्वेतिन्युत्तरतःप्राङ्मुखम् ॥ अथोदकाञ्जलिंगृहीत्वासंलग्नधारयाहोमीयद्रव्यसहमग्निप्रदक्षिणांपर्युक्षेत् ॥ ॐ प्रजापतिऋषिःत्रिष्टुप्छन्दःसविता देवतापर्य्युक्षणेविनियोगः ॥ ॐ देवसवितः प्रसुयज्ञंप्रसुयज्ञपतिंभगाय दिव्योगन्धर्वः केतपूःकेतवः पुनातुवाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ॐ वाक्नामाग्नेइहागच्छइहातिष्ठ ॥ अग्निंदूतंवृणीमहेइतिइहैवायमितरेजातवेदा हव्यंवहत्वनुप्रजानना ॥ अग्निमवाहयेत् ॥ ततो व्याहृतिहोमः ॥ ॐ प्रजापतिऋषिःगायत्रीछन्दो ग्निर्देवताव्याहृतिहोमे विनियोगः ॥ ॐ भूः स्वाहा ॥ ॐ प्रजापति ऋषिःउष्णिक्छन्दःवायुर्देवताव्याहृतिहोमे विनियोगः ॥ ॐ भुवःस्वाहा ॥ ॐ प्रजापतिऋषिः अनुष्टुप्छन्दःसूर्योदेवताव्याहृतिहोमे विनियोगः ॥ ॐ स्वःस्वाहा ॥ ॐ प्रजापतिऋषिःगायत्रीछन्दोग्निर्देवतामहाव्याहृति

होमे विनियोगः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ पुनः तिस्रः ॥ ॐ भूः स्वाहा ॥ ॐ भुवः स्वाहा ॥ ॐ स्वः स्वाहा ॥ ॐ अग्नये स्वाहा ॥ ॐ धान्वंतारये स्वाहा ॥ ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा ॥ ॐ देवकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा ॥ पितृकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा ॥ ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा ॥ ॐ अस्मतकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा ॥ ॐयद्विद्वांसश्चाविद्वांसश्चैनश्चकृमस्या वयजनमसि स्वाहा ॥ ॐ येनसएनसोवयजनमसि स्वाहा ॥ ॐ अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा ॥ पुनः समिधंदत्वा ॥ ॐ भूः स्वाहा ॥ ॐ भुवः स्वाहा ॥ ॐ स्वः स्वाहा ॥ पुनःतिस्रः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ॐ भूः स्वाहा ॥ ॐ भुवः स्वाहा ॥ ॐ स्वःस्वाहा ॥ पुनःपर्युक्षेत् ॥ ॐदेव सवितः पठेत् ॥ ॐ अदित्येनुमांसाः ॥ ॐ अनुमतेनुमांसाः ॥ ॐ सरस्वत्येनुमांसाः ॥ ॐ अग्निसमीपेवेदिकांकृत्वा ॥ तदुपरि रेखात्रयं कुर्यात् ॥ ॐ पृथिव्यै नमः ॥ ॐ वायव्यै नमः ॥ ॐ विश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः ॥ ॐ प्रजापतये नमः ॥

एतेषां सव्यतः ॥ ॐ अद्भ्यो नमः ॥ ॐ ओष
धीवनस्पतिभ्यो नमः ॥ ॐ आकाशाय नमः ॥
ॐ कामाय नमः ॥ ॐ एतेषां सव्यतः ॥ ॐ म
न्यवे नमः ॥ ॐ इन्द्राय नमः ॥ ॐ वसूकाय
नमः ॥ ओं नैर्ऋत्यारजोजनेभ्यो नमः ॥ ॐ पुनः
ब्रह्मणे नमः ॥ ततोपसव्यम् ॥ ॐ सर्वेभ्योभूतेभ्यो
बलिं नमः ॥ ॐ अस्मत्पितृभ्यः स्वधाबलिं
नमः ॥ ॐ सव्यं ॥ वामतले यस्मैते निर्णजले
नमः ॥ हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य ॥ संकल्पं कु-
र्यात् ॥ ततोपसव्यं ॥ अमुकगोत्राणां अस्मत्पितृ
[illegible]प्रपितामहानां अमुकामुकशर्मणांवसुरु
द्रादित्यस्वरूपाणांयथायोग्यसपत्नीकानां विश्वदे
[illegible]नित्यश्राद्धमहंकरिष्ये ॥ ॐ अमुकगो
त्राअस्मत्पितृपितामहाः प्रपितामहा अमुकामुक
शर्माणः वसुरुद्रादित्यस्वरूपा.यथायोग्यसपत्नी
का[illegible]विभ[illegible]तस्मैतस्वधा ॥ एवंमानाम
[illegible]॥ सव्यं ॥ [illegible]र्वहितार्थायपवित्रा॥
[illegible] । प्रतिगृह्णन्तुमेग्रामं[illegible]लोक
[illegible] ॥ ततः [illegible]निर्गमम् ॥ [illegible]नम
[illegible] । [illegible]यांयेन[illegible]

तिःस्थिताः ॥ वायसाःप्रतिगृह्णन्तुभूम्यांचान्नंम यार्पितम् ॥ श्वानौद्वौश्यामशबलौ वैवस्वतकुलेद्भ वौ ॥ ताभ्यामन्नंप्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥ ततोपसव्यं ॥ ॐ देवामनुष्याःपशवोवयांसिसि द्धास्सयक्षोरगदैत्यसङ्घाःप्रेताःपिशाचाःतरवःस मस्ता येचान्नमिच्छन्तुमयाप्रदत्तम् ॥ पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षुकामाःकर्मनिबन्धबद्धाः ॥ प्रयान्तुतेतृप्तिमिदंमयान्नं तेभ्योविसृष्टंसुखिनोभव न्तु ॥येषांनमातानपितानबन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्नतथा न्नमस्ति।तत्तृप्तयेऽन्नंभुविदत्तमेतंतेयान्तुतृप्तिं मुदि ताभवन्तु ॥ भूतानिसर्व्वाणितथान्नमेतदहंचविष्णु र्नयतोन्यदस्ति ॥ तस्मादहंभूतनिकायभूतमन्नंप्र यच्छामिभवायतेषाम् ॥ चतुर्द्दशभूतगणेभ्योबलिं नमः ॥सव्यं ॥ हस्तौपादौप्रक्षाल्याचम्य ॥ महावा मदेव्यंगायेत ॥ वामदेवऋषिःगायत्रीछन्दःइन्द्रो देवताशान्तिकर्माणिजपेविनियोगः ॥

मन्त्र वामदेव्यं ॥

ॐका२८४या५ ॥ आरोग्यमैश्वर्यंधीरधृतिःसब लंयशः ॥ ॐ योवर्चःपशूनिवीर्यंब्रह्माब्रह्मजमेव चसौभाग्यंकर्मधैर्यपकुलज्यैष्ठ्यंसुकृतां॥सर्वमेतत्स

र्वैसाक्षीणद्रविणोरिरीहिरण्यमेतत्कर्माच्छिद्रमस्तु॥
इति बलिवैश्वदेवविधिः ॥

अब चारों वर्णका खेतीकरके स्वर्ग जाने का उपाय ।

अतःपरं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौयुगे ।
धर्मसाधारणंशक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥१॥

इसके अनन्तर कलियुग में गृहस्थ का कर्म और [illegible]चार और चारों वर्ण और आश्रमों का यथाशक्ति [illegible] धर्म जो है ॥ १ ॥

[illegible]म्यहं पूर्वं पाराशरवचोयथा ।
[illegible]नोविप्रः कृषिकर्मचकारयेत् ॥ २ ॥

[illegible] पहिले में पराशर के वचनानुसार कहता हूं छः [illegible] सहित विप्र खेती करावे ॥ २ ॥

[illegible]र्षितंधान्नं बलीवर्दैनयोजयेत् ।
[illegible]व्याधिनंक्लीवंवृषंविप्रोनवाहयेत ॥ ३ ॥

गुस खूब शब्द करता हो, जो सांड़ न हो. ऐसे बैल को
आधे दिन जुतवावे और पीछे स्नान करे ॥ ४ ॥

जपंदेवार्चनंहोमं स्वाध्यायंचैवमभ्यसेत्।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान्द्विजः॥ ५॥

जप देवताओं की पूजा होम और वेदका पाठ इनका
अभ्यास करै और एक, दो, तीन वा चार जो स्नातक
(ब्रह्मचारी) हों उन्हें भोजन करावै ॥ ५ ॥

स्वयंकृष्टेतथाक्षेत्रे धान्यैश्चस्वयमर्जितैः।
निर्वपेत्पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षांचकारयेत्॥ ६॥

आप जोते खेतसे और आपही इकट्टे किये अन्नोंसे
पञ्चयज्ञ करै और यज्ञकी दीक्षाभी करावै ॥ ६ ॥

तिलारसानविक्रेया विक्रेयाधान्यतत्समाः।
विप्रस्यैवंविधावृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः॥ ७॥

तिल और सरसोंको न बेंचे अन्न और जो अन्न के
समानहैं उनको और तृण और काष्टको बेचे ब्राह्मणकी
ऐसी वृत्तिहै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कृषिंकुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात्।
अष्टागवंधर्महलंषड्गवंवृत्तिलक्षणम्॥ ८॥

जो ब्राह्मण खेती करै तो महादोषको प्राप्तहो, आठ
जिसमें बैलहों वह हल धर्मकाहै छःजिसमेंहों वह जीवि-
का के लियेहै ॥ ८ ॥

चतुर्गवंनृशंसानांद्विगवंगोजिघांसुवत् ।
द्विगवंवाहयेत्पादं मध्याह्नन्तुचतुर्गवम् ॥ ९ ॥

चार जिसमें बैलहों वह हिंसकोंका है और दो बैल हों वह हल गोहत्यारे के समानहै और दो बैलवाले को चौथाईदिन जोते और चार बैलके हलको मध्यान्ह तक जोते ॥ ९ ॥

षड्गवन्तुत्रियामाहेऽष्टभिःपूर्णंतुवाहयेत् ।
नयातिनरकेष्वेवं वर्तमानस्तुवैद्विजः ॥ १० ॥

छः बैलके हल दिनके तीन पहर और आठ बैलों को सबदिन जोते ऐसे वर्तताहुआ द्विज नरक नहीं जाताहै ॥ १० ॥

दानंदद्याच्चैतेभ्यः प्रशस्तंस्वर्गसाधनम् ।
संवत्सरेणयत्पापं मत्स्यघातीसमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

ाशूक (फांसी जो दे) मक्खियोंका मारनेवाला वह
याघ जो पक्षियों के मारनेवाला हो ॥ १२ ॥

अदाताकर्षकश्चैव पञ्चैतेसमभागिनः।
कण्डनीपेषणीचुल्ली उदकुम्भीचमार्जनी ॥१३॥

और जो दानदे और खेती करनेवाला. ये पांचपाप के भागी समानहैं ओखली, चक्की, चूल्हा, जलके घड़े मार्जनी (बुहारी) ॥ १३ ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य अहन्यहनिवर्त्तते।
वैश्वदेवोबलिर्भिक्षा गोग्रासोहन्तकारकः ॥१४॥

ये पांच हत्या गृहस्थी को प्रतिदिन लगतीहैं, वैश्व-देव, बलि, भिक्षा, गोग्रास और हंतकार ॥ १४ ॥

गृहस्थःप्रत्यहंकुर्यात्सूनादोषैर्नलिप्यते।
वृक्षांछित्वामहींभित्वा हत्वाचकृमिकीटकान्॥१५॥

इन पांचों को गृहस्थी प्रतिदिन करताहै वह पूर्वोक्त पांच हत्याओंके दोषसे लिप्त नहीं होता वृक्षोंको काटकर, पृथ्वी खोदकर और कृमि और कीड़ोंको मारकर ॥ १५ ॥

कर्षकःखलु यज्ञेन सर्वपापैःप्रमुच्यते।
योनदद्याद्द्विजातिभ्योराशिमूलमुपागतः॥१६॥

खेती करनेवाला यज्ञ करने से सब पापोंसे छूटताहै जिसके अन्न की राशि हुईहो और वह ब्राह्मणों को न दे तो ॥ १६ ॥

सचौरःसचपापिष्ठो ब्रह्मघ्नंतंविनिर्दिशेत् ।
राज्ञेदद्यात्तुषड्भागं देवानांचैकविंशकम् ॥ १

वह चोर है और पापी है उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं भाग राजा को और इक्कीसवां भाग देवताओं को ॥ १

विप्राणांत्रिंशकंभागं सर्वपापैःप्रमुच्यते ।
क्षत्रियोपिकृषिंकृत्वा देवान्विप्रांश्चपूजयेत् ॥ १

और तीसवां भाग ब्राह्मणों को देकर सब पापों ... जाता है और क्षत्रिय भी खेती करके देवता ... ब्राह्मणों को पूजे ॥ १८ ॥

... शूद्रस्तथाकुर्य्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ।
... कर्म कुर्वन्शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १६

... प्रकार वैश्य और शूद्रभी खेती वाणिज्य ... और कारीगरी इनको करें, द्विजों की सेवा ... जो शूद्र खोटा कर्म करते हैं ॥ १६ ॥

... निरयंयान्त्यसंशयम् ।
... नामेषधर्मःसनातनः ॥ २० ॥

... स्मृति. अ० २ श्लो० १ से २० तक

... नरक में जाते ... धर्मों का यह सनातन ... ॥ २० ॥

सावित्र्याश्चापिगायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्नि
कार्ययोः। अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणानामधा
रकाः॥ २१ ॥ पराशरस्मृति—अ० ८ श्लोक ११।

सूर्यदेवता जिसका ऐसी गायत्री संध्यावन्दन और अग्निहोत्र इनको जो न जाने और खेती करनेहारे वे नाम के ब्राह्मणहैं ॥ २१ ॥

यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्ममयोमृगः।
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ २२॥

काठका हाथी और चाम का मृग और विना पढ़ा ब्राह्मण ये तीनों नाम के धारण करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

ग्रामस्थानंयथाशून्यं यथाकूपस्तुनिर्जलः।
यथाहुतमनग्नौ च अमन्त्रोब्राह्मणस्तथा॥ २३ ॥

जैसे शूद्रों का ग्राम और जैसा जलके विना कूप और जैसा विना अग्नि आहुतिहै ऐसेही विना मन्त्र (वेद) ब्राह्मणहै ॥ २३ ॥

यथाषण्ढोऽफलःस्त्रीषुयथागौरूषगाफला।
यथाचाज्ञेफलंदानं तथाविप्रोऽनृचोफलः ॥ २४॥

जैसे नपुंसक स्त्रियों में वृथाहै और जैसे [illegible] वृथा है जैसे मूर्ख को दान देना वृथाहै [illegible] ब्राह्मण वृथाहै ॥ २४ ॥ ॥

चित्रकर्मयथानेकैरङ्गैरुन्मील्यतेशनैः ।
ब्राह्मण्यमपितद्वद्धिसंस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २५ ॥

जैसे चित्रामका चित्र रङ्ग अनेक रङ्गों से शनैः २ होताहै इसी प्रकार मन्त्रों के द्वारा अनेक संस्कारों से ब्राह्मणत्व (ब्राह्मणपन) होताहै ॥ २५ ॥

प्रायश्चित्तंप्रयच्छन्ति येद्विजानामधारकाः ।
तेद्विजाःपापकर्माणः समेतानरकंयगुः ॥ २६ ॥

नासौफलमवाप्नोति कुर्वाणोप्याश्रमादृते ॥ ३०॥
त्रयाणामानुलोम्यंहि प्रातिलोम्यं न विद्यते ।
प्रातिलोम्यंनयोयाति नतस्मात्पापकृत्तमः॥३१॥
इति दक्षस्मृतिः ॥

जो मनुष्य गृहस्थी होकर फिर ब्रह्मचारी हुवा चाहताहो और संन्यासी होना चाहताहो और वानप्रस्थ में नहीं है तो वह सब आश्रमों से रहित है, द्विज एक दिन भी आश्रमों से हीन न टिके (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) ये चार आश्रमहैं इन चारों आश्रमों को क्रम से ग्रहण करना चाहिये १ ब्रह्मचारी, २ गृहस्थ ३ वानप्रस्थ, ४ संन्यास इसी प्रकार आश्रमों में टिका रहे अगर जो न होसके तो जन्मपर्यंततक एक आश्रम को पकड़कर रहना चाहिये लेकिन ऐसा न हो कि आज गृहस्थहै और कल ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी है ऐसा करने से पाप होताहै इससे ऐसा करना चाहिये कि एक आश्रम को पकड़कर रहना चाहिये, क्योंकि आश्रम के विना टिकता हुवा द्विज प्रायश्चित्त के योग्य होता है आश्रमके विना जप, होम, दान, और वेदपाठ में तत्पर द्विज कर्मको करता हुवा भी फलको प्राप्त नहीं होता ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों का आनुलोम्य (क्रम) है और प्रातिलोम्य (उलटा, पलटा) नहीं है इससे जो प्रातिलोम्य से बर्त्तताहै

उससे परे अत्यन्त पापका कर्ता कोई नहीं है ॥ १।
२ । ३ । ४ ॥

अब वानप्रस्थ आश्रम वर्णन करते हैं ॥

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न
विशेत् नफालकृष्टमधितिष्ठेत् अकृष्टं मूलफलं
संचिन्वीत ऊर्ध्वरेताः चमाशयो मूलफलभैक्षेण
आश्रमागतमतिथिमर्चयेत् दद्यादेवनप्रतिगृह्णीयात्
त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् श्रावणकेनाग्निमाधा
याहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ऊर्ध्वंषड्भ्योमा
सेभ्योऽनग्निरनिकेतः दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यःस
गच्छेत्स्वर्गमानन्त्यमानन्त्यम् ॥

अब संन्यास आश्रम वर्णन करतेहैं॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्रज्यं समाश्रयेत्॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यदत्त्वाचाभयदक्षिणाम्॥
चतुर्थमाश्रमंगच्छेद् ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात्॥१॥

वानप्रस्थ समाप्त करिके सब कामनाओं से विरक्त होकर संन्यासको ग्रहण अपने आत्माही में अग्नियों का समारोप (मानना) करके और स्त्री आदिकों को अभय दक्षिणा (त्याग) देकर घरसे चलकर ब्राह्मण चौथे आश्रममें गमन करे और सिवाय ब्राह्मणोंके और (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को संन्यास लेना अधिकार नहीं है क्योंकि अगर जो क्षत्रियादि संन्यास लेतेहैं वह अधो-मुखनामक नरक में जांयगे क्योंकि यह वेदका वाक्य और धर्मशास्त्रकाभी वाक्यहै इससे सिवाय ब्राह्मणोंके और दूसरा वर्ण संन्यास मत ले॥ १ ॥

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणांदत्त्वाप्रतिष्ठेत् २

संन्यासी सब प्राणियोंको अभय देकर प्रस्थानकरे २

आचार्येण समादिष्टं लिङ्गंयत्नात्समाचरेत् ३

आचार्य्यों के कहे हुये चिह्न (दंड आदि को यत्न से धारण करै॥ ३ ॥

शौचमाश्रमसम्बद्धंयतिधर्मांश्चशिक्षयेत्।
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता॥ ४॥

और संन्यास आश्रम के शौच और संन्यासियों के धर्मों को सीखे अहिंसा, सत्य, चोरीका त्याग, ब्रह्मचर्य अफल्गुता (निरर्थकपनेका त्याग) ॥ ४ ॥

दयांचसर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ।
ग्रामान्तेवृक्षमूलेचनित्यकालेनिकेतनः ॥ ५ ॥

संपूर्ण भूतोंपर दया इतने कर्म संन्यासी नित्यकों ग्रामके समीप किसी वृक्षके नीचे सदैव अपना स्थान रक्खे ॥ ५ ॥

अभयंसर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु निवर्तते ॥
[illegible]नानानजातांश्च प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६ ॥

जो संन्यासी इस प्रकार वर्ताव करताहै उसको सं[illegible] भूतों से कभी भी भय नहीं होती और सब भूतों को अभय देकर जो निवृत्तिमार्ग में टिकता है वह अपने और जिससे प्रतिग्रह ले उसके पिछले और अगले म[illegible] पापों को नष्ट करताहै ॥ ६ ॥

पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्रसंविशेत् ॥
वृद्धानामातुराणांच भीरूणांसङ्गवर्जितः ॥ ७ ॥

कीडे के समान पृथ्वी पर विचरे और वर्षाकाल में एक जगह बैठे और वृद्ध, रोगी, भयानक इनके सङ्ग को न करे ॥ ७ ॥

ग्रामेवापिपुरेवापिवासेनैकत्रदुष्यति।
कौपीनाच्छादनंवासःकन्थांशीतापहारिणीम्॥८॥

ग्राममें अथवा नगरमें एक स्थानमें वसनेसे यति दूषित होता है कोपीन (लंगोटी) ओढ़ने का वस्त्र जिसमें शीत न लगे ऐसी कंथा (गुदड़ी) ॥ ८ ॥

पादुकेचापिगृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्यसंग्रहम।
संभाषणंसहस्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणेतथा॥ ९ ॥

और खड़ाउन को ग्रहण करे और इनसे इतर का संग्रह न करै स्त्रियोंके संग बोलना, स्पर्श, देखना ॥९॥

नृत्यंगानंसभांसेवांपरिवादांश्चवर्जयेत्।
वानप्रस्थगृहस्थान्यांप्रीतिंयत्नेनवर्जयेत्॥१०॥

नाच, गान, सभा, सेना, नौकरी, निन्दा, इनको त्याग दे और वानप्रस्थ व गृहस्थी इनके संगभी यत्न से प्रीतिको त्यागदे ॥ १० ॥

एकाकीविचरेन्नित्यं त्यक्त्वासर्वपरिग्रहम्।
याचितायाचिताभ्यांतुभिक्षयाकल्पयेत्स्थितिं ११
साधुकारं याचितंस्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम्॥
चतुर्विधाभिक्षुकाःस्युःकुटीचकबहूदकौ॥ १२॥

संपूर्ण परिग्रह (परिकर) त्यागकर अकेला वनमें विचरै मांगने और विना मांगने से जो मिले उससे

और संन्यास आश्रम के शौच और संन्यासियों के धर्मों को सीखे अहिंसा, सत्य, चोरीका त्याग, ब्रह्मचर्य अफल्गुता (निरर्थकपनेका त्याग) ॥ ४ ॥

दयांचसर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ।
ग्रामान्तेवृक्षमूलेचनित्यकालेनिकेतनः ॥ ५ ॥

संपूर्ण भूतोंपर दया इतने कर्म संन्यासी नित्यको ग्रामके समीप किसी वृक्षके नीचे सदैव अपना स्थान रक्खे ॥ ५ ॥

अभयंसर्वभूतेभ्यो दत्वा यस्तु निवर्तते ॥
[illegible]ानानजातांश्च प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६ ॥

जो संन्यासी [illegible] करता है उसको स[illegible] [illegible] से कभी भी भय नहीं होता और सब भूतों को अभय देकर जो निवृत्तिमार्ग में टिकता है वह अप[illegible] [illegible] जिससे प्रतिग्रह ले उसके पिछले और अगले [illegible] [illegible] को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

[illegible]वर्षास्वेकत्रसंविशेत् ॥
[illegible]भिक्षणां[illegible]र्जितः ॥ ७ ॥

ग्रामेवापिपुरेवापिवासेनैकत्रदुष्यति ।
कौपीनाच्छादनंवासःकन्थांशीतापहारिणीम् ॥ ८ ॥

ग्राममें अथवा नगरमें एक स्थानमें वसनेसे यति दूषित होता है कौपीन (लंगोटी) ओढ़ने का वस्त्र जिसमें शीत न लगे ऐसी कंथा (गुदड़ी) ॥ ८ ॥

पादुकेचापिगृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्यसंग्रहम् ।
संभाषणंसहस्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणेतथा ॥ ९ ॥

और खड़ाउन को ग्रहण करे और इनसे इतर का संग्रह न करे स्त्रियोंके संग बोलना, स्पर्श, देखना ॥ ९ ॥

नृत्यंगानंसभांसेवांपरिवादांश्चवर्जयेत ।
वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिंयत्नेनवर्जयेत ॥ १० ॥

नाच, गान, सभा, सेना, नौकरी, निन्दा, इनको त्याग दे और वानप्रस्थ व गृहस्थी इनके संगभी यत्न से प्रीतिको त्यागदे ॥ १० ॥

एकाकीविचरेन्नित्यं त्यक्त्वासर्वपरिग्रहम् ।
याचितायाचिताभ्यांतुभिक्षयाकल्पयेत्स्थितिं ११
साधुकारं याचितंस्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥
चतुर्विधाभिक्षुकाःस्युःकुटीचकबहूदकौ ॥ १२ ॥

संपूर्ण परिग्रह (परिकर) त्यागकर अकेला वनमें विचरै मांगने और विना मांगने से जो मिलै उससे

अपना निर्वाह करै अच्छा कहकर लेनेको याचित, और विनामांगे जो मिले उसे अयाचित कहतेहैं ये संन्यासी चार प्रकार के होनेहैं १ कुटीचक, २ बहूदक॥ ११।१२॥

हंसःपरमहंसश्चपश्चाद्योयःस उत्तमः ॥
एकदण्डीभवेद्वापित्रिदण्डी वापिवाभवेत् ॥१३॥

३ हंस ४ परमहंस, इनमें जो२ पिछलाहै वह२उत्तम है एक दंडको धारण करै अथवा तीन दण्डको ॥ १३॥

अध्यात्मरतिरासीनोनिरपेक्षोनिरामिषः ॥
आत्मनैवसहायेनसुखार्थीविचरेदिह ॥१४॥

मोक्षरूप सुखका अभिलाषी संन्यासी आत्माकेही विषैहै रति जिसकी अर्थात् सदैव ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर और स्वस्तिक आदि योगी के आसन लगाये और दण्ड कमण्डलु आदिकों में भी विशेषकर अपेक्षा से रहित और विषयोंकी अभिलाषा से शून्य होकर केवल अपने देहकी ही सहायतासे इस जगत्में विचरे अर्थात् सबके संग और ममताको त्यागदे क्योंकि विष्णुजीने इसप्रकार कहाहै कि सब सुखों के स्वादुको त्यागकर पुत्रके ऐश्वर्य (प्रताप) के सुखको त्यागे अपने लड़कोंही में नित्य बसे और यत्नसे ममताको त्यागदे ॥ १४ ॥

---

१ त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादपुत्रैश्वर्यसुखंत्यजेत् । आपन्येपुवसेन्नित्यमम त्वयत्नतस्त्यजेत् ॥ अ० १ श्लो० ७७ ॥

नान्यस्यगृहेभुञ्जीत भुञ्जानोदोषभाग्भवेत् ।
कामंक्रोधंचलोभंचतथेर्ष्यांमन्यमदच ॥ १५ ॥

अन्य के घरमें भोजन न करै क्योंकि पराए घर में जो भोजन को करताहै वह दोष का भागी होताहै और काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, झूंठ इनको ॥ १५ ॥

कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थेचैवसर्वतः ।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तोयतिःपुत्रेपुर्मन्यसेत ॥ १६ ॥

सबके संग पुत्रके लिये कुटीचक १ (पहिला संन्यासी) त्यागदेवे भिक्षाटन आदि में असमर्थ होकर संन्यासी अपने पुत्रों को ही देहको सौंपदे ॥ १६ ॥

कुटीचकइतिज्ञेयः परिव्राट्त्यक्तबान्धवः ।
त्रिदण्डंकुण्डिकांचैव भिक्षाधारंतथैवच ॥ १७ ॥

इसको कुटीचक कहते हैं, २ दूसरा संन्यासी त्याग दिये हैं बन्धु जिसने ऐसा संन्यासी त्रिदण्ड, कुण्डी और भिक्षाका पात्र ॥ १७ ॥

सूत्रंतथैवगृह्णीयान्नित्यमेवबहूदकः ।
प्राणायामेष्वभिरतो गायत्रींसततंजपेत् ॥ १८ ॥

यज्ञोपवीत इनको बहूदक २ नित्य ग्रहण करै प्राणायाम में तत्पर हुआ निरन्तर गायत्री को जपै॥ १८॥

विश्वरूपंहृदिध्यायन्नयेत्कालंजितेन्द्रियः ।

ईषत्कृतकषायस्य लिङ्गमाश्रित्यतिष्ठतः ॥ १९॥

भगवान् का हृदयमें ध्यान करता हुआ इन्द्रियों को जीतकर कालको व्यतीत करै कुछेक गेरुवा वस्त्रों को करके एक चिह्न (संन्यासी का पहिचान) बनाकर टिकतेहुये संन्यासी का ॥ १९ ॥

अन्नार्थेलिङ्गमुद्दिष्टं नमोक्षार्थमितिस्थितिः।
त्यक्त्वापुत्रादिकंसर्वं योगमार्गव्यवस्थितः॥२०॥

चिह्न अन्न के वास्ते कहा है मोक्षके लिये नहीं कहा ऐसी मर्यादा है तीसरे इससे सम्पूर्ण पुत्रादिकों के त्याग और योगमार्ग में टिककर ॥ २० ॥

इन्द्रियाणिमनश्चैव कर्षन्हंसोभिधीयते।
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २१॥

इन्द्रिय और मनको वश में करते हुये संन्यासी को हंस कहते हैं, कृच्छ्र, चान्द्रायण, तुलापुरुष ॥ २१॥

अन्यैश्चशोषयेद्देहमाकाङ्क्षन्ब्रह्मणःपदम्।
यज्ञोपवीतंदण्डञ्च वस्त्रंजन्तुनिवारणम् ॥ २२॥

और इतर व्रतों से ब्रह्मपदकी इच्छा करताहुआ संन्यासी अपने देहको सुखादे, यज्ञोपवीत, दण्ड और जिससे जीव देह पर न गिरै ऐसा वस्त्र ॥ २२ ॥

अयंपरिग्रहोनान्यो हंसस्यश्रुतिवेदनः।
आध्यात्मिकंब्रह्मजपन्प्राणायामांस्तथाचरन् २३

वेदके ज्ञाता हंसको यही परिग्रह है इतर नहीं ४ चौथा अपने आत्मा (देह) में व्यापक ब्रह्मको जानता और प्राणायामों को करता हुआ ॥ २३ ॥

विमुक्तःसर्वसङ्गेभ्यो योगीनित्यंचरेन्महीम् ।
आत्मनिष्ठःस्वयंयुक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २४ ॥

सब संगों से विमुक्त (रहित) और आत्मा में टिक और युक्त होकर त्यागे हैं परिकर (गृहआदि) जिसने ऐसा होकर पृथ्वीपर नित्य विचरे ॥ २४ ॥

चतुर्थोयंमहानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ।
त्रिदण्डंकुण्डिकांचैवसूत्रंचाथकपालिकाम् २५॥

यह चौथ इन चारोंमें बड़ा और ध्यान भिक्षु (परम हंस) कहा है त्रिदण्ड, कुण्डी, यज्ञोपवीत, कपालिका (भिक्षा का पात्र) ॥ २५ ॥

जन्तूनांवारणंवस्त्रं सर्वंभिक्षुरिदंत्यजेत् ।
कौपीनाच्छादनार्थंच वासोधश्चपरिग्रहेत् ॥२६॥

जन्तुओं का निवारण वस्त्र इन सब को भिक्षुक त्याग दे कौपीन ओढ़ने का वस्त्र इनकोही केवल धारण करे ॥ २६ ॥

कुर्यात्परमहंसस्तु दण्डमेकंचधारयेत् ।
आत्मन्येवात्मनाबुद्ध्यापरित्यक्तशुभाशुभा॥२७॥

परमहंस करै और एक दण्डको धारण करै और

अपने मनमेंही अपनी बुद्धिसे त्याग दियाहै शुभ और अशुभ कर्म जिसने ॥ २७ ॥

अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्चचरेद्भिक्षुःसमाहितः ।
प्राप्तपूजोनसन्तुष्येदलाभेत्यक्तमत्सरः ॥ २८ ॥

अपने चिह्नको छिपाकर अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरै पूजा (बड़ाई) की प्राप्ति से प्रसन्न न हो और पूजाको नहीं प्राप्तिसे क्रोध न करै ॥ २८ ॥

त्यक्ततृष्णःसदाविद्वान्मूकवत्पृथिवींचरेत् ।
देहसंरक्षणार्थन्तु भिक्षामीह द्विजातिषु ॥ २९ ॥

त्यागी है तृष्णा जिसने ऐसा ज्ञानी गूंगेके समान पृथिवी में विचरै और देहकी रक्षाके अर्थ भिक्षा को द्विजातियों में मांगे ॥ २९ ॥

अथ भिक्षा के ग्रहण में कहतेहैं ॥

नचोत्पातनिमित्ताभ्यांननक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यांभिक्षांलिप्सेतकर्हिचित् ३० ॥

भूकम्प आदि उत्पात और गात्रस्पंद (फरकना) आदि निमित्तों के फलोंको कहके और ज्योतिषशास्त्र की विद्या, ऐसा नीति मार्ग है ऐसे रहना चाहिये इस प्रकारकी शिक्षा और वाद विवादसे, भिक्षाके लेनेकी इच्छा न करै अर्थात् विना याचना किये जो मिले उसी से अपना निर्वाह करै ॥ ३० ॥

तापसैर्ब्राह्मणैर्वाथ्योभिगपिवाश्वभि. ।
ग्राकीर्णंभिचुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेन ॥ ३१ ॥

अन्य तपस्वी अथवा भक्षण करनेवाले पक्षी व कुत्ते अथवा इतर भिक्षुक इनसे व्याप्त (भरा) घर में प्रवेश न करै अर्थात् ऐसे घर मे प्रवेश करै जिसमें इतर अन्नका अभिलाषी न हो ॥ ३१ ॥

दण्ड व कमण्डलु आदि को धारकर विचरै ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डीकुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतोनित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ३२ ॥

कटे हैं केश नख और श्मश्रु जिसकी भिक्षापात्र सहित और दण्ड और कमण्डलु से संयुक्त और सम्पूर्ण भूतोंको न पीड़ित करके और इन्द्रियों को वश में रखकर संन्यासी सदैव विचरै ॥ ३२ ॥

भिक्षा के पात्रों को कहते हैं ॥

अजैतसानिपात्राणि तस्यस्युर्निव्रणानिच ।
तेषामद्भिःस्मृतंशौचंचमसानामिवाध्वरे ॥ ३३ ॥

उस संन्यासीके पात्र सुवर्ण आदि धातुओं से भिन्न और छिद्ररहित होते हैं क्योंकि यमराज ने इस वचन से यह कहा है कि सोने, चांदी, तांबे, लोहेके पात्रों में भिक्षा ग्रहण करने का धर्म संन्यासीका नहीं है यदि

१ सुवर्णरूप्यपात्रेषु ताम्रकांस्यायसेषुच । गृह्णन्भिक्षांनधर्मोऽस्ति गृहीत्वानरकंव्रजेत् ॥

ग्रहण कर भी ले तो नरकमें जाताहै और उन सं॰
के पात्रोंकी इसप्रकार जलसे शुद्धि होती है जैसे
में चमसों (यज्ञके पात्र) विशेष की ॥ ३३ ॥

अलाबुन्दारुपात्रंच मृन्मयंवैदलंतथा।
एतानियतिपात्राणिमनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत् ३॰

अलाबु (तुंबा) काठका पात्र, मिट्टीका पात्र, वैदल (बांसका पात्र) इतने पात्र स्वायम्भुवमनु संन्यासी के लिये कहे हैं और गोविंदराजने तो ॰ वृक्षकी त्वचाका पात्र लिया है ॥ ३४ ॥

एकही कालमें भिक्षाके मांगनेको कहते हैं

एककालंचरेद्भैक्षंनप्रसज्जेतविस्तरे।
भैक्षेप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति ॥ ३५ ॥

संन्यासी दिनमें एकसमय भिक्षा मांगे और विस्त॰ में आसक्ति न करे अर्थात् मनको न लगावे क्यों॰ भिक्षा की अधिकता में आसक्त हुआ संन्यासी वि॰ में भी आसक्त होजाताहै ॥ ३५ ॥

भिक्षाके कालको कहते हैं ॥

विधूमेसन्नमुसलेव्यङ्गारेभुक्तवज्जने।
वृत्तेशरावसंपातेभिक्षांनित्यंयतिश्चरेत् ॥ ३६ ॥

जिस समय पाकका धुआं न रहे और मूसल का शब्द भी निवृत्त होजाय अर्थात् कोई चावल आदि को न कूटता हो और भोजन की अग्नि भी शांत होगई हो और गृहस्थके सब मनुष्य भोजन करचुकेहों और शरावों (भोलना) का संपात (फेंकना) भी होचुका हो उस समय संन्यासी प्रतिदिन भिक्षा की याचना करे (मांगे) अर्थात् जब छः घटी दिन शेष रहे उससमय भिक्षा के लिये ग्राम में जाय क्योंकि याज्ञवल्क्य आदिने यहे कहा है कि सायंकाल के समय दिन में प्रमत्त न होकर भिक्षाटन करे ॥ ३६ ॥

लाभ और अलाभ में हर्षवाद विवाद न करे ॥

अलाभेनविषादीस्याल्लाभेचैवनहर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रःस्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ३७॥

भिक्षाके न मिलने पर संन्यासी दुःखी न हो और मिलनेपर आनन्द न मानै किंतु उतनेही अन्नके भोजनमें तत्पर रहै जितने में अपने प्राणों का निर्वाह हो और विषयों के सङ्गसे रहित रहै अर्थात् दंड कमंडलु आदिकों में भी श्रेष्ठ और अधम बुद्धि न करै ॥ ३७ ॥

पूजापूर्वक भिक्षाका निषेध कहतेहैं ॥

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैवसर्वशः ।
अभिपूजितलाभैश्चयतिर्मुक्तोऽपिबद्ध्यते ॥ ३८ ॥

---

१ अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षसायाह्नेनाभिसन्धितः ॥

सत्कारपूर्वक जितने लाभहैं उनकी जुगुप्सा (निं
करे क्योंकि सत्कारपूर्वक लाभ होनेपर देनेवाले
स्नेह और ममता आदि से युक्त होकर भी यति (संन्या
सी) बंधन को प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

फलंकतकवृक्षस्ययद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
ननामग्रहणादेव तस्यवारिप्रसीदति ॥ ३९ ॥

यद्यपि कतक (निर्वासी) के वृक्षका फल जल
प्रसन्न (स्वच्छ) करनेवाला होताहै तथापि उस फल
नाम लेनेहीसे जल स्वच्छ नहीं होता किंतु जलमें ग
से होताहै इसीप्रकार संन्यास के चिह्नका धारणही
का कारण नहीहै किंतु शास्त्रोक्तकर्म का करनाही
का कारण है ॥ ३९ ॥

अह्नारात्र्याचयाञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतोयतिः।
तेषांस्नात्वाविशुद्ध्यर्थंप्राणायामान्षडाचरेत् ४

रात्रि अथवा दिनमें संन्यासी जिन जीवों की हिं
अज्ञान से करताहै उन जीवों के मरने की हिंसा की
शुद्धिके लिये स्नान करके छःप्राणायाम करे और सा
व्याहृति गायत्री शिर मंत्र इनको तीन वार पढ़ने से

---

१ ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तत्स
वितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती
रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

प्राणायाम होताहे इस वसिष्ठजी के वचनानुसार प्राणा-
याम जानना ॥ ४० ॥

प्राणायामाब्राह्मणस्यत्रयोऽपिविधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ताविज्ञेयंपरमन्तपः ॥ ४१ ॥

व्याहृति और ॐकार शिरः मंत्र संयुक्त और विधि
पूर्वक कियेहुये तीन भी प्राणायाम ब्राह्मणका परम तप
जानना ॥ ४१ ॥

दह्यन्तेध्मायमानानांधातूनांहियथामलाः ।
तथेन्द्रियाणांदह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ॥ ४२ ॥

जैसे अग्निमें तपाई हुई धातुओं (सोना आदि)
के मैल दग्ध होतेहैं (जलते हैं) इसप्रकार प्राणायाम
करने से प्राणोंके रोकने से इन्द्रियों के दोष (विषयों में
आसक्ति आदि) दग्ध होतेहैं अर्थात् नष्ट होजाते हैं ॥ ४२ ॥

नदीकूलंयथावृक्षोवृक्षंवाशकुनिर्यथा ।
तथात्यजन्निमंदेहंकृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥ ४३ ॥

जैसे नदी के कूलको वृक्ष और वृक्षको पक्षी त्या-
गताहै इसप्रकार इस देहको त्यागता हुवा ज्ञानी दुःख
रूप ग्राहसे छूट जाताहै ॥ ४३ ॥

प्रियेषुस्वेषुसुकृतमप्रियेषुचदुष्कृतम् ।

२सव्याहृतिं सप्रणवांगायत्रीं शिरसा सह । त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणा-
याम: स उच्यते ॥

विसृज्यध्यानयोगेनब्रह्माभ्येतिसनातनम् ॥ ४४॥

ब्रह्मज्ञानी अपने मित्रों में पुण्य को और अपने शत्रुओं में पापको छोड़कर ध्यानके योगसे सनातन ब्रह्मपद को प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

यदाभावेनभवतिसर्वभावेषुनिःस्पृहः ॥
तदासुखमवाप्नोति प्रेत्यचेहचशाश्वतम् ॥ ४५ ॥

जब मनसे विषयों में दोष बुद्धि के द्वारा सब पदार्थों में इच्छाको त्यागता है तभी इस लोकमें संतोषके सुख को और परलोकमें मोक्षके सुखको प्राप्त होता है ॥४५॥

अनेनक्रमयोगेन परिव्रजतियोद्विजः ।
सविधूयेहपाप्मानं परंब्रह्माधिगच्छति ॥ ४६ ॥

जो द्विज (ब्राह्मण) इस क्रमसे संन्यास आश्रम को धारण करताहै वह इसी लोक में पापको नष्ट करके परब्रह्म को प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार से उपाधि शरीर के नाश होने पर ब्रह्ममें एकता को प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

इति श्रीसामवेदिशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचित धर्मशिक्षायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः॥

चौपाई॥

लखि सुवेष जग वंचक जेऊ।
वेषप्रताप पूजियत तेऊ॥ १॥
उघरे अंत न होहि निवाहू।
कालनेमि जिमि रावण राहू॥ २॥

देखिये इस कलिकाल के समय में मनुष्य वेषको पूजतेहैं यह नहीं परीक्षा करतेहैं कि पूजने योग्य है कि नहीं, लखि सुवेष सुन्दर वेष वनाये हुयेहैं जग वंचक याने संसार में छलते फिरते हैं तो वेषके प्रताप से संसार में मनुष्यलोग वंचकों को पूजतेहैं, यद्यपि अन्तमें उनकी पाखंडाई खुल जातीहै जैसे कालनेमि राक्षस और रावण और राहु इनकी वंचकपना अन्तमें खुलगई याने जान से मारेगये। और अब इसी जगह पर चार बातें छलकी कहते हैं पहिला कालनेमि राक्षसको वंचकपनापर हनुमान्जीने मारडाला, दूसरा रावण छलकर जानकीजीके पास भिक्षामांगने में छलकिया जानकीजीने पूजा तो अंतमें कितना दुःख पायाहै आखिर को रामचन्द्रजीने रावणके वंशको नाश करदिया. तीसरा राहु वंचकपना देवताओंके साथमें मिलगयाथा तब विष्णुने अपने चक्रसे राहुको मारडाला, चौथा राजाभानु-

प्रतापने शिकार करते लौटे पर कपटी मुनिशत्रुको न पहिंचानकर कपटी मुनिका पूजनकर विश्वास किया तब अन्त में राजा भानुप्रतापके कुलका नाश होगया इसी तरहसे जो पाखंडी मतके वंचकोंको पूजतेहैं तो अन्तमें इनका भी नुकसान होगा आगे हमारे कहने से क्या है यह तो बात प्रत्यक्षहै ॥

नकथंचनकुर्वीत ब्राह्मणःकर्मवार्षलम् ।
वृषलःकर्मचब्राह्मंचंयतनीयेहितेतयोः ॥ १ ॥
उत्कृष्टंचापकृष्टंचतयोःकर्मनविद्यते ।
मध्यमेकर्मणीहित्वा सर्वसाधारणेहिते ॥ २ ॥
रक्षणंवेदधर्मार्थे तपःक्षत्रस्यरक्षणम् ।
सर्वतोधर्मषड्भागो राज्ञोभवतिरक्षतः ॥ ३ ॥

इति नारदपुराणे ॥

नारद मुनिने कहाहै कि ब्राह्मण किसी समय भी शूद्रका कर्म न करे—और शूद्र ब्राह्मण के कर्मको न करे क्योंकि इनके करने से ये दोनों पतित होजातेहैं—इन दोनों का उत्तम जाति और नीच जातिका कर्म नहीं है किन्तु मध्यम (क्षत्रिय, वैश्य) जातिके कर्म कोही ये दोनों करें—क्यों कि मध्यम जातिके कर्म सबके साधारणहै और क्षत्रियकर्म यह है कि रक्षा और धर्म के लिये वेद और तप—और धर्मपूर्वक रक्षा करनेवाले क्षत्रिय

। धर्मसे छठाभाग होताहै अर्थात् रक्षाके लिये छठा
ागले यदि अपने भोगके लिये ग्रहण करे तो नरक में
ाताहै ॥ १ । २ । ३ ॥

इतिश्रीसामवेदि शिवगोविन्दकृतभाष्यकुलोचित धर्मशिक्षायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

एवंयथोक्तंविप्राणांस्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
कथंमृत्युःप्रभवति वेदशास्त्रविदाम्प्रभो ॥ १ ॥

मनु० अ० ५ ॥

शास्त्रोक्त अपने धर्मको इसप्रकार करते हुये और ोद और शास्त्र के जाननेवाले ब्राह्मणों को वेदोक्त १०० सौ वर्षकी अवस्था से प्रथम है तो हे प्रभो ! मृत्यु कैसे ाप्त होतीहै अर्थात् १००सौ वर्षसे पाहले क्यों मरजाते ै क्योंकि अल्पअवस्था का कारण अधर्मका तो उनमें अभावहै यहां हे प्रभो ! यह संबोधन इस निमित्त दिया ै कि तुम सब (मनुने भृगुजीसे पूछा) संदेहों के दूर करने में समर्थ हो ॥ १ ॥

सतानुवाच धर्मात्मामहर्षीन्मानवोभृगुः ।
श्रूयतांयेनदोषेणमृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ २ ॥

मनु० अ० ५ ॥

धर्मात्मा और मनुका पुत्र वह भृगु उनके प्रति बोला कि जिस दोष (पाप) से ब्राह्मणों को नष्ट चाहता है सो उस दोषों को तुम सुनो ॥ २ ॥

अनभ्यासेनवेदानामाचारस्यचवर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्चमृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥३
मनु० अ० ५।

वेदों के अनभ्यास से अर्थात् अपने कुलके आच के त्यागने से और आलस्य से अर्थात् आवश्यक क करने में शिथिलता से कर्मको छोड़देना औरभक्ष के खानेके दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को हना (मार चाहती है अर्थात् ये सब अधर्मके हेतुहैं इसीसे अ के नाशक हैं ॥ ३ ॥

एतावानेवपुरुषोयज्जायात्माप्रजेतिह।
विप्राःप्राहुस्तथाचैतद्योभर्तासास्मृताङ्गना॥४

एकाकी मनुष्यही पुरुष नहीं होताहै क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि भार्या, अपना देह और संत से तीनों मिलकर पुरुष होताहै क्यों कि इसे वाजस ब्राह्मण से यही प्रतीत होताहै कि यह स्त्री इस पुरु अर्द्धभाग है क्योंकि जबतक इसको जाया नहीं मिल

---

१ अर्द्धो ह वा एष आत्मनः तस्मात् यज्जायां न विन्दते नैतावत्प्र जायते असर्वो हि तावद्भवति-अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति तथा चैतद्वेदविदो विप्रा वदन्ति यो भर्ता सैव भार्या स्मृतेति ॥

वतक उत्पन्न नहीं होता और तबतक वह अपूर्ण रहताहै और जिस समय वह जायाको प्राप्त होताहै और उसमें पुत्ररूप से पैदाहोता है तभी संपूर्ण होता है और इसीसे वेदके ज्ञाता ब्राह्मण यह कहतेहैं कि जो भर्ता वही स्त्री कही है अर्थात् दोनों में कुछ भेद नहीं है इससे उस भार्या में अन्य पुरुष से पैदाकिया हुआ पुत्र भर्ताका ही पुत्र होताहै इससे क्षेत्रकीही मुख्यताहै बीज की नहीं है ॥ ४ ॥

ननिष्क्रयविसर्गाभ्यांभर्तुर्भार्याविमुच्यते।
एवंधर्मविजानीमःप्राक्प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ५ ॥

विक्रय (बेचने) और विसर्ग (त्यागने) से स्त्री पतिके स्त्री स्वरूप से दूर नहीं होसकी यह प्रजापतिका रचाहुआ धर्महै उसको हम मानतेहैं इससे परकी स्त्रीको मोललेकर और अपने आधीन करके और उसमें जो संतान उत्पन्नहुई वह उसकीही होतीहै जिसकी वह स्त्री और बीजवाले की नहीं होती है ॥ ५ ॥

इति श्रीसामवेदि पण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य
कुलोचितधर्मशिक्षायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः॥

जुगुप्सेयातान्त्वेवाव्रतेभ्यः कर्म्मभ्यः॥७॥
[१ प्र० ६ का० ७ सू०] गोभिलगृह्यसू०

स्मरणंकीर्तनंकेलिः प्रेक्षणंगुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच॥१॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्तिमनीषिणः।
अनुरागात्कृतञ्चैव ब्रह्मचर्य्यविरोधकम्॥२॥
विपरीतंब्रह्मचर्य्यमेतदेवाष्टलक्षणम्।
उपासेतथायौनं हन्तिसप्तकुलानिवै॥३॥
स्त्रीणांसम्प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिःकत्थनादपि।
ब्रह्मचर्य्यंविपद्येत न दारेष्वृतुसङ्गमात्॥४॥
गात्राभ्यङ्गंशिरोभ्यङ्गं ताम्बूलञ्चानुलेपनम्।
व्रतस्थोवर्ज्जयेत्सर्व्वं यच्चान्यद्बलरागकृत्॥५॥

यद्युवाउभयंचिकीर्षेद्धोत्रञ्चैवब्रह्मत्वञ्चैवंतेन वकल्पेनछत्रंवोत्तरासङ्गंवोदकमण्डलुंदर्भवटुंवा ब्रह्मासनेनिधाय,तेनैवप्रत्याव्रज्याथान्यच्चेष्टेत् २१॥
[१ प्र० ६ का २१ सू०] गोभिलगृह्यसू०

यद्यसति ब्राह्मणान्तरे- । उत्,-इत्यनर्थकौनिपातौ । एवम् एके । यद्वा,-इति निपातसमुदायो य-द्यर्थे । एवम् अपरे । उभयेचिकीर्षेत् कर्तुमिच्छेत । तदनेनलिङ्गेन विधिरनुमीयते,-असम्भवेदुभयम् अपिस्वयंकुर्यात्,-इति तदिदम् अभिहितम् अस्माभिः.-" अथ यदि दधिपयो यवागूंवा,,-इत्येवमादिकेसूत्रे । किं पुन-स्तदुभयम् ?। तदुच्यते। हौत्रंहोतुःकर्म चैव.ब्रह्मत्वं ब्रह्मणःकर्म चैव । तर्हि, एतेनैव कल्पेनपूर्वोक्तयैव आघना. ग्रेणाग्निम्-इत्येवमादिकया ।(एवकारकरणात्,-आवसोःसदनेसीदामि,,इति मन्त्रोऽपिएवं एव पठनीयः-इत्यवगम्यते।) छायपात्रायते-इति छत्रम् आतपत्रंवा. उत्तरासङ्गम् उत्तरीयंवा, उदकमण्डलुमउदकपरितकमण्डलुंवा, दर्भवटुंकुशब्राह्मणंवा, सग्वलयंदर्भवटुंयथा नि-र्म्मातव्यः तदाहगृह्यासंगृह्यपरिशिष्टम् ।

"ऊर्ध्वकेशोभवेद्ब्रह्मा लम्बकेशस्तुविष्टरः ।
दक्षिणावर्त्तकोब्रह्मावामावर्त्तस्तुविष्टरः ॥ १ ॥
इति । अत्रच,-

"द्विरावृत्याथमध्येवैअर्द्धावृत्यान्यतेशतः ।
ग्रन्थिःप्रदक्षिणावर्त्तःसब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकः ॥ २ ॥"

इति पुराणवाक्यमप्यनुसन्धेयम् । दर्भपरिमाणंचात्र नास्ति, इत्याहकर्म्मप्रदीपः ॥

"यज्ञवास्तुनिमुष्ट्याश्चस्तम्बेदर्भवटौ,तथा ॥

दर्भसंख्यानविहिताविष्टरास्तरणेष्वपि ॥ ३ ॥
इति। एवंच—
"पञ्चाशद्भिःकुशैर्ब्रह्मातदर्द्धेनचविष्टरः"।
इत्याह—कौथुमनादिप्रदीपः ॥

अब आचमन का प्रकार कहते हैं ॥

त्रिराचामेदपःपूर्वंद्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम्।
खानिचैवस्पृशेदद्भिरात्मानंशिरएवच ॥ १ ॥

अब सामान्य से कहेहुये आचमन का प्रकार क हते हैं कि पहिले पूर्वोक्त ब्राह्म आदि तीर्थ से तीन बार जलका गंडूष पीवे फिर होठोंको मिलाकर दो बार अं गूठे के मूलसे मुँहसे मुखका मार्जन करे (पीछे) क्योंकि दक्षऋषि ने अंगूठे के मूलसेही मुखका मार्जन कहा है और मुखके छिद्रों को भी जलसे स्पर्श करे क्योंकि गौ तमऋषि ने शिरकेही छिद्रों का स्पर्श कहा है। और उपनिषदों में आत्मा का देश हृदय कहा है इससे हृदय और शिर का भी जलसे स्पर्श करे—जब २ आचमन करे तब २ इसीप्रकार से करे ॥ १ ॥

---

१ संहृत्यांगुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम ॥
२ खानिचैवोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ॥
३ हृदयान्यानि पृश्य ॥

अब आचमन के जलका परिमाण कहतेहं ॥

हृद्गाभिःपूयतेविप्रःकण्ठगाभिस्तुभूमिपः ॥
वैश्योऽद्भिःप्राशिताभिस्तुशूद्रस्पृष्टाभिरन्ततः ४॥
मनु० अ० ४

ब्राह्मण हृदयगत, क्षत्रिय कण्ठगत, वैश्य मुखगत और शूद्र ओष्ठमें जिनका स्पर्श हो उन जलोंसे पवित्र होताहै इसका तात्पर्य्य यह है कि ब्राह्मण उन जलों से आचमन करके पवित्र होता है जो जल हृदय में प्राप्त होजाय, और क्षत्रिय उनसे जो कण्ठ तक पहुंचे वैश्य उनसे जो मुखके भीतर तक जाय और कण्ठतक न पहुंचे और शूद्र उनसे जो जिह्वा और ओष्ठोंका ही स्पर्श करे और मुख में न जाय ॥ ४ ॥

कर्म्मप्रयोगेपुकुशप्रमाणं
चिबुकंललाटेप्रादेशमात्रम् ॥
दलद्वयंगर्भितग्राह्यदर्भे
त्रिदेवदेवाऽस्थितमोत्रिभागम् ॥ ५ ॥
कुशमूलेस्थितोब्रह्माकुशमध्येजनार्द्दनः ।
कुशाग्रेशङ्करोदेवःकिमर्थंकुशविष्टरम् ॥ ६ ॥
सप्तवेदंचविप्राणांयुगनेत्रंतुक्षत्रियः ।
नेत्रयुग्मंचवैश्यंच युग्ममेकंकशूद्रयोः ॥ ७ ॥
इति श्रीमत्साम्यकुलोचितधर्मशिक्षायांनवमोऽध्यायः ६

अथ दशमोऽध्यायः ॥

ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेशयेत् ।
अनपाकृत्यमोक्षन्तुसेव्यमानोव्रजत्यधः ॥ १ ॥

तीनों ऋणों देव पितृ ऋषिको दूर करके मोक्षमें मनको लगावै और तीन ऋणों के बिना दूर किये जो मनुष्य मोक्षको सेवताहै वह नरकमें जाताहै ॥ १ ॥

अधीत्यविधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्यधर्मतः ।
इष्ट्वाचशक्तितोयज्ञैर्मनोमोक्षेनिवेशयेत् ॥ २ ॥

विधिसे वेदोंको पढ़ और धर्म से पुत्रों को पैदाकर और शक्तिसे यज्ञोंको करके मोक्षमार्ग में मनको लगावै क्योंकि पैदा होतेही ब्राह्मण के तीन ऋण होते हैं सो यज्ञसे, देवताओंका और प्रजासे पितरोंका और वेद पढ़कर ऋषियोंका ऋण दूर होताहै तब मोक्षको प्राप्त होता है नहीं तो नरक में जाता है ब्रह्मचर्य गृहस्थ व वानप्रस्थसे संन्यासी होताहै ॥ २ ॥

अनधीत्यद्विजोवेदाननुत्पाद्यतथासुतान् ।
अनिष्ट्वाचैवयज्ञैश्चमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ ३ ॥
मनु० अध्याय ६ श्लो० ३५ । ३६ । ३७ ॥

विना वेदोंके पढ़े और विना पुत्रोंको पैदाकिये और विना यज्ञोंके कियेहुये मोक्षकी इच्छा करता हुआ द्विज नरकको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥

सस्यान्तेनवसस्येष्ट्यातथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुनात्वयनस्यादौसमान्तेसौमिकैर्मखैः ॥ ४ ॥

मनु० अ० ४ श्लो० २६

ब्राह्मण पुराने अन्नकी समाप्ति होनेपर आग्रयण यज्ञ और ऋतुओंके अन्तमें चातुर्मास्य यज्ञ दोनों अयनोंके आदि में पशुयज्ञ करे और वर्ष के अन्त में चैत्रकृष्ण अमावस्या के दिन सोमलता के रससे अग्निष्टोम यज्ञ सिद्धि होनेके लिये द्विज करे और पौर्णमासी भी करे ॥ ४ ॥

नानिष्ट्वानवसस्येष्ट्या पशुनाचाग्निमान्द्विजः
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ५

मनु० अ० ४ श्लो० १

दीर्घआयु पर्यन्त जीवनकी इच्छावाला द्विज आग्रयण यज्ञ किये विना नवीन अन्नका और पशुयज्ञ किये विना मांसको भक्षण न करे ॥ ५ ॥

नवेनानर्चिताह्यस्य पशुहव्येनचाग्नयः ॥
प्राणानेवात्तुमिच्छन्तिनवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ ६ ।

मनु० अ० ४ श्लो० २

क्योंकि नये अन्नके और पशुके हव्यसे अग्नि नहीं पूजा किया जिसने और अन्न नवीन और मांसकी अभिलाषवाले अग्नि इस अग्निहोत्रीके प्राणोंको भक्षण चाहते हैं तो अवश्यही पशुयज्ञ करना चाहिये ॥ ६ ॥

मुन्यन्नानिपयःसोमो मांसंयच्चानुपस्कृतम् ॥
अक्षारलवणंचैव प्रकृत्याहविरुच्यते ॥ ७ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० २५७

मुनियोंके नीवार आदि अन्न, दूध, सोमलतानामा रस, जो विगरा न हो याने उत्तम हो और वह उत्तम मांस अक्षार लवण न खारी होवै याने सेंधालवण इसको मनु ने मुनियोंके लिये स्वभावसे हव्य कहा है ॥ ७ ॥

सुवासिनीःकुमारीश्च रोगिणोगर्भिणीःस्त्रियः ॥
अतिथिभ्योऽग्रएवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ ८ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ११४

नवीन विवाही स्त्री, कुमारी याने कन्या (रोगी) और गर्भवाली स्त्री, इनको विना विचारे पहिले भोजन देवै अभ्यागतों को पीछे भोजन करावे ॥ ८ ॥

अदत्वातुयएतेभ्यः पूर्वंभुङ्क्तेविचक्षणः ।
सभुञ्जानोनजानातिश्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥९॥

मनु० अ० ३ श्लो० ११५

जो पण्डित अर्थात् द्विजातियों में भोजनके व्यति-

क्रमके दोषोंका ज्ञाता इन अतिथि आदि भृत्यपर्य्यंतों को विना दिये पहिले खाताहै वह मनुष्य मरनेके पीछे कुत्ता और गीध उसका मांस नोच नोचकर खातेहैं वह मनुष्य दुःख पाताहै कुछ वश नहीं चलता कुत्ते और गीध खाते हैं ॥ ९ ॥

देवान्नृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्यांश्चदेवताः ॥
पूजयित्वाततःपश्चाद्गृहस्थःशेषभुग्भवेत् १०॥

देवता ऋषि और मनुष्य और गृह्य घर के देवता इन सबका अन्नदानसे और जलदानसे पूजन करे शेष अन्न जो है सो गृहस्थी भोजन करै ॥ १० ॥

अघंसकेवलंभुङ्क्ते यःपचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनंह्येतत्सतामन्नंविधीयते ॥ ११ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ११७।११८

जो मनुष्य केवल अपनेही अर्थ पाक याने रसोई बनाताहै तो वह पापको खाता है क्योंकि यज्ञ से शेष अन्न बचाहुआ सत्पुरुषों का भोजनही कहाहै ॥ ११ ॥

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥१२॥

वसन्त और शरद ऋतुमें पैदाहुये पवित्र और स्वयं इकट्ठे किये मुनियोंके नीवार आदि अन्नों से पुरोडाश और चरुओंको शास्त्रोक्त रीतिसे पृथक् २ करै ॥ १२ ॥

वताभ्यस्तुतद्धुत्वा वन्यंमेध्यतरंहविः ।
षमात्मनियुञ्जीत लवणंचस्वयंकृतम् ॥ १३ ॥
मनु० अ० ६ श्लो० ११ । १२ ।

वनके नीवार आदिसे बनाई उस हवि (अन्न) और वताओं को देकर शेष अन्नको और ऊपर आदि से नायेहुये लवणको स्वयं भोजन करे अर्थात् देवताओंको ने से शेष अन्नको ही स्वयं भक्षण करे ॥ १३ ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतस्त्रीणां कुलोचितधर्मशिक्षायांदशमोऽध्याय. ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ॥

शौचंसुवर्णनारीणां वायुसूर्येन्दुरश्मिभिः ।
तःस्पृष्टंशवस्पृष्टमाविकंतुप्रदुष्यति ॥ १ ॥

सोना और स्त्रियों की शुद्धि वायु सूर्य और चंद्रमा की किरणों से होती है रेत याने (पुरुषका वीर्य) और शव (मुर्दा) स्पर्श जिसमें हुआ हो ऐसा उसका वस्त्र षित (अशुद्ध) है ॥ १ ॥

अद्भिर्मृदाचतन्मात्रं प्रक्षाल्यचविशुद्ध्यति ॥
शुष्कमन्नमवेद्यस्य पञ्चरात्रेणजीर्यति ॥ २ ॥

परन्तु जल और मिट्टी से जितने में रेत आदि लगे हों उतने वस्त्र को धोकर भलीप्रकार शुद्धि होती है

अवेद्य (शूद्र) का सूखा अन्न खानेपर पांच दिनमें प-
हे ॥ २ ॥

अन्नंव्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ।
पयस्तुदधिमासेन षण्मासेनघृतंतथा ॥ ३ ॥

जिसमें व्यंजन (भाजी, नोन) मिला हो, वह आ
महीने में—और दूध दही एक महीने में और घी म
हीने में पचता है ॥ ३ ॥

संवत्सरेणतैलंतु कोष्ठेजीर्यतिवानवा ।
भुञ्जतेयेतुशूद्रान्नं मासमेकंनिरन्तरम् ॥ ४ ॥

तेल एक वर्ष पेटमें पचता है अथवा नहीं भी
और जो शूद्र के अन्न को ब्राह्मण एक महीने
निरन्तर खाते हैं ॥ ४ ॥

इहजन्मनिशूद्रत्वं जायन्तेतेमृताःशुनि ।
शूद्रान्नंशूद्रसंपर्कः शूद्रेणैवसहासनम् ॥ ५ ॥

वे मनुष्य इमसंसार में शूद्र होतेहैं और मरके
की योनिमें पैदा होते हैं और शूद्रका अन्न संसर्ग
के संग एक आसनपर बैठना ॥ ५ ॥

शूद्राज्ज्ञानागमःकश्चिज्ज्वलन्तमपिपातयेत् ।
आहिताग्निरग्नुयोविप्रः शूद्रान्नंननिवर्त्तने ॥ ६

शूद्र से किसी विद्या का लेना ये प्रतापी पुरु

ो पतित करदेतीहै, जो अग्निहोत्री ...
ो नहीं त्यागताहै ॥ ६ ॥

थातस्यप्रणश्यन्ति आत्मब्रह्मत्रयोऽग्नयः ।
द्रान्नेनतुभुक्त्वैव मैथुनंयोधिगच्छति ॥ ७ ॥

तो उसके आत्मा (देह वा जीव) ... नष्ट होतेहैं शूद्र के अन्न को खाकर जो मैथुन (स्त्री ा संग) करताहै ॥ ७ ॥

स्यान्नंतस्यतेपुत्रा अन्नाच्छुक्रस्यसंभवः ।
द्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियतेद्विजः ॥ ८ ॥

जिसका वह अन्नहै उसी के वे पुत्र हैं क्योंकि ... ही शुक्र (वीर्य) होताहै शूद्र के अन्न के पेट में ... ो द्विज मरताहै ॥ ८ ॥

भवेच्छूकरोग्राम्यस्तस्यवाजायतेकुले ।
ह्मणस्यसदाभुङ्क्ते क्षत्रियस्यतुपर्वणि ॥ ९ ॥

वह गांवका शूकर होताहै वा शूद्रकेही कुल में पैदा ताहै ब्राह्मण का अन्न सदा खाना क्षत्रियका पर्व (पू० मावस आदि में) ॥ ९ ॥

श्यस्ययज्ञदीक्षायां शूद्रस्यनकदाचन ।
मृतंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्यपयःस्मृतम् ॥ १० ॥

वैश्यका यज्ञ की दीक्षामें और शूद्रका कभी नहीं ह्मणका अन्न अमृतरूप क्षत्रियका अन्न दूधरूप ॥ १० ॥

वैश्यस्यान्नमेवान्नं शूद्रस्यरुधिरंस्मृतम् ।
वैश्वदेवेनहोमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ ११ ॥

वैश्यका अन्न अन्नहीहै और शूद्रका अन्न रुधिररूपहै, वलि वैश्वदेव होम देवताओंका पूजन जप इनसे ॥ ११ ॥

अमृतंतेनविप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ।
व्यवहारानुरूपेण धर्मेणछलवर्जितम् ॥ १२ ॥

और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मन्त्रों से संस्कृत (शुद्ध) हुआ ब्राह्मणका अन्न अमृत है व्यवहार के अनुकूल धर्म करनेसे छलरहित ॥ १२ ॥

क्षत्रियस्यान्नमेतेन भूतानांयच्चपालनम् ।
स्वकर्मणाचकृषिभिस्तुभृत्यास्त्वशक्तितः ॥ १३ ॥

सब प्राणियोंका पालन क्षत्रिय करताहै तिससे क्षत्रिय का अन्न दूधहै अपनी शक्ति के अनुसार अपने कर्म से पशुओं की रक्षा से ॥ १३ ॥

सत्ययज्ञातिथियेन वैश्यान्नंतेनसंस्कृतम् ।
अज्ञाननिभिसंसर्गस्य मद्यपानरतस्य च ॥ १४ ॥

और सत्यविधान के आतिथ्य से संस्कार (शुद्धि) को प्राप्त हुआ वैश्यका अन्न अन्नही है अज्ञान के निमित्त [illegible] और मदिरा के पीनेमें तत्पर ॥ १४ ॥

[illegible]

आममांसंमधुघृतं धानाः [illegible] ॥ १५ ॥

और विधि और मन्त्र से [illegible]

होताहै कच्चा मांस शहद घी अन्न [illegible] ॥ १५ ॥

गुडस्तक्ररसाग्राह्या निवृत्तेनापि [illegible] ।

शाकंमांसंमृणालानि तुम्बुरुः [illegible] ॥ १६ ॥

गुड़, माठा, रस इनको निवृत्त [illegible]

ले, शाक (भाजी) मांस कमलकी [illegible] ([illegible]

सत्तू, तिल ॥ १६ ॥

रसाःफलानिपिण्याकं प्रतिग्राह्याहि [illegible] ।

आपत्कालेतुविप्रेण भुक्तंशूद्रगृहेयदि ॥ १७ ॥

रस, फल, पिण्याक (खल या [illegible]) [illegible]

सबसे ले ले यदि आपत्काल मे ब्राह्मण शूद्र [illegible]

भोजन करले ॥ १७ ॥

मनस्तापेनशुद्ध्येत द्रुपदांवाशतंजपेत् ।

द्रव्यपाणिश्चशूद्रेणस्पृष्टोच्छिष्टेनकर्हिचित ॥

तद्द्विजेननभोक्तव्यमापस्तम्बोब्रवीन्मुनिः ॥ १८ ॥

तो मन के पश्चात्तापसे शुद्ध होताहै अथवा सौ १०० द्रुपदा मन्त्र जपै द्रव्य (अन्न आदि) है हाथ में जिन के ऐसे ब्राह्मण को यदि उच्छिष्ट शूद्र छूले तो उस अन्न को ब्राह्मण न खाय यह आपस्तम्ब मुनिने कहाहै ॥ १८ ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य

कुलोचितधर्मशिक्षा [illegible]

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

श्राद्धंभुक्त्वायउच्छिष्टं वृषलायप्रयच्छति ।
समूढोनरकंयाति कालसूत्रमवाक्छिराः ॥ १ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० २४९

जो ब्राह्मण श्राद्ध का भोजन करकै उच्छिष्ट शूद्र को देता है तो वह मनुष्य मूढ़ अधोमुख होकर कालसूत्र नामवाले नरक में जाता है ॥ १ ॥

नशूद्रायमतिंदद्यान्नोच्छिष्टंनहविष्कृतम् ।
नचास्योपदिशेद्धर्मं नचास्यव्रतमादिशेत् ॥ २ ॥

शूद्र को मति, उच्छिष्ट और हविः का शेष याने देवता को नैवेद्य न देवे और धर्म का उपदेश और प्रायश्चित्तका उपदेश भी शूद्र को न दे ॥ २ ॥

योह्यस्यधर्ममाचष्टे यश्चैवादिशतिव्रतम् ।
सोऽसंवृतंनामतमः सहतेनैवगच्छति ॥ ३ ॥

मनु० अ० ४ श्लो० ८०।८१

नाद्याच्छूद्रस्यपक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनोद्विजः ।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ ४ ॥

मनु० अ० ४ श्लो० २२३

विद्वान् द्विज ब्राह्मण, श्राद्ध के अनधिकारी शूद्र के पक्वान्न को भी भक्षण न करे किन्तु अन्य मनुष्य द्विजातियोंमें से जिन का अन्न न मिले तो शूद्र के कच्चे अन्न से एक रात्रि के निर्वाह को ग्रास (कच्चा अन्न) उस से ग्रहणकर ले ॥ ४ ॥

शूद्रहस्तेनयोऽश्नीयात्पानीयंवापिबेत्क्वचित् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ ५ ॥

आपस्तंबस्मृति अ० ५ श्लो० २५

जो ब्राह्मण होकर अपने कर्म में टिका हुआ शूद्र के हाथ का भोजन अथवा पानी पीता है वह अहोरात्र उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ २५ ॥

शूद्रंतुकारयेद्दास्यंक्रीतमक्रीतमेववा ।
दास्यायैवहिसृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्यस्वयंभुवा ॥ ६ ॥

मनु० अ० ८ श्लो० ४१३

भोजन वस्त्र देकर पालन करके वा नहीं पालन करे तो अवश्यही शूद्र से ब्राह्मण सेवा करवावे क्योंकि ब्रह्माजी ने ब्राह्मण की सेवा के लिये शूद्र को बनाया है याने रचा है ॥ ६ ॥

शूद्राणांमासिकंकार्यं वपनंन्यायवर्त्तिनाम् ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्चद्विजोच्छिष्टंचभोजनम् ॥७॥

मनु० अ० ५ श्लो० १४०

शास्त्र के अनुसार करते हुये शूद्रों का मुंडन याने शिरके बार मास २ में करे और मरण में और जन्म-सूतक में वैश्य के समान कर शुद्धि होती है और द्विजों के उच्छिष्ट का भोजन शूद्र करे, यदि न करे तो नरक में जाताहै ॥ ७ ॥

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचादारुणयाक्षिपन् ।
जिह्वायाःप्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवोहिसः ॥८॥

मनु० अ० ८ श्लो० २७०

यदि शूद्र पूर्वोक्त द्विजातियों को कठोर वाणी याने वचन सुनकर निन्दा करे तो जिह्वा के छेदन को प्राप्त होता क्योंकि वह शूद्र जघन्य (अधम) पाद से पैदा हुआ है ॥ ८ ॥

नामजातिग्रहंत्वेषामभिद्रोहेणकुर्वतः ॥
निक्षेप्योऽयोमयःशङ्कुर्ज्वलन्नास्येदशाङ्गुलः ॥९॥

मनु० अ० ८ श्लो० २७१

तो इस शूद्र के मुख में दश अंगुल लम्बा लोहे का शंकु याने (गज़) राजा इस शूद्र के मुख में डाल देवे ॥ ६ ॥

केशेषुगृह्णतौहस्तौ छेदयेदविचारयन्।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायांवृषणेषुच ॥ १० ॥
मनु० अ० ८ श्लो० २७३ ॥

जो ब्राह्मण के केश, पैर, दाढ़ी, ग्रीवा, वृषण, इन को जो अभिमान से इन स्थानों में हाथ लगादे तो उस शूद्र के हाथों का राजा छेदन करै और उससमय यह विचार न करै कि इस को पीड़ा होगी वा नहीं छेदन करै ॥ १० ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगंगतः।
दुःखंसुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतयानरः ॥ ११ ॥
मनु० अ० ४ श्लो० १६७ ॥

युद्ध नहीं करते हुये ब्राह्मण के अंगमें से रुधिर को निकाल कर मनुष्य परलोक में शास्त्र के न जानने पर (मूर्खता) से अत्यंत दुःख को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

शोणितंयावतःपांशून्संगृह्णातिमहीतलात्।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते १२
मनु० अ० ४ श्लो० १६८ ॥

रुधिर पृथिवी के ऊपर जितनी दूर तक धूली के परमाणुओंको भिगोता है उतनेही वर्षतक परलोक में शो-

शोणित (रुधिर) के पैदा करनेवाले को अन्य कुत्ता गीदड़ आदि भक्षण करते हैं इस से ब्राह्मण के ऊपर कदापि प्रहार न करे ॥ १२ ॥

विद्वांस्तुब्राह्मणोदृष्ट्वा पूर्वोप्यनिहितंनिधिम् ।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हिसः ॥१३॥
मनु० अ० ८ श्लो१३७॥

विद्वान् ब्राह्मण तो किसी की रक्खी हुई द्रव्यको देखकर सब को उठालेवै क्योंकि वह विद्वान् ब्राह्मण सब का मालिक है और राजा को छठा भाग न दे क्योंकि राजा ब्राह्मण के अधीन होकर राज्य करता है और सब धनों का प्रभु होता है राजा क्योंकि इस वचन—सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदम ॥ से सब वस्तु ब्राह्मण काही सर्वस्व होता है और नारदमुनि व याज्ञवल्क्यने यहकहा है कि अन्य की गड़ी हुई निधि को प्राप्त होकर राजा ग्रहण करने ब्राह्मणको छोड़कर सबधनका स्वामी-राजाही होताहै—राजा निधि को पाकर उस में आधा धन ब्राह्मण विद्वानों को दे क्योंकि सब वस्तु ब्राह्मण के अधीन है इसलिये देवै ॥ १३ ॥

[illegible]र्निधिंराजा पुराणंनिहितंक्षितौ ।

[illegible]

तस्माद्द्विजेभ्योदत्त्वार्द्धमर्द्धंकोशेप्रवेशयेत् ॥ १४ ॥

मनु० अ० ८ श्लो०३८ ॥

पृथ्वी में गड़ीहुई पुरानी निधि को राजा देखे तो राजा खोदा लेवै उस धन में से आधा धन ब्राह्मण को देकर आधा धन खजाने में रखदेवै ॥ १४ ॥

निधीनांतुपुराणानां धातूनामेवचक्षितौ ।

अर्द्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हिसः ॥ १५ ॥

मनु० अ० ८ श्लो०३९ ॥

पुरानी निधि और पृथ्वी की धातुओं के अर्द्धभाग का ग्रहण करनेवाला राजा होता है इसलिये कि वह प्रजा की और पृथ्वी की रक्षा करता है तभी पृथ्वी का अधिपति है ॥ १५ ॥

दातव्यंसर्ववर्णेभ्यो राज्ञाचौरैर्हृतंधनम् ।

राजातदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोतिकिल्बिषम् १६॥

मनु० अ० ८ श्लो० ४० ॥

लोकों का याने लोगों का धन जो चोरों ने हर लिया हो उस धन को राजा संपूर्ण वर्णों को दे देवै अर्थात् जिस वर्ण का हो उस वर्ण के मनुष्य को दे देवे क्योंकि उस धन को जो राजा भोगता है तो उस को वही पाप होता है जो चोर को होता है सो राजा और चोर ये दोनों पापी होते हैं ॥ १६ ॥

जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणीधर्मांश्चधर्मवित् ।

समीक्ष्यकुलधर्मांश्च स्वधर्मंप्रतिपालयेत् ॥ १७ ॥
मनु० अ० ८ श्लो० ४१ ॥

जाति के धर्मवर्णों का नेम अर्थात् ब्राह्मणादि जातियों में नियत या जब आदि धर्म और देश के धर्म अर्थात् जो शास्त्र से विरुद्ध न हों और देशरीति से प्रसिद्ध हों—क्योंकि इस गौतमऋषि के वचन से यह प्रतीत होता है कि देश जाति कुल इनके धर्म का प्रमाण है जो शास्त्र में निषिद्ध नहीं और वैश्य आदिकों के धर्म और अपने कुल के लिये व्यवस्थित धर्म इनको जानकर राजा अपने लोगों के लिये शास्त्र के अनुकूल धर्मों की व्यवस्था करे ॥ १७ ॥

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ।
ततवर्णानिवर्जन्यायधर्मेनान्पूजयन्नृपः ॥ १८ ॥

भिसन्ध्येसमाधाय मौनंकुर्वन्तियेद्विजाः।
ुण्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २० ॥
अत्रि० अ० १७ श्लो०२४से २६ तक॥

जो ब्राह्मण दोनों संध्या के समय पर संध्योपासन
रते और ध्यान करके मौन होकर गायत्री का जप
रते हैं तो वह विप्र देवताओंके हजार वर्ष तक स्वर्ग-
ोक में पूजा को प्राप्त होते हैं अर्थात् इसी प्रकार
रयुलोक में राजा पूजा करै ॥ २० ॥

ाजाभवत्यनेनास्तु मुच्यन्तेचसभासदः।
नोगच्छतिकर्त्तारं निन्दार्होयत्रनिन्द्यते॥ २१ ॥
मनु० अ० ८ श्लो० १९ ॥

जिस सभा में निंदा के योग्य (सत्यवादी) वादी
पवा प्रतिवादी की निंदा की जाती है वहां राजा
प से हीन होता है और सभावादी भी पाप से छूटते
और पाप करनेवालेही को लगता है ॥ २१ ॥

तिमात्रोपजीवीवा कामंस्याद्ब्राह्मणब्रुवः।
र्मप्रवक्तानृपतेर्नतुशूद्रःकथंचन ॥ २२ ॥
मनु० अ० ८ श्लो०२० ॥

जातिमात्र से जीविका करते हुये अपने कर्म से हीन
ह्मण कोई धर्म के विवेचन में राजा नियुक्त करै यहां
ः कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन से न्याय करावै राजा

शूद्र को नियत धर्म के विषय में कभी न करै ॥ २१

यस्यशूद्रस्तुकुरुते राज्ञोधर्मविवेचनम् ।
तस्यसीदतितद्राष्ट्रं पङ्केगौरिवपश्यतः ॥ २२ ।
मनु० अ० ८ श्लो० २१

जिस राजा के यहां पर धर्म का विवेचन यानें शूद्र करता है तो उस राजा का वह देश राजा के देखते ही इस प्रकार दुःखी होता है कि जैसे पंक (कीच) में गौ पड़ के दुःखी होती है वैसेही राजा दुःखी होता है ॥ २२ ॥

यद्राष्ट्रंशूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशुतत्कृत्स्नंदुर्भिक्षव्याधिपीडितम्
मनु० अ० ८ श्लो० २२

...र्ष भोगते हैं वे देश भी वृष्टि के अभाव की इच्छा ...रते हैं अथवा उन में महान् भय होता है ॥ २५ ॥

...ध्योराज्ञासवैशूद्रो जपहोमपरश्चयः ।
...तोराष्ट्रस्यहन्तासौ यथावह्नेश्चवैजलम् ॥ २६ ॥

जो शूद्र जप और होम में तत्पर है वह राजा ...ारने योग्य है क्योंकि वह राजा के देश का इसप्रकार ...ाश करनेवाला है कि जैसे अग्नि का जल वृक्ष को ...बगाड़ देता है तैसेही शूद्र के तप करने से प्रजा का ...ाश होजाता है इस से राजाको चाहिये कि तपकरते ...ये शूद्र को मार डाले ॥ २६ ॥

...र्मव्यपेताःस्वधर्मात्ते परधर्मव्यवस्थिताः ।
...षांशास्तिकरोराजा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २७ ॥

जो अपने धर्म में टिका हुवा नहीं है और पराये ...र्म में तत्पर है उन की शिक्षा करनेवाला राजा स्वर्ग-...लोक में पूजा को प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

...एवंकुरुतेराजा गुणदोषपरीक्षणम् ।
...शःस्वर्गंनृपत्वंच पुनःकोशंसमर्जयेत् ॥ २८ ॥

जो राजा इसप्रकार गुण और दोषों की परीक्षा करता है वह यश, स्वर्ग, राज्य और कोश (ख़ज़ाना) ...न का संचय करताहै ॥ २८ ॥

दुष्टस्यदण्डःसुजनस्यपूजा
न्यायेनकोशस्यचसंप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातोऽर्थिषुराष्ट्ररक्षा
पञ्चैवयज्ञाःकथितानृपाणाम् ॥ २८ ॥

ये पांच यज्ञ राजाओं के कहे हैं कि दुष्ट को द अच्छे जन की पूजा. न्यायसे कोश का बढ़ना. अभाग में पक्षपात का न होना. और अपने देश की रक्षा ॥२८

यत्प्रजापालनेपुण्यं प्राप्नुवन्तीहपार्थिवाः ।
नतत्क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्तिद्विजोत्तमाः ॥ ३० ।

प्रजा के पालने में इसलोक में जिस पुण्य को [illegible] प्राप्त होते हैं [illegible] द्विजों में उत्तमो ! उस पुण्य को [illegible] यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥

[illegible]ब्राह्मण[illegible]पादानमा[illegible]न ।
नहि[illegible]किंचित्[illegible]नोहिमः॥३[illegible]

वैश्यशूद्रौप्रयत्नेन स्वानिकर्माणिकारयेत्।
तौहिच्युतौस्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदंजगत्॥३२॥

वैश्य और शूद्र पर राजा बडे यत्न से अपने २ कर्मों को करावे क्योंकि अपने कर्मों से पतित वे दोनों (न करते) इस जगत् को अनुचित धन के मद से व्याकुल कर देते हैं॥ ३२॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानिच।
आयव्ययौचानियतावाकारान्कोशमेवच॥ ३३॥

प्रारम्भ किये हुये कर्मों की समाप्ति को हाथी आदि वाहनों को आज कौन वस्तु आई और गई और सुवर्ण आदि के आकर (खानि) और कोश, इन सब को राजा प्रतिदिन देखे॥ ३३॥

एवंसर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन्।
व्यपोह्यकिल्बिषंसर्वंप्राप्नोतिपरमांगतिम्॥ ३४॥

इस पूर्वोक्त रीति से इन संपूर्ण व्यवहारों को समाप्त करता हुवा अर्थात् यथार्थ निर्णय करता हुवा राजा सब पापोंको नष्ट करके परमगतिको प्राप्त होताहै॥ ३४॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलो चितधर्मशिक्षायांद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

वैश्यस्तुकृतसंस्कारः कृत्वादारपरिग्रहम्।
वार्तायांनित्ययुक्तः स्यात्पशूनांचैवरक्षणे ॥ १ ॥

हुये हैं यज्ञोपवीत आदि संस्कार जिस के ऐसा वैश्य विवाह को करके वार्ता (कृषि. गोरक्षा) में और विशेष कर पशुओं की रक्षा में सदैव युक्तरहे ॥ १ ॥

प्रजापतिर्हिवैश्याय सृष्ट्वापरिददेपशून्।
ब्राह्मणायचराज्ञेच सर्वाःपरिददेप्रजाः ॥ २ ॥

मणि, मोती, सूंगा, लोहा, वस्त्र और कर्पूर आदि गंध और लवण आदि रस इन सब के मूल्य का बलाबल (न्यूनाधिक) भाव को वैश्यही जाने ॥ ४ ॥

बीजानामुप्तिविच्चस्यात्क्षेत्रदोषगुणस्यच ।
मानयोगंचजानीयात्तुलायोगांश्चसर्वशः ॥ ५ ॥

बीजों का बोने के समय खेत के दोष और गुण और मान के उपाय और तोलने के योग इन सब को वैश्य यथार्थ रीति से जाने ॥ ५ ॥

सारासारंचभाण्डानां देशानांचगुणागुणान् ।
लाभालाभंचवैश्यानां पशूनांपरिवर्द्धनम् ॥ ६ ॥

पात्रों के सार वा असार को देशों के गुण अवगुण को और विक्रय (वेचने योग्य) वस्तु के लाभ अलाभ को और पशुओं की वृद्धि को वैश्य जाने ॥ ६ ॥

भृत्यानांचभृतिंविद्याद्भाषाश्चविविधानृणाम् ।
द्रव्याणांस्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेवच ॥ ७ ॥

भृत्यों का वेतन, अनेक प्रकार की मनुष्यों की भाषा और द्रव्यों के रखने के उपाय, और क्रय विक्रय इन सब को वैश्य जाने ॥ ७ ॥

धर्मेणचद्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्चसर्वभूतानामन्नमेवप्रयत्नतः ॥ ८ ॥

विक्रय आदि में धर्मपूर्वकही द्रव्य की वृद्धि में

पक्षिजग्धंगवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम।
दूषितंकेशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेणशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

भक्षण के योग्य पक्षीका खाया फल, गौका सूंघा पदार्थ, पैर से फेंका, जिसके ऊपर छींक दिया हो, और केश और कीट जिसमें पड़े हों वह मिट्टी के गरने से शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धोलेपश्चतत्कृतः।
तावन्मृद्वारिचादेयं सर्वासुद्रव्यशुद्धिषु ॥ ४ ॥

अपवित्र (विष्ठा आदि) वस्तुका जिसमें सम्बन्ध हुआ हो ऐसे पदार्थमें से इतने अशुद्ध पदार्थों की गंध और लेप दूर न हों सब द्रव्यों की शुद्धि में इतने मिट्टी और जल से धोये जांय और उस उतने पदार्थ को फेंक कर शेषको ग्रहण कर ले लेकिन जहां एकसे शुद्धि हो (जैसा कानका मैल) वहां केवल जल से और जहां दोनों से शुद्धि हो वहां दोनों ग्रहण करने ॥ ४ ॥

त्रीणिदेवाःपवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन्।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्चवाचाप्रशस्यते ॥ ५ ॥

देवताओं ने ब्राह्मणों के लिये तीन पवित्र कहे हैं कि एक तो वह कि जिसकी अशुद्धि अपने नेत्रों से न देखीहो और दूसरा वह जिसको अशुद्ध होने की शंका पर जल से छिड़काहो क्योंकि हारीत ने यह कहा है कि

१ यद्यन्मीमांस्यस्यात्तदद्भिः स्पर्शाच्छुद्धिर्भवति ॥

स्त्रियों का मुख और फल के गिराने में पक्षी और प्रस्त्रव (चोखने) में बछड़ा और मृगों के पकड़ने में कुत्ता शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥

श्वभिर्हतस्ययन्मांसं शुचितन्मनुरब्रवीत्।
क्रव्याद्भिश्चहतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्चदस्युभिः९

कुत्तों के मारेहुये मृगका जो मांस है और अन्य जो कच्चे मांस खानेवाले जीव (व्याघ्र श्येन आदि) हैं उन से मरेका जो मांस है चाण्डाल और व्याघ्र आदि से मारेहुये ये जीवों का जो मांस है वह सब मनुने शुद्ध कहा है ॥ ९ ॥

ऊर्द्ध्वंनाभेर्यानिखानितानिमेध्यानिसर्वशः।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैवमलाश्च्युताः१०

नाभि से ऊपरके जो इन्द्रियों के छिद्रहैं वे सब शुद्ध होते हैं इससे उनके स्पर्शसे अशुद्धता नहीं होती और जो छिद्र नाभिसे नीचे केहैं वे सब अशुद्धहैं और देहमें से गिरेहुये जो मल हैं वे भी अशुद्ध हैं उनके स्पर्श में अशुद्धता होती है ॥ १० ॥

मक्षिकाविप्रुषश्छाया गौरश्वःसूर्यरश्मयः।
रजोभूर्वायुरग्निश्च स्पर्शेमेध्यानिनिर्दिशेत् ११॥

अशुद्धका स्पर्शकरनेवाली मक्खी और मुख से निकसी विप्रुष (जल के कण) और चाण्डाल आदि

स्त्रियों का मुख और फल के गिराने में पक्षी और प्रस्रव (चोखने) में बछड़ा और मृगों के पकड़ने में कुत्ता शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥

श्वभिर्हतस्ययन्मांसं शुचितन्मनुरब्रवीत्।
क्रव्याद्भिश्चहतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्चदस्युभिः ९

कुत्तों के मारेहुये मृगका जो मांस है और अन्य जो कच्चे मांस खानेवाले जीव (व्याघ्र श्येन आदि) हैं उन से मरेका जो मांस है चाण्डाल और व्याध आदि से मारेहुये ये जीवों का जो मांस है वह सब मनुने शुद्ध कहा है ॥ ९ ॥

ऊर्द्ध्वंनाभेर्यानिखानितानिमेध्यानिसर्वशः।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैवमलाश्च्युताः १०

नाभि से ऊपरके जो इन्द्रियों के छिद्रहैं वे सब शुद्ध होते हैं इससे उनके स्पर्शसे अशुद्धता नहीं होती और जो छिद्र नाभिसे नीचे केहैं वे सब अशुद्धहैं और देहमें से गिरेहुये जो मल हैं वे भी अशुद्ध हैं उनके स्पर्श में अशुद्धता होती है ॥ १० ॥

मक्षिकाविप्रुषश्छाया गौरश्वःसूर्यरश्मयः।
रजोभूर्वायुरग्निश्च स्पर्शेमेध्यानिनिर्दिशेत् ११॥

अशुद्धका स्पर्शकरनेवाली मक्खी और मुख से निकसी विप्रुष (जल के कण) और चाण्डाल आदि

शाक, मूल, फल इनकी शुद्धि अन्नके समान होतीहै ॥

इति श्रीकुलोचितधर्मशिक्षायांचतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अब शूद्रों के कर्तव्य कर्म को कहते हैं।

वर्णत्रयस्यशुश्रूषां कुर्य्याच्छूद्रःप्रयत्नतः।
दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेणसमाचरेत् ॥ १ ॥

तीनों वर्णों की सेवा को शूद्र यत्न से करे और ब्राह्मणों की तो दास के समान विशेषकर सेवाकरे ॥ १ ॥

अयाचितप्रदाता च कष्टंवृत्यर्थमाचरेत् ॥ २ ॥

विना मांगे दे और अपने निर्वाहकेलिये कष्ट करे॥२॥

शूद्राणामधिकंकुर्य्यार्दचनंन्यायवर्त्तिनाम्।
धारणंजीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥३॥

और न्याय में तत्पर जो शूद्र उनका भी पूजन अधिकता से करै जीर्ण (पुराने) वस्त्र को धारण करै और ब्राह्मण के उच्छिष्ट को भोजन करै क्योंकि मनुजी ने यह कहा है कि जो शूद्र द्विजातियों का उच्छिष्ट भोजन नहीं करता वह नरक में जाता है ॥ ३ ॥

विप्राणांवेदविदुषां गृहस्थानांयशस्विनाम्।
शुश्रूषैवतुशूद्रस्य धर्मोनैश्श्रेयसःपरः ॥ ४ ॥

---

१ द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥

वेदके ज्ञाता ब्राह्मणोंकी और अपने २ धर्म कर्म
करनेसे यशवाले गृहस्थियों की सेवा करनाही अ
आदिका दाता शूद्रका परम धर्म है ॥ ४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयोनित्यमुत्कृष्टांजातिमश्नुते ॥५॥

मनुःवाक्य

देह और मनसे शुद्ध और अपनेसे उत्तम जाति
सेवक मृदु वचन का वक्ता अहङ्कारका त्यागी औ
ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका आश्रित (सेवक) अ
विशेषकर ब्राह्मणकी और उनके अभावमें क्षत्रि
और उसके अभावमें वैश्यकी सेवा करता हुआ श
भी उत्तम जातिको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥

शूद्रस्यद्विजशुश्रूषापरमोधर्मउच्यते ।
अन्यथाकुरुतेकिंचित्तद्भवेत्तस्यनिष्फलम् ॥६॥

के दूषित् नहीं हैं उनको शूद्र सब जातियोंमेंवेचे ॥ ७॥

विक्रीणांमद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्यचभक्षणम् ।
कुर्वन्नगम्यागमनंशूद्रःपततितत्क्षणात् ॥ ८ ॥

मदिरा और मांसको वेचता हुवा और अभक्ष्यको खाता हुवा और गमन करने के अयोग्य स्त्रीके संग गमन करके शूद्र उसीक्षण में पतित होजाताहै ॥ ८ ॥

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्यनरकंध्रुवम् ॥ ९ ॥

इति पराशरस्मृति अ० १ के वचनात ॥

कपिला (सर्वांगश्वेत) गौ के दूध पीने से और ब्राह्मणीके संग गमन करने से और वेदके अक्षरों (धर्म शास्त्रादि) के विचार (पढ़ने) से शूद्रको निश्चय नरक होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

इति श्रीसामवेदि पण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य
कुलोचितधर्मशिक्षायांपञ्चदशोऽध्यायः॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥

अब आपत्ति कालमें चारों वर्णोंकी जीविका कहते हैं

ब्राह्मणाब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ।
तेसम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणियथाक्रमम् ॥ १ ॥

जो ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्ति के साधन ब्रह्मध्यान तत्परहैं और अपने कर्ममें स्थितहैं वे क्रमसे छः कर्म से अपनी जीविकाको भलीप्रकार करें उन छः कर्मोंका वर्णन करते हैं॥ १॥

अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनन्तथा।
दानंप्रतिग्रहश्चैवषट्कर्माण्यग्रजन्मनः॥ २॥

ब्राह्मणों के ये छः कर्म जानना चाहिये कि वेदका पढ़ना और पढ़ाना और यज्ञ करना और कराना और दान देना और लेना॥ २॥

षण्णान्तुकर्मणामस्यत्रीणिकर्माणि जीविका।
याजनाध्यापनेचैवविशुद्धाच्चप्रतिग्रहः॥ ३॥

पूर्वोक्त छःकर्मों के मध्य में इस ब्राह्मण के ये तीनों कर्म जीविका होते हैं अर्थात् इन तीनों कर्मों से ब्राह्मण अपनी जीविका को करे कि यज्ञ कराना और पढ़ाना और विशुद्ध (द्विजाति) से प्रतिग्रह लेना॥ ३॥

त्रयोधर्मानिवर्त्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियंप्रति।
अध्यापनं याजनञ्चतृतीयश्चप्रतिग्रहः॥ ४॥

ब्राह्मण की अपेक्षा क्षत्री के ये तीन धर्म निवृत्त होजाते हैं अर्थात् क्षत्री इन तीनों धर्मों को न करे कि पढ़ाना और यज्ञ कराना तीसरा प्रतिग्रह लेना॥ ४॥

वैश्यंप्रतितथैवैते निवर्तेरन्नितिस्थितिः।
नतौप्रतिहितान्धर्मान्मनुराहप्रजापतिः॥ ५॥

जैसे क्षत्रीको ब्राह्मण की अपेक्षा पढ़ाना यज्ञकराना और प्रतिग्रह लेना इनका निषेधहै इसी प्रकार वैश्य भी ये तीनों कर्म न करे यही शास्त्रकी मर्य्यादाहै क्योंकि क्षत्री और वैश्य के लिये वे धर्म प्रजापति मनु ने नहीं कहे इससे क्षत्री और वैश्यके पढ़ाना यज्ञ करना दानदेना ये तीनही कर्म हैं॥ ५॥

शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्यवणिकपशुकृषिर्विशः।
आजीवनार्थंधर्मस्तु दानमध्ययनंयजिः॥ ६॥

क्षत्रीकी आजीविका के लिये शस्त्र (खड्गादि) अस्त्र (बाणादि) इनका धारण करना है और वैश्यकी जीविका के लिये वाणिज्य (लेनदेन) और पशुओं की रक्षा और खेती करना है और इनदोनोंका धर्म तो दान देना, पढ़ना, यज्ञ करना है॥ ६॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्यक्षत्रियस्यचरक्षणम्।
वार्ताकर्मैववैश्यस्य विशिष्टानिस्वकर्मसु॥ ७॥

इनतीनों के अपने २ कर्मों में यह कर्म श्रेष्ठ होतेहैं अर्थात् जीविका के लिये यह श्रेष्ठ है कि ब्राह्मण को वेद का अभ्यास क्षत्रीको प्रजाकी रक्षा और वैश्य को वाणिज्य और पशुओं का पालना॥ ७॥

अजीवंस्तुयथोक्तेन ब्राह्मणःस्वेनकर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण सह्यस्यप्रत्यनन्तरः ॥ ८ ॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथंस्यादितिचेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थायजीवेद्वैश्यस्यजीविकाम् ॥ ९ ॥
वैश्यवृत्त्यापिजीवंस्तुब्राह्मणः क्षत्रियोऽपिवा ।
हिंसाप्रायांपराधीनां कृषिंयत्नेनवर्जयेत् ॥ १० ॥

शास्त्रोक्त अपने कर्म से नहीं जीवता हुआ ब्राह्म अर्थात् अपने नित्यके कर्म और कुटुम्बकी पालना को न करता हुआ क्षत्री के धर्म से ही जीविकाको करे क्य कि वह क्षत्री इस ब्राह्मणके समीपका वर्ण है यदि ब्राह्म किसी प्रकार से पूर्वोक्त दोनों वृत्तियों से न जीसके त कृषि और गौओं की रक्षारूप वैश्य की जीवि से जीवे अर्थात् वैश्यों के कर्मों से ही अपना नि करे वैश्य की वृत्तिसे जीवता हुआ ब्राह्मण और क्षत्रि प्रायः भूमि के जंतुओं की है हिंसा जिसमें औ पराधीन और बैल और वर्षा आदि के आधीन है को यत्न से वर्ज दे अर्थात् पशुओं की पालना न करे पाही वैश्य की वृत्ति से जीवे ॥ ८ । १० ॥

परन्तु यह खेती की जीविका सज्जनों ने निंदित कही है क्योंकि लोहे का है मुख जिसका ऐसा हल भूमि में सोनेवाले जीवों को नष्ट करदेता है ॥ ११ ॥

इदंतु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ १२ ॥

यदि अपनी वृत्तिके अभावमें अपने धर्म्म में निष्ठा को ब्राह्मण वा क्षत्री त्यागदें तो वैश्यके बेचने योग्य और वित्त (धन) का वर्धक निषिद्ध वस्तुओंसे रहित वस्तुओं के बेचने को करें परन्तु इनको वर्जदें कि ॥ १२ ॥

सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैस्सह ।
अश्मनो लवणंचैव पशवोयेच मानुषाः ॥ १३ ॥
सर्वं च तान्तवंरक्तं शाणक्षौमाविकानिच ।
अपिचेत्स्यू रक्तानि फलंमूलेतथौषधीः ॥ १४ ॥
अयःशस्त्रं विषं मांसं सोमगन्धांश्चसर्वशः ।
क्षीरंक्षौद्रं दधिघृतंतैलंमधुगुडंकुशान् ॥ १५ ॥
आरण्यांश्चपशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्चवयांसिच ।
मद्यंनीलींच लाक्षांचसर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥ १६ ॥
काममुत्पाद्यकृष्यांतु स्वयमेव कृषीवलः ।
विक्रीणीततिलाञ्छुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् १७

संपूर्ण रस कृतान्न (पूरीआदि) और तिल पाषाण और लवण और मनुष्यों के उपकारी पशु (बैलआदि)

इनको वर्जदे यद्यपि लवण भी रसों में है तथापि पृथ
उसका निषेध अधिक दोषयुक्त प्रायश्चित्त के लि
जानना इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना कुसुम आदि
से रंगेहुये सबप्रकारके वस्त्र शण, रेशम, भेडकीऊन इन
के वस्त्र चाहे रंगेहों वा न रंगेहों उनको फल और मूल
और गिलोह आदि औषधि इनको वर्जदें जल, शस्त्र
विष, मांस, सोम (अमृतलता) और संपूर्ण कपूर आ
दि गंध, दूध, क्षौद्र (शहद) दधि, घी, तेल, मधु (मोम
वा मीठा) और गुड़ कुश इनको भी क्रमसे वर्जे
अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री इनको न बेचे वनके सम्पूर्ण पशु
(हाथी आदि) और दंष्ट्री (सिंह आदि) और पक्षी
(जल के वा अंडज) मदिरा, नील, लाख और एक
खुरवाले संपूर्ण पशु इनको भी वर्जदे अर्थात न बेचे
अपनी खेतीमें स्वयं तिलोंको किसी अन्न के संग पैदा
करके और धर्म (होम आदि) के लिये बहुत शीघ्र
किस्मान बेचदें जो आपत्ति के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय
भी होकर खेती करने लगा हो यद्यपि तिलों का बेचना
निषिद्धहै तथापि धर्म के लिये दूषित नहीं है ॥ ९३ ॥
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ।
कृमिभूतःश्वविष्ठायां पितृभिःसह मज्जति ॥ ९४ ॥

अपने पितरों समेत डुबाताहै इससे तिलोंको कदाचित् लाभके निमित्त न वेंचे ॥ १८ ॥

सद्यःपतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेणशूद्रीभवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् ॥ १९॥
इतरेषांतुपण्यानां विक्रायादिहकामतः ।
ब्राह्मणःसप्तरात्रेणवैश्यभावंनियच्छति ॥ २० ॥

मांस लाख लवण इन के बेचने से ब्राह्मण उसी समय पतित होता है और दूध के बेचने से तो ब्राह्मण तीन दिन में शूद्र होजाता है अर्थात् दूध का बेंचना अत्यंत दूषित है पूर्वोक्त मांस आदिकों से इतर निषिद्ध बेचनेयोग्य वस्तुओं के इच्छापूर्वक बेचने से सातरात्रि में ब्राह्मण वैश्यभाव को प्राप्त होजाता है अर्थात् वैश्य के कर्मों को करनेवाला ब्राह्मण निषिद्ध पदार्थों को कभी न बेंचै ॥ १९ । २० ॥

रसारसैर्निमातव्यानत्वेवलवणं रसैः ।
कृतान्नंचाकृतान्नेनतिलाधान्येनतत्समाः ॥ २१ ॥

मनुष्य गुड़ आदि रसों को घृत आदि रसों से परिवर्तन (बदलना) करलें परन्तु लवण को इतर रसों से न बदलें और कृतान्न (बना हुवापूरी आदि) को अकृतान्न (कच्चा) से और अन्न के समान तिलों को अन्न से बदललेवे ॥ २१ ॥

तेनयायात्सतांमार्गं तेनगच्छन्नरिष्यते ॥ २५ ॥

यदि शास्त्रोक्त मार्ग न [illegible] समझै तो जिस मार्ग को इस के पिता और पितामह चले आये हैं उन्हीं [illegible] के मार्ग को यह भी चलै अर्थात् वही कर्म करे जो पिता आदिकोंने किया हो ॥ २५ ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसमाजकुलोचितधर्मशिक्षायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

कि वाराहपुराणमें ऐसा लिखा है कि राजा अश्वशिराने जैगीषव्य कपिलदेवसे प्रश्न किया कि हमारे संदेहको दूर कीजिये जिससे संसारका भ्रम छूटजाय और परम गतिको हम प्राप्त होवें इतना सुन कपिलजी बोले कि हे राजन् ! यही प्रश्न वृहस्पतिजी से रैभ्यमुनि और वसु राजाने पूछा था सो सुनो चाक्षुष मन्वन्तरमें परम विद्वान् धर्मात्मा वसु नाम राजाथे सो एकसमय ब्रह्मलोक में श्रीब्रह्माजीके दर्शन के वास्ते गये सो चित्ररथ गन्धर्वसे पूछा कि ब्रह्माजी और रैभ्यमुनि हमसे पहिले आये थे सो कहां हैं इतना सुन गन्धर्व बोला कि हे राजा ! वे दोनों अन्तःपुरमेंहैं इतना कहतेही रैभ्यमुनिने राजा को दर्शन दिया और राजा ने विधिवत् मुनि की

पूजा किया और हर्षको प्राप्तहुआ और बोला कि आप कहां रहे तब रैभ्यमुनि बोले कि हम बृहस्पति के समीप से आतेहैं कुछ सन्देह दूरि करनेको गये थे सो आप चलिये सो दोनों जने बृहस्पति के पास गये प्रणाम किया और हाथ जोड़ि के बोले कि हे देवगुरो ! मोक्ष जो पदार्थ है सो ज्ञानसे व कर्म से प्राप्त होता है सो कृपा करिके वर्णन करिये यह सुनिकै बृहस्पतिजी बोले कि संसार में मनुष्य जन्म लेके जो जो कर्म करतेहैं शुभ वा अशुभ सो संपूर्ण नारायण को अर्पण करदेने से किया हुआ कर्म उस पुरुषको भोगना नहीं पड़ता उस को [illegible] और ब्राह्मणका [illegible] करते हैं

जीवोंकी हिंसाकरै हे ऋषीश्वर! यह ब्रह्मपरमात्मापंचभू-
तोंके साथ क्रीड़ा करताहे इसका रोंकनेवाला कौन है
जैसे मिट्टी के खिलौने बनाके वालक खेलतेहैं जो मुमुक्षु
हैं उनको अहंभाव नहीं होता अहंभाव संसारका मूल
है इसलिये तुम अपना भ्रम छोड़ दो ऐसी लुब्धक की
क्रूरवाणी सुनिकै विस्मय में प्राप्त होके ऋषि कुछ देर
चुपहोरहे फिर लुब्धक की गंभीर वाणी ज्ञानसे भरी-
हुई सुनि ऋषिने प्रश्न करने का विचार किया उसी
समय लुब्धक सूखे काष्ठ एकत्र कर उसके ऊपर लोह
की जाल ओढ़ाय ब्राह्मण ऋषि से बोला कि इसके
नीचे अग्नि दै दीजिये तव तो ऋषि उसमें मुख से
प्रज्वलित कर अग्निदे चुपहोरहे जव अग्नि प्रचण्ड भई
तव लोह जालके छिद्रों से अनेक ज्वालायें कदंवके पुष्प
के सदृश निकलीं उनहजारों ज्वालाओंको देख लुब्धक
ऋषि से बोला कि इसमें एक ज्वाला पकड़लो इसी
प्रकार एक एक पकड़ने से संपूर्ण ज्वालयें पकड़ लीजायं
गी तव तो ऋषिने जलका कलश लेके वड़ी जल्दी से
उसी अग्नि में छोड़ दिया अग्नि शांति होने के वास्ते
फिर लुब्धकनाम व्याध ब्राह्मण ऋषि से बोला जो
अग्नि की ज्वाला तुमने लियाहै सो देओ हम मृगमांस
भूंजिकै खायं क्षुधा से दुःखी हैं तव तो ब्राह्मणने जाल
उठाकर देखा तो सम्पूर्ण अग्नि वुझि गई ऋषि चुप
हो गया व्याधने अग्नि को समूलनाश देखि वोला हे

ाने की परीक्षा की जो मनुष्य अपने कुल की रीति
चला जाता है वही मनुष्य स्वर्ग को जाता है और जो
मनुष्य अपने कुल की रास्ता छोड़ देता है और दूसरे
कुल की रास्ता पर चलता है वह अवश्यही नरक में
जाता है। और स्वर्ग, नरक अपने अधीन नहीं है यह
ईश्वरके अधीनहै जैसा कर्म करेंगे वैसा फल पावेंगे इस
वास्ते विद्वान् को दूसरे की निंदा न करना चाहिये
किन्तु अपने २ कुल के मुताबिक्क चलना चाहिये क्योंकि
सब से श्रेष्ठ अपनाही कुल है क्योंकि कपिल मुनिने
जैगीषव्य ऋषिराजा अश्वशिरासे कहाहै कि बृहस्पति
जीने राजा वसु, रैभ्य मुनि से कहा है कि सब से श्रेष्ठ
अपनाही कुल होताहै इसी में मोक्षहै अन्य से नहीं ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायांसप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ॥

सो अब देखिये कि कलियुग के प्रारंभ होतेही सारे जगत् में पाखंडा मत फैल गयाथा और पाखंडा मतवालोने इस जगत् में आकर ब्राह्मणों की निंदा करने लगे जो कि ब्राह्मण यज्ञादिक कर्म करतेथे वहां जाकर उनसे कहा कि हे ब्राह्मणो ! इस यज्ञादिक कर्म में हिंसा क्यों करते हो तब तो ब्राह्मणों ने कहा कि इस

को लाकर यज्ञादिक कर्म कराया) देह शुद्ध (प्राय-
श्चित्त कराकर) किया और कहा कि हे ब्राह्मणो ! जो
चक्रांकित होता है वह-साठहजार (६००००) वर्षनरक
को भोगता है सो प्रमाण कर्मविपाकसंहिता में लिखा
है ऐसा सब को समझाकर विश्वनाथजी अन्तर्धान
होगये तब ब्राह्मणों ने पहिले की नाईं वेदमार्ग (अपने
२ कुलोचितधर्म) को पकड़ लिया यज्ञकरना शुरूम
किया याने यज्ञ करने लगे और यज्ञकरते रहे कुछ
काल के बाद पाखंडियों को खबर हुई कि ब्राह्मण फिर
यज्ञ कररहे हैं और तुम्हारे धर्म को छोड़दिया तबतो
पाखंडियों ने कहा कि हम अभी जाते हैं जहां कि यज्ञ
करते हैं उन ब्राह्मणों को फिर भी समझा देंगे इतना
कह जहां कि यज्ञादिक कर्म हो रहाथा गये और कहा
कि बड़े शरमकी बात है कि ब्राह्मण होकर जीववध
(यज्ञादिक कर्म में पशुवध) करतेहो अभी तो हम तुम
को समझा कर चलेगये थे और तुम हमारे कहेपर चले
भी थे तो अब तुमको क्या होगयाहै और तुमको यह
किसने रायदिया है और तुम अपना धर्म तो विचारते
नहीं कि हमारा क्या धर्म है और क्या कररहे हैं तुम
ब्राह्मण होकर जीववध करते हो इसमें केवल तुमको
नरक होगा हम सत्य कहतेहैं कि जीववध (यज्ञादिक
कर्म को छोड़ो) मतकरो ईश्वर की भक्ति. जप-इत्यादि
प्रकारसे पूजन करो इसमें तुम्हारा कल्याण होगा और

मतमें लाये थे और फिर शंकराचार्यजी ने उनसे प्रश्न किया कि तुम वेदविरुद्ध क्यों करते हो और वेदपाठियों को अपने मतमें करलिया है और वेद यज्ञ की निंदा करते हो और कहते होकि हम वेदको मानते हैं जबसे तुमने यज्ञको बन्द कराया तबसे यज्ञ कराना बंद होगया सो देवतालोग बड़ेही दुःखी हैं और ब्राह्मणों को अत्यंत क्लेश है और सबको दुःख है पितर भी अपना भाग नहीं पाते क्योंकि देवता, पितर मांस मधुसेही प्रसन्न होते हैं तभी सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं तब उन्हों ने उत्तर दिया कि और पदार्थों से देवतादि क्या नहीं प्रसन्न होते और मांसकी बहुत तरह से निंदा करने लगे तब शंकराचार्यजी ने कहा कि जो ब्राह्मण वेदोक्त कर्म करता है उसको हिंसा नहीं लगती है क्योंकि अत्रिमुनिने कहा है कि, जो ब्राह्मण वेदोक्त कर्म (हिंसा आदि) के करने से दूषित नहीं होते तुम क्यों ऐसा कहते हो । तब जबाब दिया किये ठीक नहीं है । तब शंकराचार्यजी ने कहा कि हम जबानी नहीं मानते तुम प्रमाण[1] दो तो उन्हों ने कहा कि हम प्रमाण देते हैं कि,

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१ ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥

नाकृत्वाप्राणिनांहिंसांमांसंचोत्पद्यतेक्वचित ।
नचप्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्मान्मांसंविवर्जयेत ॥४॥

मांसभक्षण के प्रसंग से हिंसा के गुण और दोषों को कहकर मासके अभक्षण को कहते हैं कि प्राणियों की हिंसा किये विना कहीं मांस उत्पन्न नहीं होसक्ता और प्राणी का मारना स्वर्ग का हेतु भी नहीं है जिससे मांसको सर्वथा वर्जि दे ॥ ४ ॥

समुत्पत्तिंचमांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम ।
प्रसमीक्ष्यनिवर्तेत सर्वमांसस्यभक्षणात् ॥ ५ ॥

शुक्र शोणित के मेल से घृणा करनेवाली प्राणियों की उत्पत्ति और क्रूरकर्मरूप वध (मारना) और वन्धनरूप दुःख प्राणियों के देखकर सवप्रकारके मांस भक्षण से मनुष्य निवृत्त (हट) जाय॥ ५ ॥

यावन्तिपशुरोमाणि तावत्कृत्वोहमारणम् ।
वृथापशुघ्नःप्राप्नोति प्रेत्यजन्मनिजन्मनि ॥ ६ ॥

जो मनुष्य वृथैव पशुको मारताहै वह जितने पशु के रोमहैं उतनेही जन्मों में मारने को प्राप्त होता है अर्थात् जैसे वह मारताहै उसको भी इतर मारतेहैं ६ ॥

कुर्याद् घृतपशुंसङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुंतथा ।
नत्वेवतुवृथाहन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ७ ॥

नतत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ११ ॥

जिस फलको मांसके त्यागसे प्राप्त है उस फल को पवित्र फल और मूल के भक्षण और मुनियोंके नीवार आदि अन्नों के भोजन से नहीं होता इससे मांस को सर्वथा त्यागकर दे ॥ ११ ॥

मांसभक्षयितामुत्र यस्यमांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्यमांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १२ ॥

इस लोकमें जिसके मांसको मैं खाताहूँ वह परलोक में मुझे भक्षण करैगा यही मांसका (मांसपदका) मांसत्व (तात्पर्य्यार्थ) पण्डितजन कहतेहैं अर्थात् मांसपदका यही अर्थ है ॥ १२ ॥

जैन, बौद्ध, कापालिक इत्यादि मतवालों ने यह उत्तर दिया ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥

तब शङ्कराचार्य्यजी बोले कि यह बात जो तुमने कहा सो सब वेदविरुद्ध है इससे यज्ञादिक कर्म नहीं होसक्ता क्योंकि ब्रह्माजीने ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कर्त्ता जिन्हों

मेघाम्बुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती शुभा ।
सोऽपिराजादिवंयातः कीर्तिरस्याचलाभुवि ॥ ३ ॥

उनके यज्ञीय पशुओं के चर्मका शैल के समान ढेर होगया था और मेघों का जल पड़ने से चर्मण्वती नदी बह चली है वे भी राजा स्वर्ग को गये कि जिन की भूमण्डल में बड़ी कीर्ति है ॥ ३ ॥

और इसी प्रकार राजा रघु इत्यादि सौ २ अश्वमेध यज्ञ करके इन्द्रकी पदवी को प्राप्त हुए और ऋषी लोग भी अपने वाजपेय इत्यादिक यज्ञ करके मृत्यु-लोक में सुख (यश) पाकर अन्त में स्वर्गवासी होते भये । और यह तुम्हारा कहना व्यर्थहै क्योंकि अपने घर (नगर) का जो मालिक होता है उसका पूरा अख्तियार रहता है कि अपने ग्राम (घर) में जैसा चाहे वैसा करसक्ता है अथवा करायसक्ता है उसकी इच्छा अब दूसरे गांवका मालिक उसकी निंदा करके क्या करसक्ता है इसीतरह से कुम्हार मिट्टी के खिलोने (वर्तन) वनाता है उसको अख्तियार है कि वना हुवा खिलोना विगाड़दे अथवा उसको विगाड़कर फिर ज्योंका त्यों वनाय देवे अथवा उस खिलोने को जमीन में कूटकर फिर चाहे टेढ़ा व सीधा वनावै तो उसको अख्तियार है चाहै जैसा वनावै कौन उसको रोकने-वाला है क्या इसमें भी पाप है जो ब्रह्माकी सृष्टि में

इतने यज्ञ वेद में कहे गये हैं सो इन्हीं यज्ञों के अर्थ छोटे व बड़े और देव, पितरों के यज्ञ में यथा-योग्य पशुवध ब्रह्माने कहा कि जितने यज्ञ के पशु होने हैं उतने ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ के लिये रचे हैं पशु व पक्षियों के नामभी कहते हैं किः- ४। ७॥

यज्ञार्थपशवःसृष्टाःस्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्यभूत्यैसर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः ॥ ८ ॥
औषध्यःपशवोवृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणांतथा।
यज्ञार्थंनिधनंप्राप्तः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीःपुनः॥ ९ ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैवपशवो हिंस्यान्नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥१० ॥

यज्ञकेलिये पशुकी हिंसामें दोष नहींहै क्योंकि ब्रह्मा जीने आपही यज्ञके लिये और संपूर्ण यज्ञों की सिद्धि के निमित्त पशु रचे हैं तिससे यज्ञके विषे जो जीववध (हिंसा) नहीं है। यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुई व्री हिआदि ओषधि-पशु-वृक्ष, कूर्म्म आदि तिर्यक् जीव और कपिञ्चल आदि पक्षी फिर भी जन्ममें उत्तम २ जन्म को प्राप्त होते हैं। मधुपर्क ज्योतिष्टोमादि यज्ञ और पितर और देवताओं के श्राद्ध आदि कर्म इनमें ही पशुवों की हिंसा करनी (जीववध करना) अन्यत्र नहीं करनी यह मनुने भी कहाहे॥ ८।९। १०।२। ३॥

देखिये मनुजीने ब्रह्माके पढ़ायेहुये श्लोक ऋषियों

पाप लगाते हो सो इसी तरह से ब्रह्माजी को पूरी तौर से अख़्तियार है जो२ काम नियत करादिये हैं जिसके२ लिये सो क्यों नहीं अपने २ काम में प्रवृत्त होते हैं मनुष्यों के लड़के खेलते हैं और सब फूटभी जाते हैं तो क्या उनके मा बाप बालकों को सजा देते हैं नहीं ये खेलउने खेलने के हैं इसी तरह से ब्रह्मा हमारा बाप है हमारे को जो मने करता है उसको यमराज नरक में डालते हैं। एक एक की निंदा क्यों करते हो। तो क्या ब्रह्माजी प्रसन्न होंगे जो तुम खिलाफ़ कानून से याने यज्ञ की निंदा करते हो तो क्या यमराज दंड नहीं देंगे नहीं यमराज दंड ज़रूरही देवेंगे। ब्रह्माजीने जो यज्ञ रची है और ब्राह्मण क्षत्रिय करते और कराते हैं तिन यज्ञों का नाम कहते हैं॥

राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके।
अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे॥४॥
धनदेभूमिदे पूर्ते फलदेगजमेधके।
लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथताम्रके॥५॥
शिवयज्ञेरुद्रयज्ञेशक्रयज्ञे च बन्धुके।
वृष्टौवरुणयागेच कण्डवैरिप्रमर्दने॥६॥
शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने।
ब्रह्माणीकर्मयागेच योनियागे च भद्रके॥७॥

इतियज्ञनामानि।

इतने यज्ञ वेद में कहे गये हैं सो इन्हीं यज्ञों के अर्थ छोटे व बड़े और देव, पितरों के यज्ञ में यथा-योग्य पशुवध ब्रह्माने कहा कि जितने यज्ञ के पशु होने हैं उतने ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ के लिये रचे हैं पशु व पक्षियों के नामभी कहते हैं कि:- ४।७॥

यज्ञार्थपशवःसृष्टाःस्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्यभूत्यैसर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः॥ ८॥
औषध्यःपशवोवृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणांतथा।
यज्ञार्थंनिधनंप्राप्तः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीःपुनः॥ ९॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैवपशवो हिंस्यान्नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥१०॥

यज्ञकेलिये पशुकी हिंसामें दोष नहींहै क्योंकि ब्रह्मा जीने आपही यज्ञके लिये और संपूर्ण यज्ञों की सिद्धि के निमित्त पशु रचे हैं तिससे यज्ञके विषे जो जीववध (हिंसा) नहीं है। यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुई व्री हिआदि ओषधि-पशु-वृक्ष, कूर्म आदि तिर्यक् जीव और कपिञ्चल आदि पक्षी फिर भी जन्ममें उत्तम २ जन्म को प्राप्त होते हैं। मधुपर्क ज्योतिष्टोमादि यज्ञ और पितर और देवताओं के श्राद्ध आदि कर्म इनमें ही पशुवों की हिंसा करनी (जीववध करना) अन्यत्र नहीं करनी यह मनुने भी कहाहै॥ ८।९।१०।२।३॥

देखिये मनुजीने ब्रह्माके पढ़ायेहुये श्लोक ऋषियों

के प्रति कहेहैं और इसके उपरांत और जो मनुने कहा है सो कहते हैं ॥

एष्वर्थेषुपशुंहिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः।
आत्मानंचपशुंचैव गमयत्युत्तमांगतिम् ॥ ११ ॥

इन मधुपर्क आदि कर्मों में पशुओं की हिंसा करता हुवा वेद के यथार्थतत्त्वको जानता हुवा द्विज अपने आत्मा और पशुको उत्तम गतिमें पहुंचाताहै कदाचित् कोई यह कहै कि अन्य (मनुष्य) के लिये कर्म से पशुकी उत्तमगति कैसे होगी सो उनका कहना बिल्कुल ठीक नहीं सर्वथा अन्यथाहै क्योंकि शास्त्रोक्त यह बातहै कि जैसे पिताके किये जातकर्म्म से पुत्र को फल होताहै इसीप्रकार यजमान की करुणा से पशुको भी अधिक फल प्राप्त होताहै और अपने और पशुको उत्तमगति में प्राप्तकरता है याने स्वर्गमें पहुँचा है यह कहतेहुये मनुने इसीश्लोक से यह बात सूचित कियाहै कि वेद और स्मृति से परे और किसी का प्रमाण नहीं है ॥ ११ ॥

यावेदविहिताहिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेवतां विद्याद्वेदाद्धर्मोहिनिर्बभौ॥ १२ ॥

तो किसप्रकार हिंसा करे वेदोक्त, यज्ञदीक्षा में पशुकी हिंसा अधर्मके लिये नहीं है जो हिंसा वेदमें विहित है और देशकाल से नियत है इस स्थावर

जंगम रूप संसार में उसको हिंसा से उत्पन्न अधर्मके अभाव में अहिंसा ही जाने कदाचित् कोई यह कहै कि दीक्षाके समय पशुका हनन अधर्महै प्राणीका हनन होने से ब्राह्मणके हनन तुल्य है यह अनुमान भी शास्त्र से वाधित होने से प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि अनुमान भी वही प्रमाण होता है कि जिसमें शास्त्र मूलहे और पूर्वोक्त अनुमान में दृष्टांत दिया ब्राह्मण हनन अधर्महै इसमें भी शास्त्र मूल है क्योंकि जिसमें वेदसे इतर कोई प्रमाण नहीं है ऐसा धर्म वेद सेही प्रकाश हुवा है अन्यत्र से नहीं ॥ १२ ॥

न मांसभक्षणेदोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥१३॥

इति मांसभक्षणेमनुवाक्यानि ।

ब्राह्मणादि वर्णोंको शास्त्रविहित और अनिषिद्ध मांसभक्षण और मद्यपान और मैथुन में दोष नहीं है क्योंकि यह भक्षण पान मैथुन आदि में प्रवृत्ति मनुष्यों के स्वभाव से है किन्तु मांसभक्षण मद्यपान मैथुनकी निवृत्तिका तो अत्यन्त फलहै यज्ञ और श्राद्ध आदिमें इसको अवश्यही भक्षण करना चाहिये क्योंकि यज्ञ आदि में पुण्यके समूह में कूप खनन न्यायसे वह हत्या शास्त्र वेद में हत्या नहीं कही गई है ॥ १३ ॥

"अहिंसा परमोधर्म्मः" अहिंसापरम धर्म है सनातन की वात है । और हिंसां च परिवर्जयेत् हिंसाकर्मको वर्जितकरै ॥ १३ ॥

यज्ञार्थंब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्तामृगपक्षिणः ।
भृत्यानांचैववृत्त्यर्थमगस्त्योह्यचरत्पुरा ॥ १४॥

ब्राह्मणों को यज्ञके लिये और पालना करने योग्य माता पिता आदि की पालना करने के लिये प्रशस्त (शास्त्रोक्त) मृग और पक्षी मारने योग्य हैं क्योंकि अगस्त्य मुनिने पहिले ऐसाही किया है ॥

वभूवुर्हिपुरोडाशा भक्ष्याणांमृगपक्षिणाम् ।
पुराणेष्वपियज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषुच ॥ १५ ॥

पहिले भी ऋषियों के किये यज्ञों में और ब्राह्मण और क्षत्रियों के यज्ञों में शास्त्रोक्त मृग और पक्षियं के जिससे पुरोडाश हुयेहैं इससे आधुनिक मनुष्य भी यज्ञ के लिये प्रशस्त मृग और पक्षियोंको मारें ॥ १५॥

यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यंभोज्यमगर्हितम् ।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषंचयद्भवेत् ॥ १६ ॥

अगर्हित वासी भी भक्ष्य और भोज्य को भोजन के समय घृत आदि स्नेह मिलाकर भोजन करले और वासी हवि के शेषको तो घृत आदिके विना मिलाये भी भोजन करै ॥ १६ ॥

चिरंस्थितमपित्वाद्यमस्नेहाक्तंद्विजातिभिः।
यवगोधूमजंसर्वंपयसश्चैवविक्रिया॥ १७॥

स्नेह (घी आदि) से रहित यव, गेहूं और दूधके संपूर्ण पदार्थ चिरकाल कें रक्खे हुये भी द्विजातियोंको भक्षण करने योग्य हैं॥ १७॥

प्रोक्षितंभक्षयेन्मासं ब्राह्मणानां च काम्यया।
यथाविधिनियुक्तस्तु प्राणानामेवचात्यये॥१८॥

यज्ञमें मंत्रों से प्रोक्षित, और ब्राह्मणों की कामना से और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार और नियुक्त गुरु आदि की आज्ञासे और प्राणों के नाश होने की संभावना से मांसको भक्षण करै॥ १८॥

क्रीत्वास्वयंवाप्युत्पाद्य परोपकृतमेववा।
देवान्पितॄंश्चार्चयित्वाखादन्मांसंनदुष्यति १९

मांसको मोल लेकर वा स्वयं पैदा करके अथवा किसी ने आनकर दियाहो अथवा देवता और पितरों को नैवेद्य लगाकर मांसको खाता हुवा मनुष्य दोष का भागी नहीं होता है॥ १९॥

यज्ञायजग्धिर्मांसस्येत्येषदैवोविधिःस्मृतः।
अतोऽन्यथाप्रवृत्तिस्तु राक्षसोविधिरुच्यते॥२०॥

जो यज्ञकी सिद्धके लिये जो यज्ञके अङ्गरूप मांसका जो भक्षण है सो तो देवताविधि कहीगई है और इस

से अन्यथा जो करते हैं सो राक्षसविधि मनु आदि ने कही है ॥ २० ॥

जब शंकराचार्य्यजी ने इतना प्रमाण दिया ।

इतिश्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः ॥

तब जैनमत चलनेवाले लोग बोले कि आपने जो कहा सो ठीक है,लेकिन देवता, पितरों के वास्ते स्वयं यज्ञ में ठीक है अन्यथा नहीं हिंसा में दोष है तब पाखंडीलोगों ने यह श्लोक कहा किः-

अनुमन्ताविशसिता निहन्ताक्रयविक्रयी ।
संस्कर्ताचोपहर्ता च खादकश्चेतिघातकाः ॥ १ ॥

अनुमन्ता अर्थात् जिसकी अनुमतिके विना हिंसा न करसके और जो विशसिता अर्थात् मृत पशुके अंगों को जो कर्त्तरी (छुरी) आदि से अंगों को पृथक् २ करें और मांसका क्रेता (जो मोललें) और विक्रेता(जो बेंचे) और संस्कर्त्ता (पाचक) और खादक (जो भक्षण करे) ये घातक (हिंसा करनेवाले) हैं यहांपर गोविंदराजने तो विक्रय एक वही लिया है जो मांस बेंच

बेचे सो ठीक नहीं है क्योंकि इस वचन से यमराज ने पृथक् पृथक् ही कहे हैं कि मारने से मारनेवाला, धन से मोललेनेवाला, और धनके ग्रहण करने से बेचनेवाला और उसकी प्रवृत्ति से पाचक, घातक होते हैं और इनको इससे घातक कहा है कि शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर पशु धेनु आदि की हत्या भी न करनी और खादक आदिकों को हत्या का प्रायश्चित्त भी पृथक् २ ही कहा है ॥ १ ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

इतनी बात सुनकर शंकराचार्यजी बोले कि जो तुम इतने आदमिन को पातक लगाते हो इतनाही तुमको पातक लगैगा क्योंकि तुम वेदविरुद्ध बात कहते हो किसतरह से कि जैसे गौतम ऋषि ने अपने स्थानपर जलका अभाव होनेपर वरुणजीका आवाहन किया था तब वरुणजी आये और कहा कि "वरंब्रूहि" क्या मांगते हो तो गौतममहर्षि ने कहा कि दर्शन से प्रसन्न होगये वरुणजी ने कहा कि तथापि कुछ कहना

१ हननेन तथा हन्ता धनेन क्रयकस्तथा। विक्रयी तुधनादानात्सं स्कर्तातत्प्रवर्तनात् ॥ १ ॥

चाहिये तब गौतमने कहा कि यहां पर जल नहीं है तब वरुणजीने कहा कि यहां पर एक गर्त जल्दसे खोदावो तब गौतम ने बावली खुदवाली तब जल से पूर्ण हो गई और वरुण ने कहा कि यह कभी सूखैगी नहीं ऐसे पूर्ण रहैगी इतना कह अन्तर्द्धान होगये। और गोतम के स्थान पर जल होने पर ग्राम के वासी मुनिलोग गौतम के स्थानपर आय पहुँचे याने वहीं पर अपना निवास करलिया एकदिन की बात है कि गौतम के शिष्य जल भरने को बावली पर गये थे इतने में ब्राह्मणों की स्त्रियां बावली पर जल भरनेको आई थीं और आपस में तकरार हुई आखिर को गोतम के शिष्य लौटगये और अहल्याजीसे कहा कि हमको ब्राह्मणों की स्त्रियोंने पानी भरने नहीं दिया तब अहल्या उठ खड़ी हुई और कहा कि तुमको कौन स्त्री पानी भरने नहीं देती इतने में वह स्त्री बावली से पानी भर भर कर अपने स्थान को लौट पड़ी थी इतने में बावली पर अहल्या पहुँचगई थी कुछ स्त्रियों से कहा सुनी होगई उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने अपने२पतियोंसे अहल्याकी चुगली किया कि हमको कच्चीबात कही है इतनी बात सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े गुस्सा हुये और आपस में सलाह किया कि गोतम को कलंक लगा देनाचाहिये तब गणेशजीका आराधन कर मायारूपी गो को बनाकर गोतम के खेतपर खड़ी करदिया और गोतम से किसी

ने कहदिया कि तुम्हारे खेत में गौ चरती है गौतम-
जी उसके पास आये कि ज्योंही हांकने को छड़ी उठाई
त्योंही गौ मरगई। तदनन्तर ब्राह्मणों ने कहा कि
गौतम ने गौ को मारडाला और कहा कि हे हत्यारे!
तुम यहां से निकल जाओ हमको अपना मुंह मत
दिखाओ। और गौतमजी बाहर चलेगये एक महीने
के बाद फिर गौतमजी ब्राह्मणों के पास आय खड़े
हुये और कहा कि हमको उपाय बताओ कि जिस
में हमारा प्रायश्चित्त दूर हो तब उन्हों ने कहा कि
शिवकी आराधना करो और गंगाजी में स्नान करो
तब गौतमजीने शिवकी आराधना किया और शिव-
जी प्रसन्न हो गौतम के स्थान पर प्रगट हुये गौतम-
जीने शिवको देखकर बड़ी स्तुति किया और शिवजीने
कहा कि हमने तुमको पवित्र किया और जिन्होंने तुमको
पाप लगाया था यह पाप उनको लगेगा याने तुम्हारा
पाप उनके पास भेजते हैं तब गौतमजी ने कहा कि
जो आपको विष्णुजी ने गंगाजी को दिया है सो आप
देवें तो हम स्नान करलेवें तब शिवजीने अपनी जटा
से निकासकर पृथ्वी पर गौतमजी के सामने स्थापित
करदिया तब गौतमजीने गंगाजी की स्तुति किया
गंगाजी प्रसन्न हुई और कहा कि हमने तुमको पवित्र
किया और कहा कि तुम्हारा पाप हमने तुम्हारे शत्रुओं
के पास भेज दिया और महादेवीजी ने कहा कि

हे गंगाजी! तुम इसी गौतम के स्थान पर रहो और इन को पवित्र करो गंगाजीने कहा कि हमने गौतम को अच्छी प्रकार से पवित्र किया और इनके पापको कि जिन्होंने लगाया था उनके पास हमने भेजदिया है और उनको हम कदापि कभी भी पवित्र नहीं करेंगी और आप भी इसी स्थानपर विराजमान हों तब हम रहेंगी तब शिवजीने कहा कि बहुत अच्छा हम वास करेंगे और हमारे व गौतम के नाम से तुम्हारा तट विख्यात होगा वही "त्र्यम्बकं गौतमीतटे" वही गौतमके स्थानपर त्र्यम्बक महादेवजी का लिंगहै और गोदावरी गंगाजी बहरहीं हैं यह कथा शिवपुराण में लिखा है यह हमने सूक्ष्म कहा है इसीतरह से जो पाखंडासन करना है और झूठे ग्रन्थको प्रमाण देता है और वेदविरुद्ध बात कहता है वह सब उसी को पाप लगता है क्योंकि तुलसीदासजीने रामायण में ऐसा लिखा है कि ॥

चौपाई ॥

परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा।
परनिंदा सम अघ न गरिंसा ॥ १ ॥
हरि गुरु निंदक दादुर होई।
जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥ २ ॥
द्विजनिंदक बहु नरक भोग करि।

जग जन्मैं बायस शरीर धरि ॥ ३ ॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥ ४ ॥
होहिं उलूक सन्त निंदारत।
मोह निशा प्रिय ज्ञान भानुगत ॥ ५ ॥
सबकी निंदा जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥ ६ ॥

सो देखिये कि हम तुमको कहांतक प्रमाण देवें वेद, स्मृति, पुराण में और जितने शास्त्र हैं उनमें सब वेदके वाक्य मिलते हैं लेकिन जो तुमने यह श्लोक पढ़ा है सो सब वेदविरुद्ध बात है देखिये कि जो तुम इस श्लोकमें कई एक आदमियों को घातक बताते हो हिंसा करनेपर सो देखिये हम तुमको प्रमाण दिखलाते हैं स्कन्दपुराण अवन्तीखण्डमें सो अपने २ कान का मैल निकालकर सुनिये ॥

शङ्कराचार्य्य उवाच ॥

सनत्कुमार उवाच ॥

वाल्मीकिरीश्वरं व्यास मक्त्यान्[illegible] ।
मौनीध्यानपरोभूत्वा सुक्षि[illegible] ॥

शङ्कराचार्य्यजी जैनियों से कहते हैं कि [illegible] में सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! [illegible]

एकाग्र ध्यानमें तत्पर होकर जो मनुष्य प्रेमसे वाल्मी
केश्वरदेवजी का पूजन करताहै वह उत्तम कवि
को प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

व्यास उवाच ॥

कथमत्रसमुत्पन्नः कोबाल्मीकेश्वरःप्रभुः ।
यस्यदर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥ २ ॥

व्यासजी बोले कि यहां वे कैसे उत्पन्न हुये हैं औ
वाल्मीकेश्वर स्वामी कौन हैं कि जिनके दर्शनही
कवित्वको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥

आसीद्व्यासपुराविप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ।
रूपयौवनसम्पन्ना तस्यभार्याथकौशिकी ॥ ३ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! पुरानसम
भृगुवंशमें उपजेहुये सुमतिनामक ब्राह्मणहुये हैं औ
रूप व यौवन से सम्पन्न कौशिकीनामक उनकी
हुई है ॥ ३ ॥

तस्यपुत्रःसमुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेतिनामतः ।
सपित्राप्रोच्यमानोपि वेदाभ्यासंनमन्यते ॥ ४ ॥

उनके अग्निशर्मानामक पुत्र उत्पन्न हुआहै कि
कहा जाताहुवा भी वेदाभ्यासको नहीं मानताथा ॥ ४

ततोबहुतिथेकाले अनावृष्टिरजायत।
तदापिबह्वश्चासौ दक्षिणामाश्रितोदिशम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वहुत दिनोंवाले समय में अनावृष्टि हुई उस समय भी वहुत से मनुष्य व यह दक्षिणदिशा में आश्रित हुवा ॥ ५ ॥

ततोसौसुमतिर्विप्रः सभार्यःससुतस्तथा।
विदिशंकाननंप्राप्तः कृत्वाचाश्रममाश्रितः ॥ ६ ॥

तदनन्तर स्त्रियोंसमेत व पुत्रोंसहित यह सुमति ब्राह्मण विदिशा में वनको प्राप्त होकर आश्रम वनाकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥

आभीरैर्दस्युभिःसार्द्धं सङ्गोभूदग्निशर्मणः।
आगच्छतिपथातेन यस्तंहन्तिसपापकृत् ॥ ७ ॥

और अहीरों व चोरों के साथ अग्निशर्मा का संग होगया और उस रास्ते से जो कोई आताथा उसको वह पापकारी अग्निशर्मा मारता था ॥ ७ ॥

स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतंगोत्रंगताश्रुतिः।
कस्मिंश्चिदथकालेतु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ ८ ॥

स्मरण नष्ट होगया व वेद जाते रहे और गोत्र जाता रहा व श्रुति जातीरही इसके अनन्तर किसी समय में तीर्थयात्राके प्रसंग से ॥ ८ ॥

सप्तर्षयोयथातेन सुव्रताःसमुपस्थिताः ।
अग्निशर्माथतान्दृष्ट्वा हन्तुकामोब्रवीदिदम् ॥९

उत्तमव्रतोंवाले सप्तर्षिलोग उसी मार्ग से उपस्थि
हुये इसके अनन्तर मारने की इच्छावाला अग्निश
उनको देखकर यह बोला ॥ ९ ॥

नकदाचिन्मयातेतुसंपृष्टाईदृशंवचः ।
युष्माकंवचसामेद्य प्रतिबोधःप्रवर्तते ॥ १० ॥

अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे व
को नहीं पूंछा है आज तुमलोगों के वचन से मेरे ज्ञ
वर्तमान है ॥ १० ॥

गत्वापृच्छामितान् सर्वान्कस्यभावश्चकीदृशः
यूयमत्रैवतिष्ठध्वं यावदागमनंमम ॥ ११ ॥

जाकर में अब उन सबों से पूंछूंगा कि किस
कैसा अभिप्राय है तबतक तुमलोग यहीं टिको कि ज
तक मेरा आगमन होवे ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वातांजगामाशु पितरंस्वमुवाचह ।
धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनांपीडनेनच ॥ १२ ॥

ऐसा कहकर शीघ्रही गया व अपने पिता से
कि धर्म के नाश से व प्राणियों को दुःख देने से ॥ १

सुमहद्दृश्यते पापंकस्यैतत्कथ्यतांमम ।
पितापाहाथतन्माता नापुण्यमावयोरिह ॥ १३

अत्रिरुवाच ॥

पित्रादीननुपृच्छत्वं स्वकर्मोपार्जितंप्रति ॥१३॥

उनको मैं सदैव पोषण करता हूँ यह मेरे हृदय में स्थित है अत्रिजी बोले कि अपने इकट्ठा कियेहुये कर्म के विषय में तुम अपने पितादिकों से पूछो ॥ १३ ॥

यद्युष्मदर्थेक्रियते पापंतत्कस्यकथ्यताम्।
चेन्नतेकथयन्तिस्म मामृषाप्राणिनोवधीः ॥१४॥

कि तुमलोगों के लिये जो पातक किया जाता है वह किसको होता है यह कहिये यदि तुमसे उन्हों ने न कहा हो तो वृथा प्राणियों को मत मारिये ॥ १४ ॥

अग्निशर्मा उवाच ॥

नकदाचिन्मयातेतुसंपृष्टाईदृशंवचः।
युष्माकंवचसामेद्य प्रतिबोधःप्रवर्तते ॥ १५ ॥

अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे वचन को नहीं पूछा है आज तुमलोगों के वचन से मेरे ज्ञान वर्तमान है ॥ १५ ॥

गत्वापृच्छामितान् सर्वान्कस्यभावश्चकीदृशः।
यूयमत्रैवतिष्ठध्वं यावदागमनंमम ॥ १६ ॥

जाकर मैं अब उन सबों से पूछूंगा कि किसका कैसा अभिप्राय है तबतक तुमलोग यहीं टिको कि जब तक मेरा आगमन होवे ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वातांजगामाशु पितरंस्वमुवाचह।
धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनांपीडनेनच॥ १७॥

ऐसा कहकर शीघ्रही गया व अपने पिता से बोला कि धर्म के नाश से व प्राणियों को दुख देने से ॥ १७॥

सुमहद्दृश्यते पापंकस्यैतत्कथ्यतांमम।
पिताप्राहाथतन्माता नापुण्यमावयोरिह॥ १८॥

बड़ाभारी पाप देखपड़ता है यह किसको होताहै उसको मुझसे कहिये इसके अनन्तर पिता व उसकी माता ने कहा कि हमदोनों को इसमें पाप नहीं है॥ १८॥

त्वंजानासिकुरुषेयत्कृतंभोग्यंपुनस्त्वया।
तयोस्तद्वचनंश्रुत्वाभार्यांवचनमब्रवीत्॥ १९॥

जिसको करते हो उसको तुम जानो और किया हुआ कर्म तुमसे भोगने योग्य होगा उनके उस वचन को सुनकर स्त्री से वचन बोला॥ १९॥

तयाप्युक्तंनमेपापं पापमेतत्तवैवतु।
तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोहमितिसोब्रवीत्॥ २०॥

व उसने भी कहा कि मुझको पाप नहीं होगा किन्तु यह पातक तुमको होगा और उस वचन को पुत्र से कहा व उसने कहा कि मैं बालक हूँ॥ २०॥

तज्ज्ञात्वाभाषितन्तेषां चेष्टितंचैवतत्त्वतः।
नष्टोहमितिनिश्चित्य शरणंमेनपाप्मिनः॥ २१॥

उनके वचन व व्यवहार को यथार्थ जानकर मैं नष्ट होगया और तपस्वीलोग मेरी शरण (रक्षक) हैं यह मानताहुआ वह अग्निशर्मा ॥ २१ ॥

क्षिप्त्वाथलकुटंकृष्ण येनवैजन्तवोहताः।
प्रकीर्यकेशांस्त्वरितो ऋषीणामग्रतःस्थितः२२॥

उस दंडको पृथ्वी में फेंककर जिससे कि प्राणी मारेगये थे हे कृष्ण (व्यास) जी! बालों को फैलाकर शीघ्रतासंयुत होकर ऋषियों के आगे स्थित हुवा ॥ २२ ॥

प्रणम्यदण्डपातेन ततोवचनमब्रवीत्।
नमेमातानचपिता नभार्यानचमेसुतः ॥ २३ ॥

और गिरकर दंडप्रणाम कर तदनन्तर उसने वचन कहा कि न मेरे माता है न पिता है और न स्त्री है न पुत्र है ॥ २३ ॥

सर्वैस्तैःपरित्यक्तोहं भवतांशरणङ्गतः।
सुष्टूपदेशदानान्मां नरकात्त्रातुमर्हथ ॥ २४ ॥

उन सबों से छोड़ाहुआ मैं आपलोगों की शरण में प्राप्त हूँ तुमलोग उत्तम उपदेश के दानसे मेरी नरक से रक्षा करने के योग्य हो ॥ २४ ॥

एवंतंवादिनंदृष्ट्वा ऋषयोत्रिमथाब्रुवन्।
भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥ २५ ॥

इसप्रकार कहतेहुये उसको देखकर इसके अनन्तर ऋषियोंने अत्रिजी से कहा कि आपके वचन से इसको ज्ञान आगया ॥ २५ ॥

भवतायमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने।
तथेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमन्ध्यानंसमाचर ॥ २६॥

हे मुने! आपसे यह दया करने योग्य और तुम्हारा यह शिष्य होवै वैसाही होगा यह कहकर अत्रिजी उस अग्निशर्मा से बोले कि तुम इसका ध्यान करो ॥ २६॥

अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जंप्रणाशय।
संस्थितोवृक्षमूलेत्वं परांसिद्धिंगमिष्यसि॥ २७॥

और वृक्षकी जड़में भलीभांति बैठेहुये तुम इस ध्यान के योगसे पापकी राशिको नाश करो और परम सिद्धिको प्राप्त होवोगे ॥ २७॥

इत्युक्त्वातेययुःसर्वे सकामःसोपितत्रवै।
तद्ध्यानस्थोभवद्योगी वत्सराणित्रयोदश॥ २८॥

यह कह वे सब चलेगये और कामनासमेत वह योगी भी वहां तेरह वर्षतक उस ध्यानमें स्थितहुवा ॥ २८॥

निवृत्तास्तुयथातेन मुनयस्तत्पशुश्रुवुः।
उदीरितंध्वनिन्तेन वल्मीकेविस्मयान्विताः २९॥

और उस मार्ग से लौटेहुये उन मुनियोंने वल्मीकमें उससे कहेहुये शब्दको सुना व विस्मयमें संयुक्तहुये २९

ततस्तुदृष्ट्वाबल्मीकं काष्ठीभूतोरुशङ्कुभिः ।
तन्दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयोनयसंयुतम् ॥ ३० ॥

तदनन्तर उस बँबौरिको देखकर मुनियोंने दारुभूत कीलों के द्वारा उस नीतिसंयुत अग्निशर्मा को देखकर उठाया ॥ ३० ॥

नमश्चक्रेथतान्सर्वान्समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ।
तान्प्राहप्रणतोभूत्वा तपसादीप्ततेजसः ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर उस अग्निशर्मा मुनिने उन मुनिश्रेष्ठों को प्रणाम किया व प्रकट होकर तपस्यासे प्रकाशिततेजवाले उन मुनियों से कहा ॥ ३१ ॥

प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानंलब्धंमयाशुभम् ।
दीनोहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोहंपापकर्दमे ॥ ३२ ॥

कि आपलोगों की प्रसन्नतासे आज मैंने उत्तम ज्ञानको पाया और पातक के कीचड़में डूबाहुआ मैं दीन आप सबोंसे उधारा गयाहूं ॥ ३२ ॥

श्रुत्वातस्येतितद्वाक्यमूचुःपरमधार्मिकाः ।
वल्मीकेस्मिन्स्थितःपुत्र यतस्त्वंचैकचित्ततः ३३

उसके उस वचन को सुनकर परमधर्मवान् उन ऋषियोंने कहा कि हे पुत्र ! जिसलिये तुम एकचित्त से इस बँबोरिमें स्थित हुये हो ॥ ३३ ॥

वाल्मीकिरितितेनाम भुविख्यातंभविष्यति ।
इत्युक्त्वामुनयोजग्मुः स्वान्दिशंतपसान्विताः ३४

इसलिये वाल्मीकि ऐसा तुम्हारा नाम पृथ्वी में प्रसिद्धहोगा यह कहकर तपस्या से संयुत मुनिलोग अपनी दिशाको चलेगये ॥ ३४ ॥

गतेषुमुनिमुख्येषु वाल्मीकिस्तपतांवरः ।
कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम्॥३५॥

मुख्य मुनियों के जाने पर इसके अनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने कुशस्थली में आकर व महादेव जीको आराधकर ॥ ३५ ॥

तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रेकाव्यंमनोरमम् ।
रामायणञ्चयत्प्राहुःकथासुप्रथमांश्रितम्॥३६॥

उनसे कविता को पा[illegible] किया कि जिसको रामायण कह[illegible] हैं। प्रथम स्थित है ॥ ३६ ॥

ततःप्रभृतिदेवेशो वाल्मीकिश्वरसंज्ञकः ।
ख्यातोवन्त्यांततोव्यासकवित्वदायकोनृणाम३७

हे व्यासजी ! तब से लगाकर वाल्मीकेश्वरनामक देवेश अवन्तीमें प्रसिद्ध हुये और उसीकारण वे मनुष्यों को कवितादायक हैं ॥ ३७ ॥

देखिये कि जो तुमने अपने श्लोक में पांच व मत

आदमियों को पातक लगाया हिंसा करने में सो तुम्हारे श्लोक को सनत्कुमारजी ने खंडन करादिया व्यासजी के प्रति जो अकस्मात् किसी जीवको विना कारण मारता है तो उसीको पाप लगता है अन्य को नहीं और फिर देखिये कि प्रभासक्षेत्रखंड में महादेवपार्वती के संवादमें भी कहा है सो भी सुनो कि :—

दोहा ॥

तीरथ मूलस्थान में वाल्मीकि भे सिद्ध ।
दो सौ सत्तावने महं सोई कथा प्रसिद्ध ॥

ईश्वर उवाच ॥

ततोगच्छेन्महादेवि मूलस्थानमितिस्मृतम् ।
देविकायास्तुसामीप्ये भास्करंवारितस्करम् ॥१॥

महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मूलस्थान ऐसे कहेहुये तीर्थ के समीप जावै व देविकानदी के समीप जलको चुरानेवाले सूर्यनारायणको देखै ॥१॥

यत्रतेपेतपोघोरं वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ।
वाल्मीकिनामाविप्रर्षिर्यत्रसिद्धोमहामुनिः ॥ २ ॥

जहांपर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने भयंकर तप किया है व जहांपर वाल्मीकिनामक विप्रर्षि सिद्ध हुये हैं ॥२॥

यत्रसप्तर्षयोमुष्टास्तेनैवमुनिनाप्रिये ।
तस्यैवपश्चिमेभागे मरीचिप्रमुख्याद्विजाः ॥ ३ ॥

व हे प्रिये ! उसी के पश्चिमभाग में जहां उन्हीं मुनि ने मरीचि आदिक सप्तर्षि ब्राह्मणों को चोरी किया है ॥ ३ ॥

देव्युवाच ॥

कथंचसिद्धोबाल्मीकिः कथंचौर्यैकरोन्मनः ।
कथंसप्तर्षयोमुष्टा एतन्मेवदशङ्कर ॥ ४ ॥

देवीजी बोलीं कि हे शङ्करजी ! बाल्मीकिजी कैसे सिद्ध हुये हैं और उन्हों ने कैसे चोरी में मन किया व किसप्रकार सप्तर्षि मुष्ट (चोरित) हुये हैं इसको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच ॥

आसीत्पूर्वद्विजोदेवि नाम्नाख्यातःसमीमुखः ।
गार्हस्थ्येवर्त्तमानस्यतस्यपुत्रोव्यजायत ॥ ५ ॥

महादेवजी बोले कि देवि ! पुरातनसमय नाम से समीमुख ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ है गृहस्थधर्म में प्राप्त उस द्विजके पुत्र पैदा हुआ ॥ ५ ॥

वैशाखइतिनाम्नासौ रौद्रकर्माव्यजायत ।
मुक्त्वैकांगुरुशुश्रूषांनान्यत्किंचिदमौद्विजः॥ ६ ॥

व वैशाख ऐसा नामक वह भयंकर कर्म करनेवाला हुआ इस ब्राह्मण ने एक माता, पिता की सेवा को छोड़कर अन्य कुछ ॥ ६ ॥

अकरोच्छोभनंकर्म जन्मप्रभृतिनित्यशः।
अथकालेनमहतापितरौ तस्य तौ प्रिये ॥ ७॥

उत्तम कर्म को सदैव जन्म से लगाकर नहीं किया हे प्रिये ! इसके अनन्तर बहुतसमय के वाद उसके वे माता पिता ॥ ७॥

वार्द्धक्यभावमापन्नौ मर्त्यौभृशविह्वलौ।
सनित्यमटवींगत्वा मुष्ट्वाद्रव्याणि शक्तितः ॥ ८॥

वृद्धता में प्राप्तहुये व मरनेयोग्य वे अत्यन्तही विह्वल हुये और उसने नित्य वनको जाकर अपनी शक्तिसे द्रव्यको चुराकर ॥ ८॥

द्रव्यमादायपितरौ भार्यांचापि पुपोष च।
कस्यचित्त्वथकालस्य गच्छन्तस्तेनवैपथा ॥ ९॥

व द्रव्यको लेकर माता, पिता, व स्त्री को पोषण किया इसके उपरांत किसीसमय उसीमार्ग से जाते हुये ॥ ९॥

सप्तर्षयस्तदादृष्टास्तीर्थयात्रापरायणाः।
सततोयष्टिमुद्यम्य भर्त्सयन्परुषाक्षरैः ॥ १०॥
वाक्यैरुवाचतान्सर्वांस्तिष्ठध्वमितिभूरिशः।
अथतेमुनयःशान्ताःसमलोष्टाश्मकाञ्चनाः ११॥

तीर्थयात्रा में परायण सप्तर्षियों को उससमय

उसने देखा तदनन्तर दंडको उठाकर कठोर अक्षरों वाले वचनों से घुड़कतेहुये उसने सवों से वहुनहीं कहा कि खड़े हूजिये इस के अनन्तर ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले वे शांत मुनिलोग॥ १०।११॥

समाःशत्रौ च मित्रे च द्वेषरागविवर्जिताः।
अस्माभिर्दर्शनंचास्यसंभाष्यमृषिभिःसह॥१२॥

जो कि शत्रु व मित्र में समान थे और शत्रुता व स्नेह से रहित थे बोले कि हमलोगों ऋषियों के साथ इसका दर्शन व संभाषण॥ १२॥

संजातंविफलं मा स्यादित्युक्त्वातमुवाचह।

आङ्गिरा उवाच॥

भोभोतस्करमे वाक्यं शृणुष्वावहितःक्षणात्॥१३॥
आत्मनस्तुहितार्थाय सत्यञ्चैवप्रजल्पतः।
तववेश्मनि कस्तिष्ठेद्गोत्रवर्गोवदस्यमे॥ १४॥

हुआ है वह मत निष्फल होवे यह कहकर वाले उससे अंगिराजी बोले कि हे तस्कर! अपने हितके लिये सत्य कहते हुये मेरे वचन को सावधान होकर हर्ष से सुनो कि तुम्हारे घरमें कौन गोत्रवर्ग स्थित है इसको मुझसे कहिये॥ १३। १४॥

तस्कर उवाच॥

स्थानांमेपितरौ वृद्धौभार्य्याकापन्यवर्जिता।

एतादृशोह्यहञ्चैव पञ्चमोनास्तिवैमुने ॥ १५ ॥

तस्कर बोला कि हे मुने! मेरे वृद्ध मातापिता हैं व संतानहीन एक स्त्री है व ऐसा मैं हूं पांचवां कोई नहीं है ॥ १५ ॥

अङ्गिरा उवाच

गत्वापृच्छस्व तान्सर्वान् पुष्टान् पापार्जितैर्धनैः।
अहङ्करोमि पापानि सर्वेयूयंतुभक्षकाः ॥ १६ ॥

अङ्गराजी बोले कि पाप से इकट्ठा कियेहुये धनों से पालेहुये उनसबों से पूछिये कि मैं पापोंको करताहूं और तुमलोग सब खानेवाले हो ॥ १६ ॥

तत्पापम्भविताकस्य कथंयाति च मे लघु।
इत्युक्तस्तत्क्षणादेव जगामस्वगृहंततः ॥ १७ ॥

वह सब पाप किसको होगा और वह मेरा पातक किसप्रकार शीघ्रही जावेगा ऐसा कहाहुआ वह उसी क्षण अपने घरको गया तदनन्तर ॥ १७ ॥

ऋषीणांतत्रवाक्यानि पितरौपर्य्यपृच्छत।
तस्यतद्वचनं श्रुत्वा तौतुप्रत्यूचतुस्तदा ॥ १८ ॥

उसने वहां ऋषियों के वचनों को माता पिता से पूंछा उसके उसवचनको सुनकर उससमय उन दोनों ने प्रत्युत्तर (जवाब) दिया ॥ १८ ॥

पितरावूचतुः ॥

एकःपापानिकुरुते फलं भुङ्क्तेमहाजनः।
भोक्तारोविप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥१९॥

माता पिता बोले कि एक पापों को करता है महाजन फलको भोगता है हे विप्र! भोगनेवाले छूट जाते हैं और कर्त्ता दोष से लिप्त होता है॥ १९॥

यःकरोत्यशुभंकर्म कुटुम्बार्थंतुमन्दधीः।
आत्मानवल्लभस्तस्यनूनं पुंसस्तुपापिनः॥२०॥

जो मंदबुद्धि पुरुष कुटुम्बके लिये अशुभ कर्म करता है उस पापी पुरुष को निश्चयकर आत्मा नहीं प्रिय है॥ २०॥

ईश्वर उवाच॥

तयोस्तुवचनंश्रुत्वा पुनर्भीतमनाभवत्।
तयोस्तुसन्निधौगत्वा पितरौप्रत्यभाषत॥२१॥

महादेवजी बोले कि उनदोनों के वचन को सुनकर फिर वह भीतमनवाला हुआ और उनदोनों के समीप जाकर वह माता पिता से बोला॥ २१॥

युवाभ्यांहितमेवाहं यत्करोम्यशुभंक्वचित्।
तदंशोभुज्यतेकिंचिद्युवाभ्यांनाहितेयनाम॥२२॥

कि तुम दोनों के हितके लिये मैं जो कहीं से अशुभ

कर्म करता हूं उसका कुछ भाग तुमसे भोग किया जाताहै उसको कहिये ॥ २२ ॥

पितरावूचतुः ॥

पूर्वेवयसिपुत्रत्वं पितृभ्याम्बाल्यएवहि।
उत्तरेतुवयंपाल्याः सम्यक्पुत्रत्वयापुनः॥ २३ ॥

माता पिता बोले कि हे पुत्र! पहली अवस्था में तुम माता पिता से पालनेयोग्य हुये हो व हे पुत्र! पिछलीअवस्था में फिर तुंमसे हमलोग भलीभांति पालनेयोग्य हैं॥ २३ ॥

इतरेतरधर्मोऽयं निर्दिष्टःपद्मयोनिना।
आवाभ्यांयत्कृतंकर्म्म युष्मदर्थंशुभाशुभम्॥२४॥

यह अन्योन्यधर्म कमलयोनि (ब्रह्मा) से बतलाया गया है हमदोनों ने तुम्हारे लिये जिस शुभाशुभकर्म को किया है॥ २४ ॥

भोक्ष्यामोवयमेवेह तत्सर्वंनात्रसंशयः।
अथ त्वमपियद्वत्स प्रकरोषिशुभाशुभम्॥ २५ ॥

उस सब को हमहीं भोग करैंगे इसमें सन्देह नहीं है व हे वत्स! तुम भी जो शुभाशुभ कर्मको करोगे॥२५॥

कर्म्मणस्तस्यभोक्तात्वं भविष्यसि न संशयः।
तस्मादेवप्रकर्त्तव्यं शुभंकर्मविपश्चिता॥ २६ ॥

उस कर्म को भोगनेवाले तुम होगे इसमें सन्देह नहीं है उसीकारण विद्वान् को उत्तम कर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥

चौर्य्यंवाथकृषिर्वाथ कुसीदंवाथपुत्रक ।
वाणिज्यमथवाप्रेष्यं कृत्वास्माकंचभोजनम् ॥ २७ ॥

हे पुत्र ! चोरी या खेती अथवा ब्याज व रोजगार और प्रेष्यता करके हमको भोजन ॥ २७ ॥

अहर्निशंत्वयादेयं नदोषोस्मासुपुत्रक ।
ताभ्यांतद्वचनंश्रुत्वा ततोभार्यामभाषत ॥ २८ ॥

दिनरात तुमको देना चाहिये हे पुत्र ! हमलोगों में वह दोष नहीं है उनदोनों से उस वचन को सुनकर तदनन्तर उसने स्त्री से कहा ॥ २८ ॥

तदेववाक्यमभवद्यत्प्रोक्तंगुरुभिःपुरा ।
ततोवैराग्यमापन्नो वैशाखोमुनिसत्तमः ॥ २९ ॥

और पहले गुरुओं (श्वशुरों) से जो कहागया था उसी वचन को उसने भी कहा तदनन्तर मुनि वैराग्य को प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥

गर्हयन्नेवचात्मानं भूयोभूयस्सुदुःखितः ।
धिग्मांदुष्कृतकर्माणं पापकर्मरतंसदा ॥ ३० ॥

व बार बार अपनी निन्दा करता हुआ वह अत्यन्त

दुःखी हुआ कि सदैव पाप कर्म में लगेहुये मुझ दुष्कृत कर्मवाले को धिक्कारहै ॥ ३० ॥

विवेकेनपरित्यक्तः सत्सङ्गेनविवर्जितः ।
सकरोतिनरःपापं न यस्सेवति पण्डितम् ॥ ३१ ॥

जो पण्डितको नहीं सेवता है वही विवेकसे रहित व सत्सङ्गसे वर्जित पुरुष पापको करताहै ॥ ३१ ॥

नचात्मावल्लभस्तस्य एतन्मेवर्त्ततेहृदि ।
एवंविकल्पविद्धस्सन् गत्वासन्नृषिसन्निधौ ३२ ॥

और उसको आत्मा (जीवात्मा) नहीं प्रियहै यह मेरे हृदयमें वर्त्तमान होता है इसप्रकार विकल्प से विरुद्ध होताहुवा वह ऋषियोंके समीप जाकर ॥ ३२ ॥

उवाचश्लक्ष्णयावाचा गम्यतामितिसादरम् ।
ऋषे प्रगृह्यतामेष तथैवचकमण्डलु ॥ ३३ ॥

नम्र वचन से आदरसमेत यह बोला कि जाइये व हे ऋषे! वैसेही इस कमण्डलुको लीजिये ॥ ३३ ॥

वल्कलाजिनवासांसि मृगचर्माण्यशेषतः ।
क्षम्यतामपराधोमे दीनस्यकृपणस्यच ॥ ३४ ॥

सत्सङ्गेनविमुक्तस्य मूर्खस्यमुनिसत्तमाः ।
अद्यप्रभृतिनिर्वृत्तःकर्मणोस्माद्विगर्हितात् ॥ ३५ ॥

और वल्कल व मृगचर्म के वसन तथा सब मृग-

चर्मों को लीजिये व हे मुनिश्रेष्ठो ! सत्संग से क्षमं हुये मुझ दीन मूर्ख व कृपण का अपराध क्षमा कीजिये आजसे लगाकर में इस निन्दित कर्म से निवृत्त हो गया ॥ ३४ । ३५ ॥

रौद्रस्यतुनृशंसस्य साधुभिर्गर्हितस्यच ।
तस्मात्कथयतास्माकंनिष्कृतिंचास्यकर्मण· ३६॥

इसलिये भयंकर क्रूर वा साधुओं से निन्दित इस कर्म के प्रायश्चित्त को मुझसे कहिये ॥ ३६ ॥

येनयुष्मत्प्रसादेन पापान्मोक्षमहंव्रजे ।
उपवासोथमन्त्रो वा नियमोवाथसंयमः ॥ ३७॥

कि जिससे तुमलोगों की प्रसन्नता से मैं पातक से मोक्ष को प्राप्त होऊं उपास, मंत्र, नियम या संयम हो उसको कहिये ॥ ३७ ॥

ऋषय ऊचुः ॥

साधुपृष्टंत्वयावत्स तत्त्वमेकमनाःशृणु ।
सुगुह्यंकीर्तयिष्यामित्वयाख्येयन्नकस्यचित् ३८॥

ऋषिलोग बोले कि हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा पूछा उसको एक मनवाले होकर सुनिये मैं अत्यन्त गुप्त भी उस चरित्र को कहूंगा और तुमको किसी से न कहना चाहिये ॥ ३८ ॥

तेन स्तेयस्यपापात्त्वं मोक्षंप्राप्स्यसि निश्चितम्।
उद्घोष्य च त्वयाकीर्त्यो मन्त्रोयंचतुरक्षरः ३९॥

उससे तुम चोरी के पाप से निश्चयकर मोक्ष को प्राप्त होगे और तुमको इस चार अक्षरोंवाले मंत्रको जपना चाहिये॥ ३९॥

सर्वपापहरोनृणां स्वर्गमोक्षफलप्रदः।
सतैश्चमुनिभिःप्रोक्तो वैशाखोमुनिसत्तमः॥४०॥

जोकि मनुष्यों के सब पापों का हरनेवाला व स्वर्ग तथा मोक्ष के फलका देने वाला है उन मुनियों से कहे हुये वे मुनिश्रेष्ठ वैशाखजी॥ ४०॥

तस्थौजाप्यपरोनित्यंगतास्तेमुनिपुङ्गवाः।
तस्यैवंजपतोदेवि देविकायास्तटेशुभे॥ ४१॥

नित्यही जपमें परायण होकर स्थित हुये और वे मुनिश्रेष्ठ चलेगये हे देवि! देविका नदी के उत्तम किनारे पै इसप्रकार जपते हुये॥ ४१॥

अनिशंगुरुभक्तस्य समाधिस्समपद्यत।
क्षुत्पिपासातदानष्टा शुद्धिमापकलेवरः॥ ४२॥

निरन्तर गुरुभक्त मुनिके समाधि प्राप्त हुई उस समय क्षुधा व प्यास नष्ट होगई और शरीर शुद्धिको प्राप्त हुआ॥ ४२॥

मन्त्रेतीर्थेद्विजेदेवे दैवज्ञेभेषजेगुरौ।
यादृशीभावनायस्य सिद्धिर्भवतितादृशी ॥४३॥

मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, पंडित औषध व गुरुमें जिसकी जैसी भावना होती है वैसी सिद्ध होती है ॥ ४३ ॥

निर्मलोयंस्वभावेन परमात्मातथाविधः।
उपाधिसङ्गमासाद्य विकारस्स्फाटिकोयथा॥४४॥

यह स्वभाव से निर्मल परमात्मा वैसाही है कि जिसप्रकार उपाधिसङ्गको प्राप्त होकर स्फटिक मणि विकार होता है ॥ ४४ ॥

यथाचभ्रामरीवन्ध्या ध्यायेज्जीवमनन्यधीः॥४५॥

व जिसप्रकार वंध्याभ्रमरी अनन्यबुद्धि होकर जीव को ध्यान करती है ॥ ४५ ॥

स्वस्थानेस्थापितंध्यायेद् भ्रामरीध्यानसंयुता।
नतुतद्ध्यानसंयुक्तो जीवोभवतितादृशः ॥ ४६ ॥

और ध्यान से संयुत भ्रमरी अपने स्थान में स्थित जीव को ध्यान करती है और उसके ध्यान से संयुत जीव वैसाही निश्चयकर होजाता है ॥ ४६ ॥

अन्यजात्युद्भवंचापि तथानिर्दर्शनं मताम।
आद्रियोगुरुणायश्च विकल्पंपरिवर्जयेत् ॥४७॥

और अन्य जाति से उत्पन्न व सज्जनों का [illegible]

तथा जो गुरुसे बतलाया गया है वह यदि विकल्प को प्राप्त होवै ॥ ४७ ॥

नासौसिद्धिमवाप्नोति मन्दभाग्योयथाविधि ।
एवंवर्षसहस्राणि समतीतानिभूरिशः ॥ ४८ ॥
तस्यजाप्यपरस्यैवममृतत्वंगतस्यच ।
ततःकालक्रमेणैव वल्मीकेन स वेष्टितः ॥ ४९ ॥

तो वह मन्दभाग्य मनुष्य विधिपूर्वक सिद्धिको नहीं प्राप्त होताहै इसप्रकार जपमें परायण व अमृतत्व को प्राप्त उसके बहुतसे हज़ारों वर्ष व्यतीतहुये तदनन्तर समय के क्रमसे वह बँबौरिसे घिरगया ॥ ४८ । ४९ ॥

तेनासौसर्वतोव्याप्तो वल्मीकस्तंस्तरोधवै ।
कस्यचित्त्वथकालस्य मुनयस्तेसमागताः॥ ५०॥

और उससे यह सबओर से व्याप्त होगया व उस बँबौरिने उस मुनि को आच्छादन करलिया ॥ ५० ॥

तम्प्रदेशन्तुसम्प्रेक्ष्य सहास्यमितरेतरम् ।
ऊचुःपरस्परंसर्वे हत्वाचैवकरैःकरम् ॥ ५१ ॥

इसके अनन्तर किसीसमय वे मुनिलोग आये व उस स्थान को देखकर आपस में हास्यसमेत सब मुनियोंने हाथोंसे हाथ मारकर परस्पर कहा ॥ ५१ ॥

ऋषय ऊचुः ॥

अत्रासीतस्करःप्राप्तो वैशाखोदारुणाकृतिः।
येनसर्वेवयंमुष्टा अस्मिन्स्थानेसमागताः ॥५२॥

ऋषिलोग बोले कि यहां भयङ्कर आकारवाला वैशाख चोर प्राप्त हुआ था कि जिसने इस स्थान में आयेहुये हमलोगोंकी चोरी किया था ॥ ५२ ॥

एवंसञ्जल्पमानास्ते शुश्रुवुश्शब्दमुत्तम्।
वल्मीकमध्यतोव्यक्तंततस्तेकौतुकान्विताः॥५३॥

इसप्रकार कहते हुये उन्होंने वंबीरिके बीचमें प्रगट उत्तम शब्दको सुना तदनन्तर कौतुकसेसंयुत उन ॥५३॥

अखनंस्तत्रवल्मीकं ऋषयःपर्वतोपमम्।
अथतेददृशुस्तत्र वैशाखंमुनिसत्तमाः ॥५४॥

ऋषियोंने वहां पर्वतके समान वंबीरिको खोदा उस के अनन्तर उन मुनिश्रेष्ठोंने वहां वैशाखको देखा ॥५४॥

पठन्तमसकृन्मन्त्रं तमेवचतुरक्षरम्।
तंसमाधिगतंज्ञात्वा संयमैर्योगमस्कृतैः ॥ ५५ ॥

व बारम्बार उसी चतुरक्षर मन्त्र को पढ़ते हुये उस को योग से सत्कार कियेहुये संयमों से समाधि में प्राप्त जानकर ॥ ५५ ॥

ननन्दुस्सर्वमुनयोविचित्रमस्त्रमत्रकोभवत्।

ततोऽब्रवीदृषीन्सर्वान् किमर्थं खन्यतेमही ॥ ५६ ॥

सबओर से ब्राह्मण प्रसन्न हुये और वह वहां प्रकट हुआ तदनन्तर सब ऋषियों से बोला कि किसलिये पृथ्वी खोदीजाती है ॥ ५६ ॥

गम्यतांतीर्थयात्रायां सर्वंत्यक्तंमयाद्विजाः ॥५७॥

हे ब्राह्मणो ! तीर्थयात्रा के लिये जाइये मैंने सब कर्म को छोड़ दिया ॥ ५७ ॥

वाच्यौमेपितरौगत्वा तथाभार्याद्विजोत्तमाः ।
सर्वसङ्गपरित्यक्तो वैशाखस्समपद्यत ॥ ५८ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मेरे माता, पिता व स्त्री से कहियेगा कि सब संगोंको छोड़कर वैशाख प्राप्त हुआहै ॥ ५८ ॥

दर्शनंकाङ्क्षतेनैव भवद्भिस्तुयथापुरा ।

ऋषय ऊचुः ॥

बहुवर्षाण्यतीतानि तवात्रवसतोमुने ॥ ५९ ॥

और पहिले की नाईं वह आपलोगों के साथ दर्शन नहीं चाहताहै ऋषि बोले कि हे मुने ! यहांपर बसतेहुये तुमको बहुत वर्ष बीत गयेहैं ॥ ५९ ॥

सर्वेतेनिधनंप्राप्ता येचान्येचकुटुम्बिनः ।
वयंचिरात्समायाताःस्थानेस्मिन्मुनिसत्तम॥६०॥

वे सब और जो अन्य कुटुम्बी थे वे नाश को प्राप्त

हुये हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोग बहुत दिनों से इसस्थान में आये हैं ॥ ६० ॥

सत्वंसिद्धिमनुप्राप्तो मन्त्रादस्मादसंशयम्।
यस्मात्त्वंमन्त्रमेकाग्रोध्यायन्वल्मीकमाश्रित:॥६१॥

सो तुम इस मंत्रसे निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त हो जिसलिये एकाग्र होकर मंत्र को ध्यान करते तुम बल्मीक (बँबौरि) में आश्रित हुये ॥ ६१ ॥

तस्माद्वाल्मीकिनामात्वंभविष्यसिमहीतले।
स्वच्छन्दाभारतीदेवीजिह्वाग्रेचभविष्यति॥६२॥

इसलिये तुम भूतल में वाल्मीकिनामक होगे और जिह्वाके अग्रभागमें स्वच्छन्द सरस्वती देवी होगी ॥

कृत्वारामायणंकाव्यंततोमोक्षंगमिष्यति॥६३॥

और रामायण काव्य कर तदनन्तर मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ६३ ॥

वैशाम्ब उवाच ॥

गृह्यतांद्विजशार्दूल आत्मनोगुरुदक्षिणा।
येनाहमनृणोभूत्वा करोमिसुमहत्तप:॥६४॥

वैशाम्ब बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अपनी गुरुदक्षिणा को ग्रहण कीजिये कि जिससे मैं उऋण होकर बड़ा तप करूं ॥ ६४ ॥

ऋषय ऊचुः ॥

एषातेदक्षिणाविप्र यत्त्वंसिद्धिमुपागतः ।
सर्वकामसमृद्धात्मा कृतकृत्यावयम्मुने ॥ ६५ ॥

ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! तुम्हारी यही गुरुदक्षिणा है कि जो तुम सिद्धिको प्राप्तहुये हो व हे मुने ! सब कामनाओंसे समृद्धात्मा हुये हो और हम लोग कृतार्थ होगये ॥ ६५ ॥

वरंवरयभूयस्त्वं यत्तेमनसिवर्त्तते ।

वाल्मीकिरुवाच ॥

भवन्तोयदितुष्टामेयदिदेयोवरोमम ॥ ६६ ॥

तुम फिर वरदान को मांगो जो तुम्हारे मनमें वर्तमानहो वाल्मीकिजी बोले कि आपलोग यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहों और यदि मुझको वरदेने योग्यहो ६६॥

कथ्यतांतर्हिमेशीघ्रं कोदेवोह्यत्रसंस्थितः ।
देविकायास्तटेरम्ये सर्वकामफलप्रदः ॥ ६७ ॥

तो मुझ से शीघ्रही कहिये कि यहां देविकानदी के सुन्दरतट पै सब कामनाओं के फलका देनेवाला कौन देवता स्थित है ॥ ६७ ॥

ऋषय ऊचुः ॥

शृणुष्वैकमनाविप्र योदेवश्चात्रसंस्थितः ।

पश्यवृक्षमिमंविप्र बहुशाखाप्रविस्तरम् ॥ ६८ ॥

ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! एकमनाये होकर सुनिये कि यहां जो देवता स्थित है हे विप्रजी ! बहुतशाखाओंके विस्तारवाले इसवृक्षको देखिये ६८ ॥

अस्यमूलेस्थितस्सूर्यः कल्पादौब्रह्मणोंशजः ।
तमाराधयतत्त्वेन अस्यस्थानस्यदैवतम् ॥ ६९ ॥

कल्प के आदिसे ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न सूर्यनारायणजी इसके मूल (जड़) में स्थित हैं इस स्थान के देवता उनसूर्यनारायणको यथार्थ आराधन कीजिये ६९ ॥

सूर्यक्षेत्रंसमाख्यातमिदंगव्यूतिमात्रकम् ।
अत्रस्थानेस्थितायेपि तेषांस्वर्गोध्रुवंभवेत् ॥ ७० ॥

दो कोस भर यह स्थान सूर्यक्षेत्र कहागया है इस स्थान में जो स्थितहैं उनको निश्चयकर स्वर्ग होताहै ७० ॥

तेषांतद्वचनंश्रुत्वासौ तपसाराधयन्नितम् ।
ततस्तुष्टोदिवानाथोवरं ब्रूहीतिमब्रवीत् ॥ ७१ ॥

उनके उस वचन को सुनकर उसने उन सूर्यनारायणको आराधन किया तदनन्तर प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उससे कहा कि वरदान को मांगिये ॥ ७१ ॥

विप्र उवाच ॥

अत्रतत्रमुनिदेवेश स्वल्पस्थानंमतिस्थितम् ।

उदुम्बर आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिनमें हमारी प्रीति है अब जो २ शाक हमको प्रिय हैं सो श्रवण करो बथुवा, कुमुदिनी, चौलाई, पालक, मरसा ये शाक उत्तम हैं इनकी नैवेद्य से हम प्रसन्न होतेहैं और अन्न में चावल, साठी, वासमती, मूँग, मोठ, उड़द, कुलथी, तिल, यव, गेहूँ, ये अन्न हमको अतिप्रिय हैं और गोरसों में गौका अथवा बकरी का तथा भैंसका दही दूध घृत उत्तम होता है इन्हों के अर्पण से अधिक हमारी प्रसन्नता है अब हे धरणि ! जो २ उत्तम और भक्ष्य पशुवों के मांसहैं सो २ श्रवण कीजिये सब से उत्तम मृगमांस फिर छाग शशा ये हमको अतिप्रिय हैं और जिन मांसों से यज्ञ होती है वेही मांस हमारी नैवेद्य में चाहिये। और मांसों में महिषमांस और पशुके पृष्ठका मांस, गुदाका मांस ये महानिंद्य हैं उन्हें हमारी नैवेद्य में कभी भी न देवे और हे धरणि ! जो पवित्र भी जीव हैं परन्तु वेदमंत्र से उनका प्रोक्षण न हुआ हो अथवा रोगी हों वा स्वयंमृत हों वा उनके पैरों का मांसहो वो सदा वर्जित करनाचाहिये। अब हे धरणि ! जो २ उत्तम पक्षी हैं और जिन पक्षियों के मांस में हमारी प्रीति है सो २ श्रवण करो कुरर और कुक्कुट, जलकुक्कुट, लावा, वहरी, बटेर, कपोत, तित्तिर, वेणु के चटक, क्षारिक, पचकोणा आदि पक्षियों का मांस उत्तम होताहै ये सब हमारी नैवेद्य के योग्य हैं

पुतरा बनाकर मंत्रोंद्वारा सजीव करता है फिर उसको सजीव करके अग्नि में दग्ध करता है तो उसको प्रायश्चित्त लगताहै फिर दशगात्र प्रेतक्रिया करि और ग्यारहें दिन शय्यादान करि शुद्ध होताहै और बारहें दिन सापिंडन करि उसको पितरों में मिलाकर और गयाश्राद्धकरि सात पीढ़ी के पितरों को और हित मित्रों सहित स्वर्ग को पहुँचाता है वही मनुष्य कि जिसने नारायणबलि किया है वही शख्स अब अपने परलोक के वास्ते यज्ञादिक कर्म करैगा तो अवश्यही बलिदान करैगा सो यज्ञका पशु उत्तम गतिको प्राप्त होताहै याने स्वर्गवास करता है फिर मोक्षको प्राप्त होताहै आवागमन से रहित होजाता है कि जिसतरहसे नारायणबलि करने से स्वर्ग और मोक्ष होता है दोनों क्रिया बराबर हैं इसीवास्ते वेदपाठीलोग बलिदान करते हैं तो उसमें जो कोई दोष लगावैगा तो वह मनुष्य अवश्यही नरक में जायगा देखिये कि श्रीविष्णु वाराहजी ने पृथ्वी से कहा है कि हे धरणि! जो तू मुझसे नैवेद्य के विषय में पूछती है तो तू सावधान होकर श्रवण कर वाराहजीने कहा कि हे धरिणि! अब हम नैवेद्यवर्णन करते हैं सो सावधान हो श्रवणकरो हमारे संतोष के लिये सब पदार्थ हैं जो कोई भक्तजन हम को भक्ति से निवेदन करते हैं सोई हम प्रीति से अंगीकार करते हैं दूध, दही, घृत, सप्तधान्य, शाक, मधु,

उदुम्बर आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिनमें हमारी प्रीति है अब जो २ शाक हमको प्रिय हैं सो श्रवण करो वथुवा, कुमुदिनी, चौलाई, पालक, मरसा ये शाक उत्तम हैं इनकी नैवेद्य से हम प्रसन्न होतेहैं और अन्न में चावल, साठी, वासमती, मूँग, मोठ, उड़द, कुलथी, तिल, यव, गेहूँ, ये अन्न हमको अतिप्रिय हैं और गोरसों में गौका अथवा वकरी का तथा भैंसका दही दूध घृत उत्तम होता है इन्हों के अर्प्पण से अधिक हमारी प्रसन्नता है अब हे धराणि ! जो २ उत्तम और भक्ष्य पशुवों के मांसहैं सो २ श्रवण कीजिये सब से उत्तम मृगमांस फिर छाग शशा ये हमको अतिप्रिय हैं और जिन मांसों से यज्ञ होती है वेही मांस हमारी नैवेद्य में चाहिये। और मांसों में महिषमांस और पशुके पृष्ठका मांस, गुदाका मांस ये महानिंद्य हैं उन्हें हमारी नैवेद्य में कभी भी न देवे और हे धराणि ! जो पवित्र भी जीव हैं परन्तु वेदमंत्र से उनका प्रोक्षण न हुआ हो अथवा रोगी हों वा स्वयंमृतहों वा उनके पैरों का मांसहो वो सदा वर्जित करनाचाहिये। अब हे धराणि ! जो २ उत्तम पक्षी हैं और जिन पक्षियों के मांस में हमारी प्रीति है सो २ श्रवण करो कुरर और कुक्कुट, जलकुक्कुट, लावा, वहरी, वटेर, कपोत, तित्तिर, देशु के चटक, क्षारिक, पचकोणा आदि पक्षियों का मांस उत्तम होताहै ये सव हमारी नैवेद्य के योग्य हैं

हे धरणि ! हमारे वचन को प्रमाणकर हमारी प्रीति के लिये इन का मांस विधिपूर्वक अर्पण जो मनुष्य करते हैं वे सब पापों से मुक्तहोकर सिद्धगति को याने उत्तम गतिको प्राप्त होतेहैं और काम, क्रोध, हर्ष, मोह मेरेही रूपहें और मनुष्य जिस श्रेष्ठ कर्मसे सुन्दर स्थान को प्राप्तहोतेहैं वे भी मेरेहीरूपहैं औरसत्प्रदान उग्र, तप और सब जीवोंमें अहिंसा मेरे शरीर में विचारनेवाले देहधारीयों के लिये मेरेही विधानसे रचेहुयेहैं और मुझ से ज्ञानके लब्धि को प्राप्तहो जीव कामनाओं की चेष्टा नहींकरतेहैं बल्कि सम्पूर्ण वेदों को और धर्मशास्त्र को पढ़ेहुये अनेकप्रकारकी यज्ञोंद्वारा मेरी पूजाकरते हैं और प्रसादको जो मनुष्य भक्षणकरते हैं और क्रोध कोजीत-नेवाले नियतात्मा द्विजाति मुझको प्राप्तहोते हैं और दुष्कर्म करनेवाले वा निन्दाकरनेवाले मुझको नहीं प्राप्त होसके ॥ इसीलिये जो हमारी प्रसन्नता चाहै तो अप-राधबुद्धिको त्याग हमारी प्रीतिके निमित्त इन पदार्थों को हमारे लिये निवेदनकरै ॥ इति वाराहपुराणे ॥

इति श्रीमाधवद्विवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य कुलोचितधर्मशिक्षायां अतिंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथत्रयोविंशोऽध्यायः ॥

यह तो हमने वाराहजी का प्रमाण दिया है और फिर भी लुब्धक और मतंगऋषिका संवाद वर्णन करते हैं कि श्रीवाराहजी बोले कि हे धरणि ! प्रथम कथा में जो राजा काश्मीराधिपति वसुके तप सिद्ध होने पर शरीर से एक व्याध उत्पन्न हुआ अब उसका सारा वृत्तांत सुनो कि व्याधने उसी शरीर से चार हजार वर्ष तपस्या किया अंत में निजशरीर छोड़ जनकपुर में व्याधपुत्र होके जन्म लिया वहां पर कुटुम्बपोषण के निमित्त नानाप्रकार के मृग आदि जीवों को मारके घर में लयाय सब विधि होम अतिथिपूजन पितृश्राद्ध कर यथाभाग देवतों का नैवेद्य लगाकरके कुटुंबको देकर के फिर आप भोजन करता भया इसीप्रकार बहुत काल बीतनेपर एक पुत्र और कन्या होती भई तिसका नाम अर्जुनक भया सो पुत्र मुनिकी तुल्य अतिविवेकी सत्कर्मरत होताभया और कन्याका अर्जुनकी नाम रक्खा और जब कन्या वरके योग्य हुई तब कन्या को किसी को देने के विचार में साथ कन्या को लेचला घूमते घूमते गयाक्षेत्र में पहुंच मतंगनाम ऋषिके आश्रम में आयकर वहांपर ऋषिका पुत्र प्रसन्नामक देखकर बहुत प्रसन्नहो कन्या योग्य वर मान मतंगजी से प्रार्थना किया कि हे महाराज ! यह मेरी वांछा है

जो कन्यारत्न मेरी धर्म्मभार्य्या से उत्पन्न भई है और सर्व सद्गुणसम्पन्न है इसलिये आपके पुत्रको मैं कन्यारत्न दिया चाहताहूं सो कृपाकरिके मेरी प्रार्थना को अंगीकार कीजिये अर्जुनकी नाम कन्या को आपकी आज्ञा से प्रसन्न ऋषि स्वीकार करैं इनके योग्य है यह व्याधकी विनय और वचनको सुनकर मतंगजी बोले कि हमारा पुत्र यह प्रसन्न सर्वगुणयुक्त महान् पण्डित है सो हमारी आज्ञा से तुम्हारी कन्या का पाणिग्रहण यथाविधि करै यह ऋषिकी वाणी को सुनकर बड़े हर्ष से व्याधने निजकन्याको वेदविधि से मतंगपुत्र प्रसन्न ऋषिको दे ऋषि से विदाहो अपने घर आया और व्याधकी कन्या अर्ज्जुनकी अपने सशुर सासुकी सेवा तथा निज अपने पतिकी सेवा भलीप्रकार से करती भई फिर किसीसमय में अर्ज्जुनकी सासु बोली कि तू तो व्याध जीवहिंसक की कन्या है तुझको ऋषियों की सेवा तप पतिधर्म क्या मालूम है तू तो मूर्खसी दिखलाई देती है यह अपने को निरपराध सासु के मुख से निजधिक्कार सुनके रोती रोती निजपिता के समीप जायकर आदि से वृत्तान्त कहसुनाया और खड़ी चुप होरही वहां व्याध कन्याका दुःख देख दुःखी होकर क्रोध करके मतंगके आश्रम में आया और मतंग ऋषि निज सम्बन्धी को देख बड़े आदर से उठ पाद्य अर्घ दे आसन पर बैठायकर कुशल प्रश्न पूंछा और यहांपर

का आगमन का कारण पूंछतेभये व्याध ऋषि का सत्कार स्वीकारकर बोला कि हमको क्षुधा दुःख देरही है इसलिये शीघ्र हमको भोजन दो यह सुनकर मतंगजी बोले कि हे तपोधन! हमारे घर में गेहूँ यवकी रोटी और उत्तम भात और (मूँग माषकी दाल) और अनेकविधि से भोजन तैयार हैं इच्छापूर्वक भोजनकरो तब तो व्याध बोला कि तुम्हारे जो गेहूँ और यव धान ये तैयार (सिद्ध) हैं ये तौ सब जीवमय दिखाते हैं इसलिये हमभोजन नहीं करते यह कह व्याध वहां से उठचला वाराहजी कहते हैं कि हे धरणि! निजसम्बन्धीको जाते देख मतंगमुनि बोले हे सम्बन्धिन्! अपनी इच्छासे भोजन मांगि के और तैयार भोजन छोड़ हमसे वेविदा भये आपका उठके जाना यह क्या उचित बातहै और भोजन क्यों नहीं करते यह मतंग ऋषिका वचन सुनि के व्याध बोला कि आप हजारों करोड़ों जीव नित्य हिंसा करतेहो ऐसे महापापी का कौन अन्न खा सक्ता है जो चैतन्यहीन अन्न हो सो मुझे दीजिये और हम प्रीति से खावेंगे विचारो कि हम वन से एक जीव नित्यमार के अपने घरको ल्यातेथे और विधि से संस्कार कर अग्निमें होमकरके और देव, पितृ, श्राद्ध और अतिथिको भोजन करायकर और सेवाकर जो शेष रहता है उसको सारे कुटुम्बको यथाभाग बांटि सबके पश्चात् हम भोजन करते हैं आप घरमें कोटिन्ह जीव

नित्य वधकर सब कुटुम्ब मिलि खाजाते हो यह अधर्म देखकरके तुम्हारा अन्न अभक्ष्य मानकर हम जाते हैं और यह विचारो शास्त्र में यह लिखा है कि ब्रह्माजी ने ओषधि और सम्पूर्ण वृक्ष और मृगादि सम्पूर्ण यज्ञ निमित्त उत्पन्न किये हैं यज्ञ पांचप्रकार का है १ देव २ सोम ३ पैत्र ४ मानव ५ ब्राह्म इन यज्ञोंको कर यज्ञ शेष जो भोजन करते हैं वो शुद्धिगति को जाते हैं अन्यथा एक २ अन्न पक्षी पशु के तुल्य है यह महामांस दाता, भोक्ता, इनदोनों को परमगति देती है और हे मतंगजी ! हमने अपनी कन्या को तुम्हारे पुत्रको दिया सो तुहारी स्त्री वारम्वार हमारी कन्या को जीवघाती की कन्या कहती है इसलिये हम तुम्हारे धर्म और आचार और पितृदेव अतिथि पूजा देखने को आये थे सो कुछ देखा नहीं। हमारा श्राद्ध का समय और अतिथि पूजन का समय (अवसर) है इसनिमित्त हम जाते हैं वहां जाय निज नित्य क्रियाकर्म समाप्त करके पश्चात् भोजन करेंगे यह कहकर फिर व्याध बोला कि हम व्याध जीवघाती आप पुण्यात्मा हमारी कन्या आप के पुत्र को व्याही गई सो तुम प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो यह कह शाप देताभया कि आज से पुत्र भी अपनी मातु का विश्वास न करैगा पुत्रवधू का विश्वास कभी न करेगी परस्पर कौटिल्य से रहेंगी यह कहकर व्याध अपने निज घरपर जायकर नित्यकर्म देव, पितर,

अतिथिपूजनकर भोजन करताभया इसीप्रकार बहुत कालतक घरमें रहकर अन्त में अर्जुन नाम पुत्रको राज्य दे विषयवासना छोड़ पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाय नारायण को तप करके स्तोत्र पाठ से प्रसन्न करता भया॥

अथ स्तोत्रमारभ्यते॥

नमामिविष्णुंत्रिदशारिनाशं
विशालवक्षस्स्थलसंश्रितश्रियम्।
सुशासनंनीतिमतांपरायणं
त्रिविक्रमंमन्दरधारिणंभजे॥ १॥
दामोदरंनिर्ज्जितभूतलंधिया
यशोंशुशुभ्रंभ्रमराङ्गसुप्रभम्।
भवेभवेदेवरिपुप्रणाशनं
नमामिविष्णुंपरमंजनार्दनम्॥ २॥
त्रिधास्थितंतिग्मरथाङ्गपाणिनं
नयस्थितंयुक्तमनुत्तमैर्गुणैः।
निश्श्रेयसाख्यंत्वायितेतरंगुरुं
नमामिविष्णुंपुरुषोत्तमंसदा॥ ३॥
महावराहोहविषांभुजोजनो
जनार्दनोमेहितकृच्चितीसुखः।
क्षितीश्वरोमामुदधिप्लवोमहा

न्सपातुविष्णुश्शरणार्थिनंतुमाम् ॥ ४ ॥
मायामयंयेनजगत्त्रयंकृतं
यथाग्निनैकेनततंचराचरम् ।
चराचरस्यस्वयमेवसर्वतः
समेस्तुविष्णुश्शरणंजगत्पतिः ॥ ५ ॥
भवेभवेयश्चससर्ज्जकंततो
जगत्प्रसूतंसचराचरंत्विदम् ।
ततश्चरुद्रात्मवतिप्रलीयते
ततोहरिर्विश्वहरस्तथोच्यते ॥ ६ ॥
रवीन्दुपृथ्वीपवनादिभास्करा
जलंचयस्यप्रभवन्तिमूर्त्तयः ।
ससर्वदामेभगवान्सनातनो
ददातुशंविष्णुरचिन्त्यरूपधृक् ॥ ७ ॥

इति स्तुतिः ॥

ऐसी व्याधकी स्तुति सुनकर विष्णुनारायण प्रकट हो दर्शन दे बोले कि हे व्याध ! हम तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हैं जो इच्छा हो सो वर मांगो यह विष्णु भगवान् का वचन सुनकर व्याध बोला कि हे महाराज ! मैं यह चाहता हूँ कि मेरी संतति पुत्र पौत्र आदि जो हो सो मधुक्रिया करके आपका भजनकर और फिर अन्त

में ज्ञानप्राप्ति होके आपके चरणमें लीनहो हे महाराज! यह वर हमको दीजिये व्याध के वचन सुनकर परमेश्वर तथास्तु कहकर बोले कि हे व्याध! तेरे कुलमें यह दुर्लभ वरदान हुआ और तुम हमारीगतिको प्राप्त हो यह कहकर नारायणजी अन्तर्द्धान भये और व्याध आनन्दमें मग्न हुआ २ नारायणके परमधामको जाता भया वाराहजी कहते हैं कि हे धरणि! इस स्तोत्र को जो उपवासव्रत करके नारायणकी पूजाकर एकादशी व्रत रहिके पढ़े या सुने ब्राह्मण के मुखसे जो नारायण समीप रहनेवाले सेवकों में उत्तम सेवक हों उनको सुनावै तो अनेक मन्वन्तर वैकुण्ठधाममें बसै ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्यकुलोचितधर्मशिक्षायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

यह दृष्टान्त तो हमने तुमको वाराहपुराण का दिखलायाहै इसीतरहसे अठारहों पुराणोंमें प्रमाण मिलता है और निन्दा कहींपर नहीं है अगर जहांपर निंदा होगी तहांपर तुम्हारे बनायेहुये श्लोक होंगे सो वह ठीक नहीं मानेजाते । और यहांपर आचार्यों का मत है कि ऋषिप्रणीत वाक्य को मानना अन्य का नहीं अब

श्रुति, स्मृतिकी दूसरी बातको दिखलाते हैं कि यज्ञ में देवता व पितरों का भक्ष्य पदार्थहै इसलिये यज्ञ इत्यादि कानार्थ में पशु का बलिदान किया जाताहे इसमें कुतर्क की जगह नहीं है ॥

अथ बलीन्हरेत् बाह्यतोवाऽन्तर्वासुभूमिं कृत्वा ॥ १ ॥

ॐ यःपशूनामधिपती रुद्रस्तंतिचरोवृषः । यःपशूनस्माकंमाहीꣳसीरेतदस्तुहुतंतव ॥ २ ॥

पशूनांत्वाहिङ्कारेणाभिजिघ्रामीत्यभिजिघ्रयथार्थम् ॥ ३ ॥

अथामुष्माच्चसक्थ्नोमाꣳस सपेशीमवकृत्यनवायाꣳसूनायामणुश्छेदयेत् ॥ ४ ॥

यथामाꣳसमाभिवाराःपिण्डाभविष्यन्तीति ५

तस्मिन्नेवाग्नौश्नपयत्योदनचरुञ्चमाꣳस सचरुञ्चपृथङ्मेक्षणाभ्यांप्रसव्यमुदायुवन् ॥ ६ ॥

इतिगोभिलसूत्राणि ॥

अथ शब्द आनन्तर्यार्थः । अथ तण्डुलप्रक्षालनानन्तरम् । प्रक्षालितस्य सकृदवत्तात् हविषः पित्र्यस्मात् । [illegible]न्यादि वृद्धा मन्त्रितकृत्य अनुमा[illegible]दित्यनेन परामर्शः । अथ शब्दः पूर्वप्रकृतार्थो वा । अनुक्तान् पूर्व [illegible] [illegible]कार्यानितिना[illegible] [illegible], च शब्दात्

क्लोमश्च, मांसपेशी,—मांसपेशी प्रसिद्धा, तां अवकृत्य अवच्छिद्य, नवायां सूनायां,—सूनानाम काष्ठमयःपात्र विशेषः, तस्यां सूनायां अणुशः सूक्ष्मंकृत्वा छेदयेत् ॥ ४॥ कथंछेदयेत् ?। उच्यते,—

यथा येनप्रकारेण मांसाभिघारा मांसव्यञ्जनाःपिण्डा भविष्यन्ति, इति तथाछेदयेत् ॥ ५ ॥ प्रसव्यं अप्रदक्षिणम् । कृतमाज्यमन्यत् । अत्रापि, मांसाभावे पायसः स्यात् । तदिदमुक्तमस्माभिरधस्तादेव, "ओदनव्यञ्जनार्थन्तु"—इत्यादिना ॥ ६ ॥

पितॄणांमासिकंश्राद्धमन्वाहार्यंविदुर्बुधाः ।
तच्चामिषेणकर्तव्यं प्रशस्तेनसमन्ततः ॥ १ ॥

इतिमनुवचनात् ॥

अब अन्वाहार्य पद के अर्थ को कहकर पितृयज्ञ से अनन्तर करनेको दृढ़ करते हैं कि यह प्रतिमास में होनेवाला श्राद्ध जिससे पितृयज्ञ और पिंडों के पीछे कियाजाताहै जिससे इस पितरोंके मासिक श्राद्धको पण्डितजन पिण्डान्वाहार्यक जानतेहैं इससे इसको पितृयज्ञके पीछेही करना उचित है और उस पिण्डान्वाहार्यकश्राद्धको प्रशस्त (जिसमें दुर्गन्धि न हो और जो मनोहरहो) मांससे करै अथवा यहांपर—पिण्डानांमासिकं श्राद्धं—ऐसा भी पाठहै उसका यह अर्थ है कि पितृयज्ञ के पिण्डों के श्राद्धको पंडितजन अन्वाहार्य कहते हैं ॥

शाकं व्यञ्जनमन्वाहार्य्यम् ॥ १ ॥

अनुपश्चादोदनचरोराहृते,—इत्यन्वाहार्य्यं शाकं व्यञ्जनं कुर्य्यात्, इति सूत्रशेषः। एतदुक्तं भवति। अस्यामष्टकायामोदनचरोः। पश्चाच्छाकचरुः कर्त्तव्यः। स च शाकचरुरोदनचरोर्व्यञ्जनार्थः मांसादिचरुवत्। तथाच पूर्व्वाष्टकायामुक्तम् ॥

"ओदनव्यञ्जनार्थं तु पराभावेऽपि पायसम्"।

होमोऽपि पूर्व्ववत्तन्त्रेण स्यात्। कुतः?। शाकस्य व्यञ्जनतोपन्यासेन स्वातन्त्र्यनिराकरणात्। तथाचोक्तम्।

"शाकं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत् ॥
यस्तु शाकादिहोमश्च कार्य्यः पूपाष्टकाऽऽवृता" ॥

इति। अन्वाहार्य्यः इति केचित् पठन्ति। तत्र न, छान्दसताभ्यर्थनीयम्। अन्वाहार्य्यश्चरुरिति चरुसमय ध्यविकरणता। कथंचित्समाधेयम्। अन्वाहार्य्यो,—इति पाठे, अन्वाहार्य्यो, पूर्व्वाष्टकायाः प्रकृतत्वादोदनचरोः पश्चाद्विधीयमानश्चरुः,—तत्स्थाने,—इत्येतत्। तथा च, तदीयमांसचरुस्थाने अत्र शाकं व्यञ्जनं कुर्य्यात्,—इत्यर्थः। अन्वाहार्य्यं श्राद्धे,—इति कथं न वर्ण्यते?। 'नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धम्'—इत्यष्टकाकर्म्मण्यन्वाहार्य्यश्राद्धनिषेधात्—इत्यलम्। तस्माद्यथोक्तपाठार्थः ॥ १ ॥

अथ पितृदैवत्येन पशुना वह्वचपां जातवेदः पितृभ्य इति वपां जुहुयात् ॥ २ ॥

अथशब्दः पूर्वोक्तायाः पशिश्रुति कर्त्तव्यतायाः अनुवृत्त्यर्थः। पित्रर्थं येपशव आलभ्यन्ते तइमे पितृदैवत्याः पशवः। तेषुपितृदैवत्येषु पशुषु,वहवपामितिमन्त्रेण वपां जुहुयात्। पितृदैवत्याश्चपशवः, "श्रोत्रियेऽभ्यागतेश्राद्धंमहोक्षेण महाऽजेनवादद्यात्" इत्येवमादयस्तन्त्रान्तरोक्ताश्चादरणीयाः। कुतः?। स्वशाखेविधानाभावात्। श्रोदनचरोश्चात्र, पितृभ्यस्त्वा, इतिनिर्वापःस्यात्। कस्मात्?। पित्रर्थत्वात्। एवं, सव्योत्तराभ्यांपाणिभ्यां सकृदवहन्यात्। सकृत्फलीकुर्य्यात्। सकृत्प्रक्षालयेत् प्रतप्तमवघट्टयेत्। दक्षिणत उद्वासयेत्। न च प्रत्यभिघारयेत्। अवत्तस्यचात्रानिवृत्तिःस्यात्। कुतः?। मन्त्रलिङ्गविरोधात्। एवंच, अवदानादि सर्व्वंयत्रिधा विभागमकृत्वैवस्थालीपाकावृतासौ स्विष्टकृदावृतासौवि ष्टकृदावृताचा अवदाय, पितृभ्यः स्वाहा, इतिसकृदेवजुहुयात्। प्रोक्षणनिर्वापप्रधानहोमाश्च प्राचीनावीतिनैवकर्त्तव्याः। कुतः?। पित्रर्थत्वात्। तथाचोक्तम्॥

"प्राचीनावीतिना कार्य्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः।
दक्षिणोद्वासनान्तंच चरोर्निर्वपणादिकम्।
सकृद्यश्चावदानानां प्रधानार्थो न हीतरः।
प्रधानहवनञ्चैवशेषंप्रकृतिवद्भवेत्"।

इति॥ २॥

देवदैवत्येषुजातवेदोवपयागच्छदेवानिति ३॥

देवार्थं ये पशव आलभ्यन्ते तइमे देव देवत्याः पशवः । तेषु जातवेद इति मन्त्रेण, वपां जुहुयात्,

इत्यनुवर्त्तते । आह । के पुनर्देवदेवत्याः पशवः ? । उच्यते । योऽयं वास्तुकर्म्मणि 'कृष्णयागवायजेत्'—इत्येवमादिना सूत्रयिष्यते; येचतन्त्रान्तरे,-'हिरण्यकामो वायाम्यायां मणिभद्रं रोहितेन यजेत, गोऽश्वकामः पौर्णमास्यां श्वेतेन, इत्येवमादयः, तइमे देवदेवत्याः पशवः । तत्र वास्तुकर्म्मणि वास्तोष्पतये त्वा,–इति निर्व्वापः । होमे तु विशेषं वक्ष्यति । मणिभद्रयागादिषु मणिभद्राय त्वा,–इत्यादिर्निर्वापः । मणिभद्राय स्वाहा,–इत्यादि होमः ॥ ३ ॥

अष्टका रात्रिर्देवता ॥ ४ ॥

पुष्टिकर्म्म ॥ ५ ॥

चतुरष्टका हेमन्तः ॥ ६ ॥

ताः सर्व्वाः समांसाश्चिकीर्षेत् ॥ ७ ॥

इति कौत्सः ॥ ८ ॥

त्र्यष्टक इत्यौद्गाहमानिः ॥ ९ ॥

तथा गौतमवार्कखण्डी ॥ १० ॥

[illegible] ।
[illegible] ।

विघातः स्यात्सवाधोवहुभिःस्मृतः । प्राणभाग्मित इत्यादि वासिष्ठंवाधितंयथा । विरोधोयत्रवाक्यानां प्रामाण्यंतत्रभूयसाम् । तुल्यप्रमाणसत्त्वेतु न्यायएवप्रवर्तकः"।

योऽर्द्धमाग्रहायण्यास्तामिश्राष्टमीतामपूपाष्टकेत्याचक्षते ॥ ११ ॥

आग्रहायण्याः पौर्णमास्याः ऊर्द्धपरतोयातामिश्रा कृष्णपक्षीया अष्टमी, (तिमिश्राष्टमी,-इतिकेचित् पठन्ति, तत्रापिसएवार्थः) तामपूपाष्टकां,-इति आचक्षते कथयन्ति आचार्य्याः। यथेयमपूपविधानादपूपाष्टका भण्यते, तथा मध्यमामीमांसविधानान्मांसाष्टका ॥ अन्तिमाऽपिशाकविधानात् शाकाष्टकोच्यते,—इति द्रष्टव्यम्। अथैवम्,-अस्य विधानादेवाभिधानेसिद्धे 'अपूपाष्टकेत्याचक्षते,-इत्येलदवाच्यम् ?। उच्यते। एवंतर्हि गुणार्थोऽयमनुवादोभविष्यति। कथंनाम ?। ब्राह्मणभोजनार्थमप्यपूपाःकर्त्तव्याः, इति। एवंच, अष्टकाविहितमन्यदपियत्कर्म्म-श्राद्धं, तदप्यपूपैः करणीयमिति सिद्ध्यति। तथाचपुराणेषुस्मर्य्यते।

आद्याऽपूपैःसदाकार्य्या मांसैरन्याभवेत्सदा।
शाकैःकार्य्यातृतीया स्यादेषद्रव्यगतोविधिः॥

इति॥ ११।०।०॥

फालशाकंमहाशल्काःखड्गलोहामिषंमधु।

आनन्त्यायैवकल्प्यन्तेमुन्यन्नानिचसर्वशः ॥ १ ॥

कालशाक है नाम जिसका ऐसा शाक और महाशल्क (मत्स्य) क्योंकि इसवचन से महाशल्क मत्स्य को कहते हैं खड्ग (गेंड़ा) और लोहित लालवर्णका छाग (बकरा) इस पैठीनसी के वचन से लाल छाग कोही लोहित कहतेहैं मधु (शहद) और नीवार आदि सम्पूर्ण मुनियोंको अन्न ये सम्पूर्ण अनन्त तृप्ति करतेहैं १

अथर्वणवाक्यम् ॥

संवत्सरंतुगव्येन पयसापायसेनच ।
वार्ध्रीणसस्यमांसेनतृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २ ॥

गौ के दूध और गौ के दूध की खीर से एक वर्षतक तृप्ति होती है और वार्ध्रीणस के मांससे बारह वर्षतक तृप्ति होती है और निगम वेद में वार्ध्रीणस उसे कहते हैं कि यज्ञ करनेवाले पितरों के कर्म में वार्ध्रीणस उसे कहते हैं जिसके जल पीने के समय दोनों कान और जिह्वा ये तीनों जलका स्पर्शकरतेहों और इन्द्रिय जिस की निर्बल हों और शुक्ल जिसका रंगहो वृद्ध प्रजापति (अनेक सन्तानवालाहो) ॥ २ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

अथ सामवेदगोभिलगृह्यश्राद्धकल्पेप्रमाणम् ॥

अथ तृप्तीः ॥ १ ॥

वक्ष्यामः,—इतिसूत्रशेषः ॥ १ ॥

तत्रहविर्विशेषात्तृप्तिविशेषमाह,—

ग्राम्याभिरोषधीभिर्मासंतृप्तिः ॥ २ ॥

ग्राम्याभिर्ग्रामेभवाभिः। ओषधीभिः,—

व्रीहयःशालयोमुद्गागोधूमाःसर्षपास्तिलाः।

यवाश्चौषधयःसप्तविपदोघ्नन्तिधारिताः" ॥

इत्युक्तलक्षणाभिः,फलपाकान्ताभिर्वा, मासंव्याप्य पितॄणांतृप्तिर्भवति । तन्त्रान्तरेग्राम्यतिलनिषेधोऽस्म द्व्यातिरिक्तविषयः ॥ २ ॥

तदलाभेआरण्याभिः ॥ ३ ॥

तासां ग्राम्याणामोषधीनामलाभे, आरण्याभिरोष धीभिः, 'मासंतृप्तिः'—इत्यनुषज्यते । अनुकल्पोऽयम् ३॥

मूलफलैरद्भिर्वा ॥ ४ ॥

मासं तृप्तिः—इत्यनुवर्त्तते । मूलैः,—

"कशेरुःकोविदारश्च तालकन्दंतथाविसम्।

तमालंशतकन्दश्चकह्लारंशीतकन्दकम्" ॥

इत्यादिभिर्बहुलंतन्त्रान्तरेषूपदिष्टैःफलैः,—

"विल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाडिमम्।
भव्यंयानैरताक्षोटखर्जूराम्रफलानिच" ॥

इत्येवमादिभिस्तन्त्रान्तरोक्तैरेव । अद्भिर्जलेनवा। अयमप्यनुकल्पएव । तथाब्राह्मपुराणे ।

'पयोमूलफलैःशाकैःकृष्णपक्षेचसर्वदा ।
पराधीनःप्रवासीच निर्धनोवाऽपिमानवः ।
मनसाभावशुद्धेनश्राद्धंदद्यात्तिलोदकम् ॥

इति । अपरेपुनरेतदविद्वांसोवक्ष्यमाणेनोत्तरशब्देन मूलादीनांग्रहणं वर्णयन्तोभाषन्ते;—'मूलादयोऽपिपदार्थाःसहैवान्नेनतर्पयन्ति'—इति ॥ ४ ॥

सहान्नेनोत्तरास्तर्पयन्ति ॥ ५ ॥

उत्तराः—वक्ष्यमाणाश्छागादयःपदार्थाः,अन्नेनसहिताःसन्तस्तृप्तिंजनयन्ति, न केवलाः ॥ ५ ॥

तइमेउत्तराः पदार्थाअभिधीयन्ते,—आ काण्डिका परिसमाप्तेः—

छागोस्रमेषा आलभ्याः ॥ ६ ॥

शेषाणिछागादिभ्योऽन्यानि वक्ष्यमाणानिमांसानी त्यर्थः। "शेषाणीतरेषाम्"–इतिपाठे, शेषाणिछागादि भ्योऽन्यानि, इतरेषां मत्स्यादीनांमांसानि,–इतिपूर्वोक्त एवार्थः। इतरेषांक्रीत्वालब्ध्वावा,–इतिवावर्णनीयम्। यदाक्रमलाभ्यांसम्बन्धः, तदा 'इतरेषाम्'।–इतिसम्ब न्धलक्षणाषष्ठी। तानिखल्वेतानिमांसानिकुतश्चित्क्री त्वावालब्ध्वावा, अथवास्वयं मृतानामाहृत्य, पचेत्।– गृह्योक्तप्रकारेणचरुपाकविधिना ॥ ७ ॥

मासद्वयंमत्स्यैः ॥ ८ ॥

मत्स्यैःपाठीनादिभिर्मासद्वयंपितॄणांतृप्तिर्भवति ८ ॥

मासत्रयंहारिणेनमृगमांसेन ॥ ९ ॥

मृगःपशुरित्यनर्थान्तरम्। मृगस्यपशोर्मांसेनमास त्रयंतृप्तिः। तदेवमांसंविशिनष्टि। हारिणेनहरिणसम्ब न्धिनापशुमांसेन। हरिणमृगमांसेन,–इतिपाठेऽपि, सा मान्यवचनोमृगशब्दोविशेषवाचिनाहरिणशब्देनविशि ष्यते,–इतिसएवार्थोभवति ॥ ९ ॥

चतुरः शाकुनेन ॥ १० ॥

चतुरोमासान् तृप्तिः शाकुनेनमांसेन। शकुनःपक्षी त्यनर्थान्तरम्। सचकपिञ्जललावकादिः ॥ १० ॥

पञ्च रौरवेण ॥ ११ ॥

रौरवेणमांसेनपञ्चमासांस्तृप्तिः। एवमुत्तरत्रापि। रुरुर्मृगविशेषः ॥ ११ ॥

षट्छागेन ॥ १२ ॥

तृप्तिः ॥ १२ ॥

सप्त कौर्म्मेण ॥ १३ ॥

तृप्तिरित्येव ॥ १३ ॥

अष्टौ वाराहेण ॥ १४ ॥

तृप्तिः ॥ १४ ॥

नवमेषमांसेन ॥ १५ ॥

सलक्षणमेषमालम्भोऽकल्प्य; ॥ १५ ॥

दश माहिषेण ॥ १६ ॥

मांसेन—इत्येव ॥ १६ ॥

एकादशपार्षतेन ॥ १७ ॥

पृषतोमृगविशेषः ॥ १७ ॥

संवत्सरन्तुगव्येनपायसा ॥ १८ ॥

तृप्तिः ॥ १८ ॥

पायसेनवा ॥ १९ ॥

तृप्तिरित्येव। वार्ध्रीणसश्च;—
"त्रिपिबन्त्विन्द्रियक्षीणंश्वेतंवृद्धप्रजापतिम्।
वार्ध्रीणसन्तुतंप्राहुर्याज्ञिकाःपितृकर्म्मणि।
कृष्णग्रीवोरक्तशिराःश्वेतपक्षोविहङ्गमः।
सवैवार्ध्रीणसःप्रोक्तइत्येषानैगमीश्रुतिः"॥
इत्युक्तलक्षण। जरच्छागइतिमेधातिथिः॥ २०॥

इति श्रीश्राद्धकल्पषष्ठीकाण्डिकासमाप्ता॥

अथ सप्तमीकण्डिका॥

अथाक्षय्यतृप्तीः॥ १॥

वक्ष्यामः॥ १॥

खड्गः॥ २॥

खड्ग आरण्यः पशुविशेषः। सोयमक्षय्यतृप्तिहेतुः पितृणाम्। एवमग्रेऽपि॥ २॥

कालशाकम्॥ ३॥

प्रसिद्धमेतत्। कालशाकः,—इतिपाठेऽपिनार्थो भिद्यते॥ ३॥

लोहितच्छागः॥ ४॥

रक्तवर्णच्छागः। "छागोवासर्व्वलोहितः"—इति च स्मृत्यन्तरम्॥ ४॥

मधु॥ ५॥

मधुक्षौद्रं माध्वीकमित्यनर्थान्तरम् ॥ ५ ॥

महाशल्कः ॥ ६ ॥

महाशल्को मत्स्यविशेषः । सचरोहितादिरितिवा चस्पतिमिश्रः । रोहितमत्स्यः,—इत्यपरे । तथाच ब्रह्म पुराणे ॥

"रोहितामिषमुत्पन्नं दत्तातुष्टाःकुलोद्भवाः ।
अन तांश्चिप्र यच्छन्तितुष्टिं गौरीसुतस्तथा" ॥

इति ।

"एकशल्कोऽर्द्धचन्द्रश्च ललाटे खड्गसंयुतः ।
गुरुशोणितवर्णो मत्स्यो महाशल्कः स उच्यते" ।

इति । पुनस्त्री वार्त्तिकस्तुसुकः ॥ ६ ॥

नास्तिकश्राद्धम् ॥ ७ ॥

*शूद्रस्यार्थः 'नान्दीमुखश्राद्धम्'—इतिपाठे, नान्दीमुखःश्रेयःश्राद्धमभ्युदयनिमित्तकमिति मन्तव्यम् । तथाच विष्णुधर्मोत्तरे ।

"पुनर्विवाहनान्दीश्राद्धे श्राद्धमाभ्युदयिकं नृप ।
चतुर्भिश्चवनत्राणि प्रमुनिरुध्निहितम्" ।

इति ॥ ७ ॥

इन्द्रियचापल्याच्च ॥ ८ ॥

"हस्तिच्छायासु विधिवत्कर्णव्यजनवीजितम्"।
इति भारते। पारिभाषिकी खल्वपि। प्रचेताः।
"सूर्य्येहस्तस्थितेयातु मघायुक्तात्रयोदशी।
तिथिर्वैश्रावणीयातु साच्छायाकुञ्जरस्यच"।
इति। यमः हंसेकरास्थितेयातु आमावस्याकरान्विता।
साज्ञेयाकुञ्जरच्छाया इतिवौधायनीश्रुतिः"।
इति। वायुपुराणे।
"वनस्पतिगतेसोमे याच्छायाप्राङ्मुखीभवेत्।
गजच्छायातुसाप्रोक्ता तस्यांश्राद्धंप्रकल्पयेत्"।
इति ब्रह्मपुराणे।
"सैंहिकेयोयदाभानुं ग्रसतेपर्व्वसन्धिषु।
गजच्छायातुसाप्रोक्ता तस्यांश्राद्धंप्रकल्पयेत्"।
इति। एवमादिकमनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

अथेदानीं ब्राह्मणविशेषा अभिधीयन्तेऽक्षयतृप्तिहेतवः,—

मन्त्राध्यायिनः ॥ ९ ॥

मन्त्रब्राह्मणात्मकस्य वेदस्य मध्यान्मन्त्रभागमात्रं येऽधीयते ते मन्त्राध्यायिनः ॥ ९ ॥

पूताः ॥ १० ॥

पूताःपवित्राः श्रुत्युक्ताचारादिभिरित्यर्थः। अथवा। मन्त्राणामध्ययनमकुर्व्वाणा अपिवेदव्रतानुष्ठानं येकृतवन्तः; तइमेपूताः ॥ १० ॥

शाखाध्यायी ॥ ११ ॥

स्वीयां शाखां मन्त्रब्राह्मणात्मिकां योऽधीते, सतत्ता यंशाखाध्यायी ॥ ११ ॥

षडङ्गवित् ॥ १२ ॥

षडङ्गानि यो वेत्ति सोयंषडङ्गवित् । तेषामभ्यादेकम पियो वेत्ति, सोऽपि,—इति महायशाः । अङ्गानि च;—

"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषाञ्चितिः ।
छन्दसां विचितिश्चैव षडङ्गो वेद उच्यते" ।

इत्युक्तलक्षणानि ॥ १२ ॥

ज्येष्ठसामगः ॥ १३ ॥

त्रिणाचिकेतः ॥ १५ ॥

त्रिणाचिकेतोऽध्वर्य्युशाखायां प्रसिद्धः। एतदव्रतमपि, तद्योगात्पुरुषोऽपित्रिणाचिकेतः ॥ १५ ॥

त्रिमधुः ॥ १६ ॥

त्रिमधुरध्वर्य्युवेदभागस्तद्व्रतंच । तद्योगात्पुरुषोऽपित्रिमधुः ॥ १६ ॥

त्रिसुपर्णः ॥ १७ ॥

सुपर्णमन्त्रास्तैत्तिरीयकेप्रसिद्धा बह्वृचानांवेदभागश्चैवमुच्यते।

तद्व्रतंच। तद्योगात् पुरुषोऽपि ॥ १७ ॥

पञ्चाग्निः ॥ १८ ॥

पञ्च—पवनपावनदक्षिणगार्हपत्याहवनीयाअग्नयो यस्य, असौपञ्चाग्निः।

तथा च हारीतः।

"पवनःपावनस्त्रेता यस्यपञ्चाग्नयोगृहे।

सायंप्रातःप्रदीप्यन्ते सविप्रःपङ्क्तिपावनः"।

इति। केचिदेनत्सूत्रम,—'त्रिणाचिकेतः'—।

इत्यतःपूर्वंपठन्ति ॥ १८ ॥

स्नातकः ॥ १९ ॥

विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति त्रिप्रकारो गृह्यसूत्रोक्तः ॥ १९ ॥

मन्त्रब्राह्मणवित् ॥ २० ॥

मन्त्रब्राह्मणात्मकसमग्रवेदवेत्ता । केचिदेतत्सूत्रद्वयं न पठन्ति ॥ २० ॥

धर्मज्ञः ॥ २१ ॥

धर्मशास्त्राध्यायीधर्मवेत्तावा। "धर्मद्रोहेणपाठकः" इतिपाठे.

"मनु वसिष्ठयाज्ञवल्क्यगौतमशास्त्राणिधर्मद्रोहेण शब्देनोच्यन्ते. ।

असहस्रपात्पङ्क्तिंपुनातीतिवचनादासहस्रात् पङ्क्तिंपुनातीतिवचनात् ॥ २४ ॥

चतुरक्षरार्थः द्विर्वचनमादरार्थंप्रकरणसमाप्त्यर्थंच "वागीश्वरोयाज्ञिकआसहस्रात्पङ्क्तिंपुनातीतिवचनादासहस्रात्पङ्क्तिंपुनातीतिवचनात्"–

इति केचित्पठन्ति ॥ २४ ॥

इति श्रीश्राद्धकल्पेसप्तमीकण्डिकासमाप्ता ॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य कुलोचितधर्मशिक्षायांपञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

नपर्य्युषितम् ॥ ९ ॥

अन्यत्रशाकमांसयवपिष्टविकारेभ्यः॥१०॥

इति सामवेदगोभिलसूत्रशिक्षाप्रकरणम् ॥

"यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तंभक्ष्यंभोज्यमगर्हितम् ।
तत्पर्य्युषितमप्याद्यंहविःशेषंचयद्भवेत् ॥
चिरस्थितमपित्वाद्यमस्नेहाक्तंद्विजातिभिः ।
यवगोधूमजंसर्व्वंपयसञ्चैवविक्रिया "॥

तथाचमनुः–तथायमः–

"मसूरमाषसंयुक्तंतथापर्य्युषितंचयत् ।
तत्तुप्रक्षालितंकृत्वाभुञ्जीतह्यभिघारितम् ॥

अपूपारचकरम्भाश्चधानावटकसक्तवः ।
शाकमांसञ्चपूपञ्चसूपंकृशरएवच ॥
यवागूंपायसञ्चैवयच्चान्यत्स्नेहसम्भवम् ।
सर्वंपर्युषितंभक्ष्यंसक्तुंचपरिवर्जयेत् ॥"
इतिवचनात् । शूलपाणि । तथापिमनुनोक्तः—
"दधिभक्ष्यञ्चसर्वेषुसर्वंचदधिसम्भवम् ।
सर्वंपर्युषितंभक्ष्यंसर्पिषावापरिप्लुतम् ॥"

अब भक्ष्यमत्स्योंको कहते हैं ।

पाठीनरोहितावाद्यौनियुक्तौहव्यकव्ययोः ।
राजीवान्सिंहतुण्डांश्चसशल्कांश्चैवसर्वशः ॥ ७ ॥

मत्स्यों को तुल्य कहा है क्योंकि शंख का कथन यह है कि राजीव सिंहतुण्ड-सशल्क-पाठीन-रोहित ये मत्स्यों में भक्ष्यहैं और याज्ञवल्क्य ने भी यह कहा है कि ये पञ्चनख भक्ष्य हैं श्वावित् (वसह) गोधा (गोह) कछुआ-शल्यक-सेह-शशा-और मत्स्यों में सिंहतुण्डक-रोहित-पाठीन-राजीव और सशल्क ये द्विजातियों को भक्ष्यहैं और हारीत का यह कथनहै कि न्याय से प्राप्त हुये शल्कसहित मत्स्य-भक्ष्य हैं-इससे श्राद्ध में भोक्ता को ही खाने यजमान को नहीं-और राजीव आदि ऐसे पञ्चमत्स्यों का भक्षण करै अन्य को नहीं यह मेधातिथि गोविंदराज की व्याख्या है और मुनियों की सम्मत नहीं है ॥ १ ॥

श्वाविधंशल्यकंगोधांखड्गकूर्मशशांस्तथा।
भक्ष्यान्पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ २ ॥

श्वाविध (सेह) शल्य (सेहकी तुल्य वड़े वड़े रोम वाला) गोधा-गैंड़ा-कच्छप-और शशा पंचनखों में ये पांच और ऊंट को छोड़कर एक ओर दांतवाले जीव

१ राजीवा सिंहतुण्डाश्चसशल्काश्चतथैवच ॥ पाठीनरोहितौचापिभक्ष्यामत्स्येषुकीर्तिताः ॥ २ ॥ भक्ष्याःपञ्चनखाःश्वाविद्गोधाकच्छपशल्यकाः ॥ शशश्चमत्स्येष्वपितुसिंहतुण्डकरोहिताः॥ तथापाठीनराजीवसशल्काश्चद्विजातिभिः ॥ ३ ॥ सशल्कान्मत्स्यान्न्यायोपपन्नान्भक्षयेत् ॥ ४ ॥ नोकैःरायांनकर्शांपिध्याऽऽपाठीनरोहितौ ॥ राजीवाद्यास्तथानेतिव्याख्यान मुनिसम्मता ॥

भक्षण के योग्य मनुआदि सब ऋषियों ने कहेहैं॥ २॥

केचिद्वदन्त्यमृतमस्तिपुरेसुराणाम्
केचिद्वदन्तिवनिताधरपल्लवेषु॥
ब्रूमोवयंसकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे॥ ३॥

कथयतिसुकृतिर्भक्षणात्तस्यमुक्तिः ॥ ५ ॥

हे भगवन्! विश्व जो (संसार) है तिसको पवन धारण किये है—और तिसके ऊपर कमठ (कछुआ) सो भी धारण किये है—और तिसके ऊपर शेष भगवान् धारण किये हैं—और तिसके ऊपर पृथ्वी भी धारण किये हैं—और तिसके ऊपर कैलास है और कैलास के ऊपर (शृंग) है याने कँगूरा—और तिसके ऊपर गिरीश जो महादेवजी हैं सो भी विराजमान हैं और मूर्द्धि (जटा) जो है सो भी विराजमान है और फिर जटा में गंगाजी वसती हैं—और जो गंगाजी हैं सो आकाश, पाताल, मृत्युलोक में प्रगटहै और गंगाजीकी लहरीहैं सो तीनोंलोक में ज़ाहिरहैं और गंगाजी के वीचमें याने लहरियों में जो मत्स्यहै सो कल्लोलकर शोभायमान हो रही हैं और इनके कहने से वड़ाई होती है सो इनका इतना माहात्म्य है कि इनके कहने से सुकृत याने यश मिलता है अगर जो कोई इनका भक्षण करता है तो उसकी मुक्ति होजाती है ॥ ४। ५ ॥

और फिर देखो कि मार्कण्डेयपुराण में भी ऐसा लिखा है कि,

वलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ॥
सर्वममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेवच ॥ ६ ॥

वलिप्रदाने इति देवतायै उपहारीकृतो महिषच्छा

पुंसाकृतां संपादितां अर्थात् बलिपूजामेव, तथाकृतं संपादितं वह्निहोमं अग्नौसमन्त्रप्रक्षिप्तं त्रिमध्वादिहवनद्रव्यंच प्रीत्यादरेण अहं देवीप्रतीच्छिष्यामि ग्रहीष्यामीत्यर्थः। इच्छांप्रतिगतःप्रतीच्छः। गोस्त्रियोरितिह्रस्वः। तत आचारेक्विपिसनाद्यन्ता धातव इति धातुत्वे प्रतीच्छधातोर्भविष्यति कालेलृडुत्तमपुरुषैकवचनेस्यतासी लृलुटोरितिस्यप्रत्यये अतोलोप इडागमेषत्वेचरूपम्। नागेशस्तु। प्रतीच्छिष्याम्यङ्गीकरिष्यामिचवर्गमध्यः धातुगणो बाहुलकोक्तेः प्रतीच्छधातुः प्रतिग्रहणार्थ इत्याह। अन्येऽप्येवमाचख्युः। करोपहारयोःपुंसिबलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियामित्यमरः। पूजाञ्चेति। पूजनं कृत्वासत्कारविशेषः। पूज पूजायाम्। चुरादिःषिद्भिदादिभ्योऽङ्इत्यङ्। कृतामितिलिङ्गविपरिणामेनबलिनासम्बध्यते॥ ७॥

नियुक्तस्तुयथान्यायं योमांसंनात्तिमानवः।
सप्रेत्यपशुतांयाति संभवानेकविंशतिम्॥ ८॥

श्राद्धमें, और मधुपर्कमें नियुक्त हुवा जो मनुष्य मांस को खाता नहीं वह मनुष्य इक्कीस जन्मतक पशु हुवा करताहै अर्थात् यथाविधि नियुक्त हुवा मांस का भोजन करे अगर न करै तो पापभागी होताहै और यमराजसे दण्ड पाकर इक्कीसजन्मतक पशुयोनि में दुःख पाताहै इससे मांसभक्षणकरै॥ इति मनुवाक्यम॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषुच ।
उत्सवेषुचसर्वेषु स्पर्शेनविद्यतेकचित् ॥ ९ ॥
आलनालंतथाक्षीरं कण्टुकंदधिसक्तवः ।
स्नेहपक्कंचतक्रंच शूद्रस्यापिनदुष्यति ॥ १० ॥
आर्द्रमांसंघृतंतैलं स्नेहाश्चफलसंभवाः ।
अन्त्यभाण्डस्थितानह्येतेनिष्क्रान्ताःशुद्धिमाप्नुयुः ।
अत्रि० १ अ० श्लो० २४७-२४८-२४९

तो अन्यके पात्रमें टिके (रक्खेहुये) ये सब निकासनेसे शुद्ध होते हैं ॥ १२ ॥

कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेवच।
मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु ॥ १४ ॥

कृताकृत तण्डुल पललौदन (तिलपिष्टसहित ओदन) पक्की, कच्ची मछली और ऐसाही और मांस ॥ १४ ॥

पुष्पंचित्रंसुगन्धंच सुरांचत्रिविधामपि।
मूलकंपूरिकापूपं तथैवोण्डेरकःस्रजः ॥ १५ ॥

चित्र विचित्र पुष्प (चंदन आदि) सुगंध, तीनों प्रकार की मदिरा (गौड़ी पैष्टी माध्वी) मूली, पूरी, पुआ, उण्डेरक (छोटे २ रोट) कीमाला ॥ १५ ॥

गुडौदनंपायसंचहविष्यं क्षीरषाष्टिकम्।
दध्योदनंहविश्चूर्णं मांसंचित्रान्नमेवच ॥ १६ ॥

इति याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १।

मीठा भात, खीर, हविष्य, (तीनीका भात) साठीका भात और दूध दही, भात घी, भात-खांड़ भात, मांस भात और विचित्र वर्ण के भात ये भोजन सूर्य्य नारायण के लिये दिये जाते हैं पश्चात् ब्राह्मण भोजन करावै और जो देवता का नैवेद्य देवै उसी का पदार्थ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै और गुरुको दुगुनी दक्षिणा देना चाहिये

और जब मनुष्यके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ये तो हमने कहा अब पितरोंके तृप्तिके मासको वर्णन करते हैं॥१६॥

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥१७॥
ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्।
मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः॥१८॥
खड्गामिषं महाशल्कं मधुमुन्यन्नमेव च।
लोहामिषं महाशाकं मांसं वार्ध्रीणसस्य च ॥१९॥
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते।

मुन्यन्न, (तीनी का चावल) लोह (लाल बकरे) का मांस, महाशाक (कालाशाक) वार्द्धीणस(बूढ़ासफेद) बकरे का मांस ॥ १६ ॥ और गयातीर्थ, वर्षा कालकी त्रयोदशी (भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी) और विशेष करके मघामें जो पिण्ड देते इन सबों से निस्संदेह अनन्तकाल तक पितरों की तृप्ति रहती है ॥२०॥ श्राद्ध करनेवाला मनुष्य कन्या, कन्याकावर अच्छे पशु और पुत्र, द्यूतमें विजय, कृषिकर्मका फल बनिज में लाभ, दोखुरे (गाय इत्यादिक) और एक खुरे पशु (घोड़े इत्यादिक) ॥२१॥ वेदपाठी पुत्र, सोना, चाँदी आदि रत्न जाती में बड़ाई और अपने सब मनोरथों को सदा पाता है ॥ २२ ॥

ये तो पिण्डदान का विषय हमने तुमको सुनाया और ब्राह्मणभोजन के विषय को कहता हूँ ॥

एके यतीन् * ॥ ८ ॥

इति गोभिलगृह्यसूत्रप्रमाणम् ॥

यतयस्त्रिदण्डिनइहाभिप्रेयन्ते । कथंज्ञायते ? ।

" यतिस्त्रिदण्डःकरुणा राजतंपात्रमेवच " ।

इति ।

" शिखिभ्योधातुरक्तेभ्यस्त्रिदण्डिभ्यःप्रदापयेत् " ।

इति चैवमादिस्मरणात्तानिमेयतयोनिमन्त्रणीयाः,

* एके यतीनथा,–इतिकस्यचिन्मतेसूत्रपाठ. ॥

गृहस्थाश्च साधवश्च तान्गृहस्थसाधून्। वाशब्दः स्नातकापेक्षयाविकल्पार्थः। तत्र, स्नातकाः—गृहस्थाश्रमप्रवेशोन्मुखाः। गृहस्थास्तुतत्रकृतप्रवेशाभार्य्यासहिताः। भार्य्याहिगृहमाचक्षते,—इतिसभार्य्याएवगृहस्था इहाभिप्रेयन्ते। तथा च स्मरणम्।

"नगृहंगृहमित्याहुर्गृहिणीगृहमुच्यते।
तयाहिसहितःसर्व्वान्पुरुषार्थान्समश्नुते"।

इति। येपुनर्गृहस्थाश्रमेकृतप्रवेशा अपिमृतभार्य्याः सन्तःपुनर्भार्य्यामर्थयमानाःस्नातकव्रतानुष्ठानपराबाभवन्ति, तइमे साधवो भण्यन्ते। कन्यायाःखल्वलाभे,

"अलाभेचैवकन्यायाःस्नातकव्रतमाचरेत्"॥

इति स्नातकव्रतानुष्ठानमस्यमुनयःस्मरन्ति। शास्त्रानुमतञ्चानुतिष्ठन्कथंनसाधुःस्यात्। 'साधुत्वं गृहस्थविशेषणम्'—'इत्यसङ्गतैवावर्णना महायशसः। "स्नातकान्" "एकैकयतीन्" गृहस्थसाधून्वा"—इत्याश्रमविशेषावस्थायिनएवाह्निनिमन्त्रणीया इहोपदिश्यन्ते। धर्म्मास्तुपश्चादुपदेक्ष्यन्ते। न खल्वसाधूनपिस्नातकान् निमन्त्रणीयान्मन्यसे,कथंसाधुत्वं गृहस्थस्य विशेषणमास्य॥ अथ मन्यसे,—पश्चादुपदिष्टैर्धर्म्मैरसाधवःस्नातका व्यावर्त्तिष्यन्ते,—इति। गृहस्थाअप्यसाधवस्तथैव तर्हिव्यावर्त्तिष्यन्ते,—इतिविफलोऽयमारम्भः। कात्याय

मत्स्यादिक हैं—और शूरवीर (पराक्रमी) सिंहादिकों के अन्न भीरु हाथी आदि हैं अर्थात् एक का एक भक्ष्य है । इसका तात्पर्य यह है कि मतंगऋषि को एक लुब्धक (व्याध) ने अन्नादि व फल में कन्द इत्यादि में जीव दिखलाया है और दाल, भात, रोटी इत्यादि और पक्की रसोई में भी जीव दिखलाया है (अर्थात् कीड़े रूप होकर रेंगनेलगे) इसकी कथा " वाराह पुराण " म लिखी है जिसको देखना हो सो देखले । और ये यावत् जितना पदार्थ है सब जीवधारी हैं निर्जीव कोई भी नहीं है और जब निर्जीव होनेपर कोई नहीं ग्रहण करता वह अभक्ष्य है । और देवयज्ञ पितृयज्ञ में इन पदार्थों का संस्कार होकर वलिदान, पिंडदान, नैवेद्य, आहुति अग्नि की ब्रह्मभोजन में ये सब पदार्थ संस्कारयुक्त आते हैं वेदके मंत्रों से । और यह पाखंडीलोग नहीं मानते हैं और दुर्जन भी नहीं जानतेहैं । इसका तात्पर्य यहहै कि जिनको (द्वापरके मध्यमें) गौतम महर्षि ने शाप दिया था कि तुम वेद, यज्ञ, स्वाहा, स्वधा, शिव, देवी, सन्ध्या, गायत्र्यादि से सदा विमुख रहोगे इसवास्ते यह लोग समझतेनहीं मगर जिद करते हैं ।

और फिर भी देखिये कि राजानल ने ताल में से

---

१ पहिले ... राजाको विस्तारसमेत वर्णन करचुके हैं सो देखलो ॥

मछलियों को निकाल कर बाहर भूँजा था और खाने को ज्योंही चाहा त्योंही कूद २ कर ताल में चली गई अगर जो उन मछलियों में जान न होती तो क्योंचली जातीं ये बात प्रत्यक्ष है और इनकी कथा में विस्तार पूर्वक वर्णित है और फिर देखिये कि कश्यप ऋषि के पुत्र गरुड़जी ये सब जन्तुओं के भक्षण करनेवाले हैं लेकिन ब्राह्मण को छोड़ देते हैं और सब मनुष्यों को भी भक्षण करते हैं जो इन में अशुद्धता होती तो क्यों शेषशायी विष्णुजी इनको ग्रहण करते अर्थात् सवारी क्यों करते क्या दूसरा इनको वाहन नहीं था सो नहीं गरुड़ जी महापवित्र हैं जो कहता है सोई अशुद्ध है और फिर देखिये कि सोमयाग छोटी है तिसमें भी छाग बलिदान लिखा है परन्तु बड़े यज्ञों का प्रमाण नहीं है न मालूम कितने होते होंगे तब तो पाखंडियों ने कहा कि यह नहीं होसक्ता तब तो शंकराचार्यजी ने कहा कि हम तुम को यज्ञ के स्थान का वर्णन करते हैं सो शास्त्र में देखलो ।

यज्ञभूमि का चित्र सोमयाग ।

पूर्वद्वार.

यूप

उत्तर वेदी

नाभी

शामित्रशाला

चात्वाल

आग्नीध्र शाला

हविर्धान

सोमरस निकालने का स्थान

उत्तरद्वार.

दक्षिणद्वार.

सभासदों के बैठने का स्थान

इस प्रकार नक़्शा देखकर ब्राह्मणों ने कहा कि जो यज्ञमें बलिदान होता था सो मुनिलोग उस पशुको जीवित करदेते थे तबतो शंकराचार्य बोले कि ऐसा नहीं है कि जो ऐसा होता तो बलिदान करने की क्या जरूरतथी क्योंकि ये तो काम्य कर्महै और पशुओंकी गतिका वृत्तांत वेदमें नहीं है इससे जो पशु यज्ञमें आता है वही पशु स्वर्ग को जाता है अन्य नहीं जिस पशुका संस्कार संकल्प ठीक २ होता है उसका दाता देवता मालिक होता है सो उस पशुको सब अंग पूर्णकर स्वर्ग को पहुँचाता है तब यजमान का काम सिद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं इसीतरह जो जीव अपनी मृत्यु से मरता है सो इसका मालिक यमराज है सो उसी तरहसे दशगात्र विधान से दशदिन में जीवका अंग पूर्ण होता है तब यमराज कर्मानुसार उस जीवको दंड सुख देते हैं और जो अकालमृत्यु से मरता है सो भूत होता है इसका सिद्धांत यह है कि मनुष्य का संस्कार पहिले नहीं होता।

कि हे ब्राह्मणाधमो ! तुम क्यों वेदविरुद्ध बात करते हो सो हे ब्राह्मणो ! हम तुमको यज्ञ व्याख्या सुनाते हैं कि किसप्रकार यज्ञ करना चाहिये और किसको अधिकार है सो हे ब्राह्मणो सुनो।

अथ यज्ञव्याख्याप्रारम्भः।

द्रव्यंदेवतात्यागः १ तदङ्गमितरत्समभिव्याहारप्रकरणाभ्याम् २ यजतयश्चाऽफलयुक्तस्तदङ्गम् ३ तिष्ठद्धोमावषट्कारप्रदानायाज्यापुरोनुवाक्यायन्तोयजतयः ४ उपविष्टहोमाःस्वाहाकारप्रदानजुहोतयः ५ ब्राह्मणऋत्विजोभक्ष्यप्रतिषेधादितरयोः ६ दर्शनाच्च ७ विगुणेफलनिवृत्तिरङ्गप्रधानभेदात्प्रायश्चित्तविधानाच्च ८ यथाचदृष्टम् ९ दृष्टेतत्परिमाणम् १० ऋचोयजूंषिसामानिनिगदामन्त्राः ११ मिथःसम्बद्धम् १२ तेषामारम्भेऽर्थतोव्यवस्थातद्वचनत्वात् १३ मन्त्रान्तैःकर्मादिस्सन्निपात्योभिधानात् १४ आधारेधारयांचादिसंयोगः १५ तआत्युक्ताः १६ उपांशुप्रयोगःश्रुतेः १७ नस्मप्रैषाः १८ (का० सू०)॥

पुरोडाशादि द्रव्य अग्नि आदि देवताओं के निमित्त त्यागना (आहुतिदेना) यह यज्ञपद वाच्य है

यही यज्ञयागइष्टि और यज्ञादि कहाते हैं १ प्रधानयज्ञ से पृथक् अग्नि उद्धरण, व्रतोपादन, ब्रह्मवरण, हविर्ग्रहण, हविप्रोक्षणादि सब कृत्य उस प्रधानयज्ञ के अंग हैं, कारण कि, ब्राह्मणभाग में इनको अंगरूप से कहा और प्रधानका प्रकरण बांधा है २ पौर्णमासादि इष्टियों से भिन्न जिनका फल कुछ नहीं कहा है वे प्रयाज अनुयाजादि यागपूर्वाघारादि होम भी प्रधान यज्ञ के अंग हैं ३ जिनमें खड़े होकर होम कियाजाय और वषट्कार बोलनेपर त्याग वाक्य के अन्त के साथ जिनमें आहुति दीजाती है यथा (अग्नयेऽनुब्रूहि) प्रैष के पीछे (अग्निर्मूर्द्धा०) इत्यादि होता के पढ़ाने की ऋचा अनुवाक्या यथा (अग्निंयज) इत्यादि प्रैष के पढ़ने के पीछे (ये यजामहे) से आरम्भ कर वौषट् पर्यन्त होता के पढ़ने की ऋचा याज्या कहीजाती है यह अनुवाक्या और याज्या जिनमें बोली जाती हैं वे यज्ञ यागादि कहाते हैं ४ और बैठकर होम तथा स्वाहाकार से जिनमें आहुति दीजाय वे होम हवनादि माने जाते हैं ५ अग्निहोत्र से लेकर कुछ ब्राह्मणों से भिन्न कोई न किये, कारण कि, क्षत्रिय वैश्यादि को यज्ञ करानेका अधिकार नहीं है यह (शा० १ । ३ । १ । ३६) तथा

दक्षिणा दीजाती है अन्यको नहीं इससे वेही अधिकारी हैं ६। ७ नित्य अग्निहोत्रादि कर्म के गौणाङ्ग में कोई त्रुटि रहजाय और उसका प्रधान भाग ठीक ठीक होजाय तो फलसिद्धि होती है, कारण कि, गौण और मुख्य भिन्न २ हैं, गौण की हानि मुख्य में बाधा नहीं पड़ती ८ अङ्गहीन नित्य कर्म में प्रायश्चित्त कहने से सिद्ध है कि, फल होता है ९ देखा भी है कि दूध न हो तो चावल वा यव से हवन करै यह नित्यकर्म जिस किसी प्रकार से हो करै यह शाखान्तर में कहा है इससे सिद्ध है कि, कहे अङ्गों में से किसी के छूट जानेपर अङ्गहीन भी श्रौत कर्म कर्तव्य मानना चाहिये, पर काम्यकर्म अङ्गहीन न करै और आरम्भ के उपरान्त अंगहीन होजाय तो प्रायश्चित्त करके पूरा करै १० यदि आधी इष्टि होनेपर वर्षा आदि होजाय वा मनोरथपूर्ति होजाय तो भी उस कर्मको पूराकर छोड़ै बीचमें न त्यागै ११ जिनके पाद अक्षर और अवसान नियतहैं वे ऋचा, जिनमें पाद अवसान का नियम नहीं वे इषेत्वा आदि यजु, गानकर उच्चारण होनेवाला अग्ना इ० वाक्यसाम कहाते हैं मंत्र ब्राह्मणों मे पढ़ेहुये अन्य ऋत्विजों के जतानेके निमित्त कहे जानेवाले प्रैषवाक्य निगद कहातेहैं, यह वाक्य मंत्रही हैं उपांशु और निगद उच्च स्वर से बोले जाते हैं, प्रोक्षणीरासादय यजु० १। २८ इध्मंबर्हिरुपसादय इत्यादि वाक्यसंहिता और ब्राह्मणों में

निगद कहातेहैं ११ यजुका जितना पद समुदाय परस्प
एक दूसरे से अन्वय सम्बन्ध रखनेवाला होता है व
एक वाक्य व एक यजु कहाता है, और उतनाही वाक्य
भिन्न २ एकएक कर्ममें विनियुक्त होताहै यथा इषेत्वा
ऊर्जेत्वा, वायवस्थ, इत्यादि एक एक वाक्य को एक
एक यजु जानना चाहिये १२ उन मंत्रोंका विनियोग
करने में विधान किये विषय का वर्णन करने रूप सा
मर्थ्य से व्यवस्था करनी चाहिये अर्थात् जो मंत्र जिस
अर्थ को प्रकाशित करे उसीका विनियोग उस काम में
करना चाहिये, कारण कि, वह उसी के करने योग्य कर्म
रूप अर्थ को कहताहै,

जहां विशेष कुछ होगा वह लिखेंगे १७ निगदपद वाच्य सम्प्रेष यजु अन्तर्गत होनेपर भी उपांशु न बोले ऊंचे स्वर से बोले १८ आपस्तंव कहते हैं अन्यत्राश्रुत प्रत्याश्रुत प्रवर संवाद सम्प्रैशेश्च १९ आश्रुत (ओ ३ म् आश्रावय) प्रत्याश्रुत (अस्तुश्रौ ३ षट्) प्रवर (अग्निर्देवोदेव्यो०) संवाद (संवदस्व अगानग्नीत्) तथा पूर्वोक्त संप्रेष निगद इनको छोड़ शेष यजुमंत्रों को उपांशु बोलना चाहिये। अव इसके आगे यज्ञके अधिकारियों का वर्णन करते हैं ॥

अथातोधिकारः १ फलयुक्तानिकर्माणि २ अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम् ३ ब्राह्मणराजन्यवैश्यानाश्रुतेः ४ स्त्रीचाविशेषात् ५ रथकारस्याधाने ६ निषादस्थपतिर्गावेधुकेऽधिकृतः ७ (का० श्रौ० सू०)॥

श्रौत कर्मका किसको अधिकार है सो कहतेहैं। १ अधिकारी को जिन कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये वे अभीष्ट स्वर्ग धन और पुत्रादि देनेवाले हैं, निष्फल कर्म में कर्ता का विचार नहीं कियाजाता, पर फल युक्तकर्मों में तो विचार कर्तव्यही है। २ उन अपूर्व फलवाले कर्मों का आरम्भ मनुष्य करसक्तेहैं इससे पे अधिकारी हैं काने अंधे वहरे आदि अंगहीन वेद के

अज्ञाता नपुंसक और शूद्र इनका यज्ञमें अधिकार नहीं है, कारण कि, इनसे यह कार्य सिद्ध नहीं होता। ३ मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको अधिकार है, कारण कि, इनको श्रौत कर्म संस्कार है। ४ इनके साथ से ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या भी यज्ञ की अधिकारिणी है, यथा—अदब्धेन० पत्न्याज्यमवेक्षेत इत्यादि इस मंत्र से पत्नी आज्य को देखे इत्यादि यहां वेद पढ़ने की बात नहीं है, किन्तु यज्ञ करने की बात है। ५ वर्षा ऋतु में रथकार अग्न्याधान करे यह ब्राह्मणभाग में देखने से रथकार का अग्न्याधानादि श्रौत कर्म में अधिकार है,

सोमामृतका वर्णन ।

ब्रह्मादयोऽसृजन्पूर्वममृतंसोमसंज्ञितम् ।
जरामृत्युविनाशायविधानंतस्यवक्ष्यते ॥ १ ॥
एकएवखलुभगवान्सोमःस्थाननामाकृति
वीर्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधाभिद्यते,

तद्यथा—

अंशुमान्मुञ्जवांश्चैवचन्द्रमारजतप्रभः ।
दूर्वासोमःकनीयांश्चश्वेताक्षःकनकप्रभः ॥ २ ॥
प्रतानवांस्तालवृन्तःकरवीरोंशवानपि ।
स्वयम्प्रभोमहासोमोयश्चापिगरुडाहृतः ॥ ३ ॥
गायत्र्यस्त्रैष्टुभःपाङ्क्तोजागतःशांकरस्तथा ।
आग्निष्टोमोरैवतश्च यथोक्तइतिसंज्ञितः ॥ ४ ॥
गायत्र्यात्रिपदायुक्तोयश्चोडुपतिरुच्यते ।
एतेसोमाःसमाख्यातावेदोक्तैर्नामभिःशुभैः ॥ ५ ॥
सर्वेषामेवचैतेषामेकोविधिरुपासने ।
सर्वेतुल्यगुणाश्चैव विधानंतेषुवक्ष्यते ॥ ६ ॥

ब्रह्मादिक देवताओंने पुरातनकाल में सोमनामक अमृत को उत्पन्न किया, यह अमृत वृद्धावस्था और मृत्यु के नाश के निमित्त है, अब हम उसका विधान कहते हैं—सोम तो एकही है परन्तु स्थान नाम आकृति

और वीर्य विशेष से चौवीस प्रकारका होता है, अंशुमान्, मुंजवान्, चन्द्रमा, रजतप्रभ, दूर्वासोम, कनीयान्, श्वेताक्ष, कनकप्रभ, प्रतानवान्, तालवृन्त, करवीर, अंशवान, स्वयंप्रभ, महासोम, गरुड़ाहृत, गायत्र, त्रैष्टुभ, पाङ्क्त, जागत, शांकर, अग्निष्टोम, रैवत, यथोक्त संज्ञक और त्रिपदा गायत्री युक्त, उडुपति, इस भांति चौवीस प्रकार के सोम वेदविहित नामवाले हैं इनके सेवनकी एकही विधि और गुणभी एकसे हैं आगे इनका विधान भी कहेंगे ॥ १-६ ॥

पात्रभेद का निर्देश।

अंशुमन्तं सौवर्णे पात्रे अभिषुणुयाच्चन्द्रम
सन्तं [illegible] गुणमैश्वर्यमवाप्येशानं देवम
[illegible] हन्तुं नाम [illegible] हितं नाम
[illegible] सोमा उपयोक्तव्याः
[illegible] चतुर्थमासे [illegible] निर्दिशेत् [illegible]
[illegible] ॥ ७

लिखे प्रयोगकर्म के उपरान्त चौथे महीने पूर्णिमाके दिन पवित्र भूमि में ब्राह्मणों का पूजन कर वाहर निकलै यथेच्छ व्यवहार करे ॥ ७ ॥

सोमपान का फल ।

ओषधीनांपतिंसोममुपयुज्याविचक्षणः ।
दशवर्षसहस्राणिनवांधारयतेतनुम् ॥ ८ ॥
नाग्निर्नतोयंनविषंनशस्त्रंनास्त्रमेवच ।
तस्यालमायुःक्षपणे समर्थाश्चभवन्तिहि ॥ ९ ॥
भद्राणांषष्टिवर्षाणांप्रसूतानामनेकधा ।
कुञ्जराणांसहस्रस्यवलंसमधिगच्छति ॥ १० ॥
क्षीरोदंशक्रसदनमुत्तरांश्चकुरूनपि ।
यत्रेच्छतिसगन्तुंवातत्राप्रतिहतागतिः ॥ ११ ॥
कन्दर्पइवरूपेणकान्त्याचन्द्रइवापरः ।
प्रह्लादयतिभूतानांमनांसिसमहद्द्युतिः ॥ १२ ॥
साङ्गोपाङ्गांश्चानिखिलान्वेदान्विन्दतितत्त्वतः ।
चरत्यमोघसङ्कल्पोदेववच्चाखिलञ्जगत् ॥ १३ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य सोमका सेवन करते हैं वे १०००० दश हजार वर्षतक नवीन देहधारण किये रहते हैं अग्नि जल विष शस्त्र अस्त्र उसकी आयु नाश करने में समर्थ नहीं होसके, मदमस्त साठ वर्ष के हाथी में जो वल होता है ऐसे साठ हजार हाथियों का उसमें

वस होताहै वह मनुष्य क्षीरसमुद्र इन्द्रपुरी उत्तर कुरु आदि स्थानों में जासक्ता है, कोई भी उसकी गति नहीं रोकसक्ता. रूपमें कामदेव के तुल्य और कान्ति में चन्द्रमा की समान महाकान्तिमान् होकर, मनुष्यों के मनको प्रसन्न करता है. तथा साङ्गोपाङ्ग वेदों में तत्त्व का ज्ञाता होकर देवताओं की समान सम्पूर्ण जगत् में विचरता है, तथा उसकेसंकल्प अनिवार्य होतेहैं==१२॥

सोमरसताकी परीक्षा।

इसी से इसको सोमलता कहते हैं, सोम नाम चन्द्रमाका है॥ १४। १६॥

अंशुमान्रजतप्रभमुंजावानकेलक्षण॥

अंशुमानाज्यगन्धस्तुकन्दवान्रजतप्रभः।
कदल्याकारकन्दस्तुमुञ्जावाँल्लशुनच्छदः॥१७॥

अंशुमान्सोम में घीके समान सुगन्धि होती है, रजतप्रभ में कन्द होताहै मुंजवान् में कदली के आकार का कन्द और लहसुन के समान पत्ते होते हैं॥ १७॥

चन्द्रमागरुडाहृतश्वेताश्वकालक्षण।

चन्द्रमाःकनकाभासोजलेचरतिसर्वदा।
गरुडाहृतनामाचश्वेताक्षश्चापिपाण्डुरौ॥ १८॥
सर्पनिर्मोकसदृशौतौवृक्षाग्रावलम्बिनौ।
तथान्यैर्मण्डलैश्चित्रैश्चित्रिताइवभान्तिते १९॥

सुवर्ण के समान कान्तिमान् और जल में प्रगट होनेवाला सोम चन्द्रसंज्ञकहै गरुडाहृत और श्वेताक्ष यह पाण्डु वर्णके होते हैं, सर्प की केंचुली के समान वृक्ष के अग्रभाग में लटके रहते हैं, और भी अनेक प्रकारके चित्र विचित्र मण्डल उसमें होतेहैं॥१८।१९॥

सर्वएवतुविज्ञेयाःसोमाःपञ्चदशच्छदाः।
क्षीरकन्दलतावन्तःपत्रैर्नानाविधैःस्मृताः॥२०॥

सबही प्रकार के सोमों में पन्द्रह पत्ते होते हैं इन में दूध कन्द और लता होती हैं परन्तु पत्ते भांति २ के होते हैं ॥ २० ॥

सोमलताका स्थान ।

हिमवत्यर्बुदेसह्ये महेन्द्रेमलयेतथा ।
श्रीपर्वतेदेवगिरौगिरौदेवसहेतथा ॥ २१ ॥
पारियात्रेचविन्ध्येचदेवसुन्देह्रदेतथा ।
उत्तरेणवितस्तायाः प्रवृद्धायेमहीधराः ॥ २२ ॥
पञ्चतेषामधोमध्येसिन्धुनामामहानदः ।
ह्रठवत्प्लवतेतत्रचन्द्रमाःसोमसत्तमः ॥ २३ ॥
तस्योद्देशेषुवाप्यस्तिमुञ्जवानंशुमानपि ।
काश्मीरेषुसरोदिव्यंनाम्नाक्षुद्रकमानसम् ॥ २४ ॥
गायत्र्यस्त्रैष्टुभःपाङ्क्तोजागतःशाङ्करस्तथा ।
अत्रसन्त्यपरेचापिसोमाःसोमसमप्रभाः ॥ २५ ॥

हिमालय, अर्बुद (आबू पर्वत) सह्याद्रि, महेन्द्राचल, मलयागिरि, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारियात्र, विन्ध्याचल, देवसुन्द, सरोवर व्यास नदी के उत्तर पर्वतों में तथा जहां पंजाबकी पांचोनदी सिन्धुमें मिलती हैं वहां चन्द्रनामक सोम उत्पन्न होता है, उन्हीं के समीप अंशुमान् और मुंजवान् सोम भी हैं काश्मीर के उत्तर मानसरोवर में गायत्र्य, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत

और शाङ्कर तथा और भी चन्द्रमा के समान कान्ति॰ वाले सोम प्रगट होते हैं विशेषकर यज्ञों में इन्हीं का व्यवहार होता है ॥ २१–२५ ॥

नतान्पश्यन्त्यधर्मिष्ठाःकृतघ्नाश्चापिमानवाः।
भेषजद्वेषिणश्चापिब्राह्मणद्वेषिणस्तथा ॥ २६ ॥

अधर्मी, कृतघ्नी, वैद्यद्वेषी, ब्राह्मणद्रोही, पुरुषों को सोमलता का दर्शन नहीं होता है ॥ २६ ॥

सोमविधान ॥

अतोन्यतमंसोममुपयुयुक्षुःसर्वोपकरणपरिचारकोपेतः प्रशस्तदेशेत्रिवृतमागारंकारयित्वाहृतदोषःप्रतिसंसृष्टंभक्तःप्रशस्तेपुतिथिकरणमुहूर्तेनक्षत्रेष्वंशुमन्तमादायाध्वरकल्पेनाहृतमभिषुतमभिहुतंचान्तरागारेकृतमङ्गलः सोमकन्दंसुवर्णसूच्या विदार्य्यपयोगृह्णीयात् सौवर्णेपात्रेऽञ्जलिमात्रंततः सकृदेवोपयुञ्जीतनास्वादयंस्तत उपस्पृश्यशेषमप्स्ववसाद्ययमनियमाभ्यामात्मानं संयोज्य वाग्यतोऽभ्यन्तरतःसुहृद्भिरुपास्यमानोविहरेत् २७

सोमसेवनकी इच्छा करनेवाले पुरुष को उचित है कि उत्तम भूमिमें एक त्रिवृत स्थान बनवावे, अर्थात् जिसके बाहर की ओर तीन परकोटे हों, उसमें सब

प्रकार की सामग्री रखकर सबप्रकार के कर्म करने में निपुण परिचारकों को नियुक्तकरै, स्वयं वमन विरेचन से शुद्ध होकर उचित भोजन का नियमकर शुभ तिथि करण मुहूर्त नक्षत्रमें अंशुमान् सोमका अग्निष्टोम विधि से लाकर ऋत्विजों से कुटवाय हवन करावे फिर घरके भीतर बैठ मङ्गलपाठ कराय सोमकन्द को सुवर्णकी शलाका से चीरे, उसके रसको सुवर्णपात्र में भर ले, उसमें से एक अंजली (कुड़व) भर विना स्वाद लिये एक साथ पीजाय, फिर जलसे आचमन कर शेषको जल में डाल यम नियम से चित्त की वृत्तियों को रोक मौन साधकर मित्रोंके सहित उस घरमें बैठे उठे २७॥

रसायनंपीतवांस्तु निवातेतन्मनाःशुचिः ।
आसीततिष्ठेत्क्रामेच्चनकथंचनसंविशेत् ॥ २८ ॥

रसायन पिये मनुष्य को उसी औषधी में चित्त लगावे निवात स्थानमें पवित्र होकर बैठना चाहिये कभी बैठे कभी टहले पर सो न जाय ॥ २८ ॥

सायंवाभुक्त्वांच्छुतशान्तिः कुशशय्यायांकृष्णाजिनोत्तरायांसुहृद्भिरुपास्यमानः शयीततृषितोवाशीतोदकमात्रापिवेत् ततःप्रातरुत्थायोपश्रुतशान्तिःकृतमङ्गलोगांस्पृष्ट्वातथैवासीत। तस्यजीर्णेसोमेच्छर्दिरुपपद्यते ततःशोणिताक्तंकृमिव्यामि

श्चर्द्धितवतः सायंशृतशीतंक्षीरं वितरेत्। ततस्तृतीयेऽहनिकृमिव्यामिश्रमतिसार्य्यते। सतेनानिष्टप्रतिग्रहभुक्तप्रभृतिभिर्विशेषैर्मुक्तः शुद्धतनुर्भवति। ततःसायंस्नातस्य पूर्ववदेवक्षीरंवितरेत्। क्षौमवस्त्रास्तृतायांचैनंशय्यायां शाययेत्। ततश्चतुर्थेऽहनि तस्य श्वयथुरुत्पद्यते। ततःसर्वाङ्गेभ्यःकृमयो निष्क्रामन्तितदहश्चशय्यायांशुभिरवकीर्य्यमाणः शयीत॥ २८॥

सन्ध्यासमय भोजन करै, और मङ्गलपाठ श्रवण उपरांत कुशा के तृण से बुनी खाटकर मित्रगणों से सेवित मृगचर्म्म बिछाय शयन करै, प्यास लगे तो थोड़ा थोड़ा ठण्डा जल पीने, फिर प्रभातसमय उठ मङ्गलपाठ और स्वस्तिवाचन से आनन्दित हो गौ का स्पर्शकर पूर्वकी ओर बैठे, कोई कहतेहैं, गोदान करै सोमरसके पचनेपर वमन होने लगती है, यहांतक कि, उसमें रुधिर और कीड़े आने लगतेहैं, ऐसा होनेपर सायं समय औटाया हुआ दूध ठण्डाकर पान करावे तब तीसरे दिन दस्त आने लगतेहैं, जिसमें कीड़े भी निकलतेहैं, ऐसा होनेसे अनिष्ट प्रतिग्रह भोजनके दोषों से निर्मुक्त होकर शुद्धदेहवाला होजाता है, फिर भी संध्यासमय स्नान कराय प्रथम की समान दुग्धपान

करावे, और रेशमीवस्त्र बिछी शय्यापर शयन करावे, तब चौथे दिन इस मनुष्य की देहमें सूजन उत्पन्न होती है और सब देहसे कीड़े गिरने लगतेहैं, उस दिन शय्या पर धूरि बिछाय सुवावे ॥ २६ ॥

ततःसायंपूर्ववदेवक्षीरंवितरेत् । एवंपञ्चमषष्ठयोर्दिवसयोर्वर्तेत । केवलमुभयकालमस्मैक्षीरंवितरेत् । ततःसप्तमेऽहनिनिर्मांसस्त्वगस्थिभूतः केवलंसोमपरिग्रहादेवोच्छ्वसिति तदहश्चक्षीरेण सुखोष्णेन परिषिच्यतिलमधुकचन्दनानुलिप्तदेहं पयःपाययेत् । ततोऽष्टमेऽहनिप्रातरेवक्षीरपरिषिक्तं चन्दनप्रदिग्धगात्रं पयःपाययित्वा पांशुशय्यां समुत्सृज्यक्षौमास्तृतायां शाययेत् । ततोमांसमाप्याप्यते त्वक्चावदलति, दन्तनखरोमाणिचास्य पतन्ति तस्य नवमदिवसात् प्रभृत्यणुतैलाभ्यङ्गःसोमवल्ककषायपरिषेकः ॥३०॥

फिर संध्यासमय पहले की समान दूध का पान करावे इसीप्रकार पांचवें छठे दिन करे दोनों समय दूध का पान करावे फिर सातवें दिन उस मनुष्य की मांस त्वचा जाती रहती है केवल अस्थिमात्र शेष रहजातीहै सोमके सहारेसेही केवल सांस लेताहै उस दिन उसके देहपर थोड़ा गरम दूध डालकर तिल मुल-

हठी और चन्दन का लेप कर दे और दूधपान करावे फिर आठवें दिन प्रातःकालही दूधसे परिषेक करके चन्दन लगाय दूध पिआय धूल की शय्या से उठाकर रेशमी वस्त्र बिछी हुई शय्यापर शयन करावे, तब इसकी अस्थियोंपर मांस आने लगताहै त्वचा हटती जाती है, दांत, नख, रोम गिर पड़तेहैं, नौवें दिन अणुतैल लगाकर सोमकी छालके काथ से सेवन करावे ॥ ३० ॥

ततोदशमेऽहन्येतदेववितरेत् । ततोऽस्यत्वक्स्थिरतामुपैति एवमेकादशद्वादशयोर्वर्त्तेत तत्र त्रयोदशात्प्रभृतिसोमकल्ककषायपरिषेक एवमाषोडशाद्वर्त्तेत ततः सप्तदशाष्टादशयोर्दिवसयोर्दशनाजायन्ते । शिखरिणः स्निग्धवज्रवैदूर्य्यस्फटिकनिकाशाः समाः स्थिराः सहिष्णवः । तदाप्रभृतिचानवैः शालितण्डुलैः क्षीरयवागूमुपसेवेतयावत्पञ्चविंशतिरिति, ततोस्मैदद्याच्छाल्योदनं मृदूभयकालंपयसा । ततोऽस्यनखाजायन्ते विद्रुमेन्द्रगोपकतरुणादित्यप्रकाशाःस्थिराः। स्निग्धालक्षणसम्पन्नाः केशाश्चजायन्ते त्वक्चनीलोत्पलातसीपुष्पवैदूर्य्यप्रकाशा। ऊर्द्धंचमासात्केशान्वापयेद्वापयित्वा चोशीरचन्दनकृष्णतिलकल्कैः शिरः प्रदिह्यात्पयसावास्नापयेत् ॥ ३१ ॥

इसीप्रकार दशवें दिन उपचार करै उसदिन इसकी त्वचा कुछ कठोरता धारण करतीहै, इसीप्रकार ग्यारहें और बारहवें दिन करै, तेरहें दिनसे सोमकल्क के काथ से स्नान करता रहै, इसप्रकार सोलह दिनतक करै फिर सत्रह और अठारह इन दो दिनों में दांत निकल आते हैं, यह दांत शिखरदार चिकने हीरे वैदूर्य्य और स्फटिक के समान कांतिवाले समान स्थिर और कड़ी वस्तुके तोड़नेवाले होते हैं, उस दिन से पच्चीसवें दिनतक पुराने शालीचावल दूध और यवागूका सेवन करै, फिर शाली चावलों का भात दूध के संग खातारहै फिर नख निकल आते हैं ये नख मूंगे बीरबहूटी और प्रभातके सूर्य की समान लाल स्थिर चिकने और सर्व लक्षण सम्पन्न होते हैं फिर चिकने और सर्वलक्षण सम्पन्न केश भी उगतेहैं नील कमल अलसी के फूल और वैदूर्य की समान त्वचा उत्पन्न होती है, एक महीनेपीछे केश मुड़वाकर उसीपर चन्दन और काले तिलका शिर पर लेपकरै और पानी से धो डाले ॥ ३१ ॥

ततोऽस्यानन्तरं सप्तरात्रात्केशाजायन्ते, भ्रमराञ्जननिभाःकुञ्चिताः स्निग्धास्ततस्त्रिरात्रात्प्रथमपरिसरान्निष्क्रम्यमुहूर्त्तं स्थित्वापुनरेवान्तःप्रविशेत् ततोऽस्यबलातैलमभ्यङ्गार्थेऽवचार्य्यम् । यवपिष्टमुद्वर्त्तनार्थे सुखोष्णञ्चपयःपरिषेकार्थे ।

अजकर्णकषायमुत्सादनार्थं । सोशीरंकूपोदकंस्ना
नार्थं । चन्दनमनुलेपार्थं । आमलकरसविमिश्रा
श्चास्ययूषसूपविमिश्राश्चास्य यूषसूपविकल्पाः
क्षीरमधुकसिद्धञ्चकृष्णतिलयवचारणार्थं । एवं
दशरात्रं ततोऽन्यद्दशरात्रं द्वितीयेपरिसरेवर्तेत, त
तस्तृतीये परिसरेस्थिरीकुर्वन्नात्मानमन्यद्दशरात्र
मासीत किञ्चिदातपपवनान् वा सेवेत पुनः स्वा
न्तः प्रविशेत् । नचात्मानमादर्शेषु वानिरीक्षेतरू
पशालित्वात् । ततोन्यद्दशरात्रं क्रोधादीन्परिहरे
देवंसर्वेषामुपयोगः । विशेषतस्तुवल्लीप्रतानक्षुपा
द्यः सोमभक्षयितव्याः तेषान्तुप्रमाणमर्द्धचतुर्थ
मुष्टयः ॥ ३२ ॥

तब सात दिनके पीछे भौंरे अथवा अंजन के समान काले घूंघरवाले चिकने बाल उत्पन्न होजांयगे, पश्चात् तीसरे दिन पहले घरसे निकलकर दूसरे में आवे, घड़ी दो घड़ी रुककर भीतर ही घुसजाय, तथा बला का तेल मलवाने लगे, यव की पट्टी का उबटना करै, थोड़े गरम जलसे परिषेक करै, उत्सादन के निमित्त रालके वृक्षकी छालका काढ़ा दे, खस डालकर कूपोदक स्नानमें देतेहैं, अनुलेपन के लिये चन्दन दे, आमले का रस मिलाकर यूष और दालका सेवन

करै, दूध और मुलहठी डालकर काले तिलों से अव-चारण करै, इसप्रकार दश दिन करके दूसरे दश दिन में दूसरे घरमें आवै, फिर दश दिन पीछे तीसरे घरमें आया जाया करै, थोड़ी देर हवा और धूपमें फिरकर फिर भीतर चलाजाय, अत्यन्त रूपवान् होनेसे अपना मुख दर्पण में न देखे, फिर दश दिन तक क्रोधादि न करै, यही विधि सबप्रकार के सोमों के सेवन करने की है, विशेषकर बेल लता और क्षुपादि सोमों का भ-क्षण करना चाहिये इनकी मात्रा साढ़ेचार मुष्टि अर्थात् अठारह तोले हैं । चार महीने उपरान्त यथेच्छ विहरै इसप्रकार सुश्रुत में सोमका वर्णन किया है रसायन प्रयोग से कायाकल्प होजाता है और यज्ञादिमें सेवन से बुद्धि और आयु बढ़ती है अब इसके आगे यज्ञके पात्र वर्णन करते हैं ॥ ३२ ॥

यज्ञपात्रवर्णनम् ॥

अथ यज्ञपात्राणिकात्यायनसूत्रे ।

वैकङ्कतानिपात्राणि १ खादिरःस्रुवः २ स्फ्य श्च ३ पालाशीजुहूः ४ आश्वत्थ्युपभृत् ५ वार णान्यहोमसंयुक्तानि ६ बाहुमात्र्यःस्रुच्यः पाणि मात्र पुष्कराल्वग्विलाहंसमुखप्रसेकामूलदण्डा भवन्ति ७ अरत्निमात्रःस्रुवोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्क

रः ८ स्फ्योऽस्याकृतिः ९ आदर्शाकृतिप्राशित्र हरणंचमसाकृतिर्वा १० चत्वालोत्करावन्तरेण संचरः ११ प्रणीतोत्करावविष्टिषु १२

कातीये यज्ञपात्राणि सर्वाणि वैकङ्कतानि यथा उलूखलमुशलकूर्चेडा पात्रीशम्याश्रृता वदानमेक्षणभूर्युपवेशान्तर्धानकटप्राशित्रहरणषड्वर्तब्रह्मयजमानासनहोतृषादनादीनि।

यज्ञपात्र सामान्यतः विकङ्कत (वेहली, कंटाय) वृक्षके होने चाहिये यह स्वादुकण्टक और ग्रन्थिल कहाता है, चीते के पैरकी समान इसकी जड़ होती है १ खैरका स्रुव २ तथा इसी की सामान्य दृष्टि में स्फ्य होतीहै ३ जिससे अग्निमें आहुती दीजातीहै वह जुहू ढाक की बनानी चाहिये, ४ जुहू के निकट धरी जाती है यह उपभृत पीपल की होनी चाहिये ५ उलूखल मूसल आदि होमसे पृथक् कार्य में आनेवाले यज्ञपात्र सामान्यतः अरना वृक्षके होने चाहिये ६ जो एक स्थानमें निश्चल धराहै वह ध्रुवा विकङ्कतका होना चाहिये, तीनो स्रुवे वाहुमात्र डेढ़ हाथ लम्बे हों हाथके पुन्जे के बराबर मुखकी गहराईवाले त्वचभाग की ओरसे स्पुरसुखवाले चीरा लकड़ी के भीतर से जिनका मुख न खुदा हो हंसके मुखकी समान घृत गिरने के निमित्त एक टाल नाली जिनमें बनी हो मूल अर्थात्

काष्ठ के अग्रभाग की ओर जिनका दंड (मुख) हो ऐसे तीनों स्रुवे बनावै ७ स्रुवा चौवीस अंगुल लम्बा हो अंगुष्ठ के पोर प्रमाण गहरा और उतनाही गोलाकारमुखहो ८ तलवारकी आकृतिवाली [दुधारा खांडा] स्फ्य बनावै ९ दर्पण के समान गोल वा चमसतुल्य चतुष्कोण प्राशित्र प्रहरण बनावै १० उत्तर वेदी जिनमें बनाई जाती है ऐसे चत्त्वालवाले वरुण प्रघास महाहविष् पशुयाग और सोमयागों में चत्त्वाल और उत्कर के बीचसे सबके निकलने का संचर मार्ग होताहै ११ दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में प्रणीता और उत्करके मध्य से संचरमार्ग माना जाता है ॥ १२ ॥

ऊखल, मूसल, कूर्च, इडापात्री, पुरोडाशपात्री, शम्या, शृता व दानमेक्षण अभ्रि उपवेष अंतर्धानकट, प्राशित्रहरण, षड्वर्त, ब्रह्मा, यजमान और होताके आसन, और यह अहोमसंज्ञक पात्र वरना के बनाने चाहिये क्रमसे लक्षण ॥

"उलूखलंचमुसलं स्वायतेसदृढेतथा ।
इच्छाप्रमाणेभवतः शूर्पंवैणवमेवच ॥ १ ॥

अन्यच्च—

"खादिरंमुसलंकार्यं पालाशःस्यादुलूखलः ।
यद्वोभौवारणौकार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ ॥ २ ॥
कौशःकूर्चोबाहुमात्रो मकराकारउच्यते ।

इच्छाप्रमाणातुदृषत्प्रोक्ता पाषाणसंभवा ॥ ३ ॥
उपलोवर्तुलःप्रोक्तो वितस्तिपरिमाणकः।
इडापात्रीतथाचान्या रत्निमात्राप्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
प्रोक्ताहविर्धानपात्री विपुलाद्वादशाङ्गुला।
पिष्टपात्रीचसैवोक्ता चतुरस्राप्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
पुरोडाशस्यपात्रीतु चतुरस्रासमानतः।
खातेनवर्तुलेनैव युतायज्ञेप्रशस्यते ॥ ६ ॥
शम्याप्रादेशमात्रीस्यात्खादिरःस्फ्यःप्रकीर्तितः।
खड्गाकारोऽरत्निमात्रो वज्ररूपोमखेस्मृतः ॥ ७ ॥
अङ्गुष्ठपर्वमात्रंतु तीक्ष्णाग्रंपृथुवक्त्रकम्।
शृतावदानंप्रादेशमात्रदीर्घमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणंमेक्षणंभवेत्।
अभ्रिस्तीक्ष्णमुखाज्ञेया खादिरारत्निसम्मिता ९॥
उपवेशोऽरत्निमात्रो हस्ताकारस्तुखादिरः।
अन्तर्धानकटःप्रोक्तोद्वादशाङ्गुलसम्मिताः १०॥
अर्धचन्द्रसमाकारः किंचिदुच्छ्रितशीर्षकः।
षडङ्गुलप्रमाणन्तु षडुर्तंचतुरस्रकम् ॥ ११ ॥
तथाचाभयतःखातं वारणंतत्प्रचक्षते।
यजमानासनंपत्न्या आसनंचपृथक्पृथक्॥१२॥
होमासनंतथाब्रह्मासनं विस्तारयोगतः।

अरत्निमात्राण्येतानिकथितानिमनीषिभिः १३॥"

उलूखल मूसल काष्ठ के होने चाहिये पत्थर के नहीं अच्छे दृढ़ बने हों लम्बाई इच्छानुसार करे अथवा नाभिमात्र ऊंचे करे, खैर का मूसल और ढाक का उलूखल बनावे कहीं पर गूलर का बनाना लिखा है अथवा दोनों वरना वृक्षके बनावे यह न हो तो अन्य यज्ञीय वृक्षके हों पर वरना मुख्य है छाज बांसकाही हो सिरकी आदिका नहीं कुशाका कूर्च बाहुमात्र मकराकार बनावे अग्निहोत्रमें अग्निहोत्र हवणी व स्रुा कूर्च पर धरी जाती है शिल पत्थर की इच्छानुसार बनावे, लोढ़ा गोल एक बिलस्त के परिमाण का हो, इडापात्री दो प्रादेश २४ अंगुल लम्बी, बीचमें संकुचित पतली निर्माण करे, भाग परिहरण के समय में इसमें सब पुरोडाशादि हवियों के अंश लेकर यजमानोंको ऋत्विज पांच भाग धरके उपादान करते हैं, इसीको पंचावत्तं इडा कहते हैं दूसरी हविष धरने की बड़ी पात्री को पिष्टपात्री कहते हैं, पुरोडाशपात्री १२ अंगुल लम्बी चौड़ी सम चतुष्कोण अर्थात् जिसके भीतर सब ओर छः अंगुल अवकाश हो यह कितनी ही हों अर्थात् जिस हविमें जितने पुरोडाश हों उतनीही पुरोडाशपात्री रक्खे शम्या बारह अंगुल लम्बी हो जिसे गाड़ी के जुये में लगाते हैं जो लोकमें सैला कहाता है, यह दृषदों में हविष पिसते समय उत्तर को अग्रभाग कर शिलके

नीचे लगाई जाती है, और सोमयाग में सोम लेचलने के समय शकटमें बैल जोनने के समय लगाई जाती है यह खैर की होती है, और स्फ्य खड्ग के आकार अरत्नि (२४ अंगुल) लम्बा वज्ररूप होता है शृतावदान एक प्रादेशमात्र लम्बा अंगुष्ठ के पोरुयेभर जिसका मुख मोटा चौड़ा हो अग्रभाग इतना तीक्ष्ण हो कि जिससे पक्व पुरोडाश के टुकड़े हो सकें, इसीसे इसकी शृतावदानसंज्ञा है, सामिधेनी ऋचाओं में चढ़ाने-वाली समिधा जिन २ ढाक बेल कंभारी आदि वृक्षोंकी होती हैं उन्हीं काष्ठों में से किसीका प्रादेशमात्र लम्बा अग्रभाग करके उसमें करछी के सदृश गोल अंगुष्ठ के पोरुवे की समान व्यासवाला चरुके अवदान करनेका पात्र मेक्षण कहाता है, एक अरत्निमात्र लम्बी अग्रभाग में तीक्ष्ण अभ्रि वेदी खोदने के निमित्त बनानी चाहिये यह भी खैरकी हो, कपालोपधानादि के समय अग्नि के अंगार संभालने के निमित्त हस्ताकार खैरका एक अरत्निमात्र लम्बा उपवेश बनावे, आधे चन्द्रमा की समान बारह अंगुलका अन्तर्धान कर कुछ ऊंचे शीर्ष-वाला बनावे, पत्नीसंयाज में देवपत्नियों को आहुति देते समय यह गार्हपत्यकुण्ड से पूर्व में किया जाताहै दोनों ओर खानोंवाला बारह अंगुल लम्बा षडवत्त होता है इसमें अग्नीध्र के भोजन को द्यावापृथिवी सम्बन्धी दो भाग रक्खे जातेहैं. यजमानासन, पत्न्या-

सन, होत्रासन, ब्रह्मासन, यह चौबीस अंगुल लम्बेहों, चतुष्कोण हों, वरनाके बने हों सबपात्र मूल जानने के निमित्त मूलकी ओर कुछ गोल और मोटे रहैं, अग्रभाग की ओर वैसा चिह्न न हो ॥

नित्य अग्निहोत्र होम के निमित्त अग्निहोत्र हवणीमायक स्रुवविकङ्कत का होना चाहिये पौर्णमासादि इष्टियों में यही प्रोक्षणीपात्र होता है, अग्निहोत्र होम का स्रुव विकङ्कतकाही हो, पौर्णमासादिक स्रुव खैरका हो, सोमयाग में ग्रहचमस और द्रोण कलशादिपात्र विकङ्कत के होने चाहिये उनमें हविर्धान (सोम लेचलनेका शकट) अधिषवण (सोम कूटनेकी चौकी) परिप्रया संभरणी आदि होमसे भिन्न कार्य्यों के पात्र वरनाके ही हों, षोडशीयाग का पात्र खदिरका हो, अश्वदाभ्यग्रह ग्रहणका पात्र गूलर का हो, वाजपेयी याग में ११ सोमग्रहपात्र और १७ सत्रह सुराग्रह पात्र वरनाही के होते हैं, कोई सुराग्रहपात्र मिट्टी के कहते हैं (सुरालौकिक मद्य नहीं है यह एकप्रकारका शुद्ध आसव रन पुष्टिकारक है) यह लौकिक सम्प्रदायक है, महर्षि ग्रंथ यज्ञ के चमस नाम सोम पीने के पात्रों का इसप्रकार वर्णन है ॥ १ । १२ ॥

"चमसानांप्रवक्ष्यामि दण्डाःस्युश्चतुरङ्गुलाः ॥
दैर्घ्यं तु सम्यङ्नवकं वक्त्रोविस्तारश्चतुरङ्गुलः १४ ॥

विकङ्कतमयाःश्लक्ष्णास्त्वग्बिलाश्चमसाःस्मृताः।
[दशाङ्गुलमितादीर्घाश्चतुरङ्गुलविस्तृताः ॥
चतुरङ्गुलखाताश्चदण्डास्तुद्व्यङ्गुलामताः।
षडङ्गुलमितोच्छ्रायास्तेषां दण्डेषुलक्षणम् ॥]
अन्येभ्योवापिवाकार्या तेषांदण्डेषुलक्षणम्।
होतुर्मण्डलएवस्याद्ब्रह्मणश्चतुरस्रकः ॥
उद्गातृणास्त्र्यस्त्रिः स्याद्याजमानःपृथुःस्मृतः।
प्रशास्तुरवतष्टःस्यादतष्टोव्रतशंसिनः ॥
पोतुरग्रेविशाखीस्यान्नेष्टुःस्याद्धविग्रहीतकः।
अच्छावाकस्यरास्नाव आग्नीध्रस्यमयूखकः ॥
इत्येतेचमसाःप्रोक्ताऋत्विजां यज्ञकर्मणि।
पलाशाद्वावटाद्वान्य वृक्षाद्वाचमसाःस्मृताः ॥"
"नैयग्रोधाश्चमसाश्चतुरस्राःप्रस्थोदन्याहिण"॥
इति निगमे विशेषः। स्मृत्यर्थसारे—
"समित्पवित्रंवेदंचमुसलोलूखलंग्रहान्।
नाभ्युपवासन्युपरवाञ्छम्यस्तुदपुष्कराणिच ॥
शाम्यारवरुविषाणानि चरूणांमेक्षणानिच।
कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीरास्त्रयस्तथा ॥
द्रोणकलशःपलशतग्राही पारिप्लवाकृतिः।
जानुमात्रमुलूखलंपालाशं, पञ्चविंशतिः ॥

पलमिडापात्रम् । मुसलंखादिरंत्र्यरत्नि । अरत्निप्रमाणा दृषदित्यादि" ॥ २४ ॥

सब चमसोंकी डंडी चार अंगुल होनी चाहिये, उन की डंडी के समीप ३ अङ्गुल के स्कंधहों उनकी लम्बाई चार अङ्गुल हो यह सब विकङ्कत के हों चिकने बनेहों, उनमें त्वचा की ओर से गड्ढा खुदाहुआ हो [सवचमसदश अङ्गुल लम्बे चार अङ्गुल चौड़े चार अंगुल खातवाले दो अंगुलके दण्ड और छः अंगुल ऊंचे हों] अथवा अन्य यज्ञीय वृक्षों से बने हों पर उनके दंडों में ऐसे चिह्न करने चाहिये जिससे विदित होजाय कि, यह अमुक ऋत्विजकाहै, होता का गोलाकार, ब्रह्माकाचतुष्कोण, उद्गाता त्रिकोण, यजमान का हाथ की बराबर लम्बा, प्रशास्ता का नीचे से छिन्न, ब्राह्मणाच्छंसी का ऊपर से छिन्न,पोता का अग्रभागमें विशाखावाला,नेष्टा का अग्रभाग में ग्रहीन [जिसमें सब ओर दुहरी रेखा हों] अच्छावाक का रास्ना व, आग्नीध्र का मयूखक अग्रभागमें तीक्ष्ण हो, यह सब चमसगण यज्ञकर्म में पलाश व अन्य वृक्षों के बनाये जांय, निगममें इतना विशेषहै कि न्यग्रोध वृक्षसे बने चौकोन सेरभर जल समाने योग्य चमसहों, तथा सामित्र पवित्र वेद मूसल, ऊखल महनानि दृषदी चौकी, उपर व शम्या । स्रुचों के मूल, शाखा, मध्य, कृष्णाविषाणा, चरुओं के मेक्षण

(कर्छी) तीनों महावीर, यह सब प्रादेशमात्र बनावै सो पल रस समानेवाला तौवेके आकार द्रोण कलश बनावै, जानुमात्र वा सवा हाथ लम्बा ढाकका उलूखल यज्ञमें बनावै, पच्चीस पल रस समानेवाला इडापात्र बनावै, खादिर का मुशल ३ अरति ढाई हाथ का लम्बा हो २०वा चौवीस अंगुल की शिला होनी चाहिये १४।२४

"आज्यस्थालीतैजसीवा मृन्मयीवाप्रकीर्तिता ।
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णा प्रादेशोच्चाशुभास्मृता ॥
आज्यस्थालीसमानैव चरुस्थालीप्रशस्यते ।
प्रणीतावारणाग्राह्या द्वादशाङ्गुलसम्मिता ॥
खातेनहस्तलवद्दाकृत्यपद्मपत्रवत् ।
खादिरोबाहुमात्रस्तु जुहूस्तुक्संज्ञकःस्रुवः ॥
अरत्निमात्रोहंसास्यो वर्तुलोङ्गुष्ठपर्ववत् ।
अर्धपर्वप्रणाल्याच युक्तोनासाकृतिर्भवेत् ॥
उपभृत्स्रुग्ध्रुवास्रुक्च पुष्करस्रुक्तथैवच ।
अग्निहोत्रस्यहवणी तथावैकङ्कतःस्रुचः ॥
एतेपान्येचबहवः स्रुवभेदाःप्रकीर्तिताः ।
वर्तुलास्याःशङ्कुमुखाः पर्वखाताःसमानकाः ॥
अश्वत्थो यःशमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।
तस्यशाखाप्राङ्मुखीशाखा उदीचीचोर्ध्वगापिवा ॥

अरणिस्तन्मयीप्रोक्ता तन्मध्येचोत्तरारणिः।
सारवद्दारवंचात्र मोविलीचप्रशस्यते॥
संसक्तमूलोयःशम्याः सशमीगर्भउच्यते।
अलाभेत्वशमीगर्भादाहरेदविलम्बितः॥
चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठदैर्घ्यंषडपिपार्थिवम्।
चत्वारउच्छ्रयेमानमरण्योःपरिकीर्तितम्॥
अष्टाङ्गुलःप्रमस्थः (प्रमन्थः) स्याच्चात्रंस्या
द्द्वादशाङ्गुलम्।
ओविलीद्वादशैवस्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्॥
अङ्गुष्ठाङ्गुलमानंतु यत्रयत्रोपदिश्यते।
तत्रतत्रबृहत्पर्व ग्रन्थिभिर्मिनुयात्सदा॥
गोबालैःशणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम्।
व्यामप्रमाणंनेत्रंस्यात्प्रमथ्यस्तेनपावकः॥
मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धराचापिपञ्चमी।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुलंवक्ष उच्यते॥
अङ्गुष्ठमात्रंहृदयं त्र्यङ्गुष्ठमुदरंस्मृतम्।
एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौबस्तिर्द्वौचगुह्यकम्॥
ऊरूजङ्घेचपादौचचतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम्।
अरण्यवयवाह्येते याज्ञिकैःपरिकीर्तिताः॥
यत्तद्गुह्यमितिप्रोक्तं देवयोनिस्तुसोच्यते।

अस्यांयोजायतेवह्निः सकल्याणकृदुच्यते॥
यजमानस्यपात्रीच पत्नीपात्रीतथैवच।
मखेकृष्णाजिनंग्राह्यंतदखण्डंविशिष्यते"॥

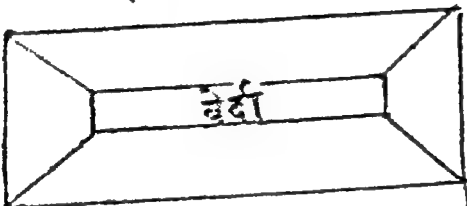
आज्यस्थाली चांदी व मट्टी की बनावै जो विस्तार में बारह अंगुल की प्रादेशमात्र ऊंचीहो, आज्यस्थाली की समानही चरुस्थाली होती है प्रणीतापात्र वरनेका बनावै, यह बारह अंगुलका हो हथेली की समान खुदा हुआ आकृति में कमलपत्र की समान हो, जुहूसंज्ञक स्रुवा खैरका बनाहुआ बाहुमात्र लम्बा हो, २४ अंगुल लम्बा हो अंगुष्ठ के पोरुये के समान गहरा हंस के मुख की समान घृत गिरने के निमित्त ढालू नाली से युक्त नासिकाकी समान आकृति हो, उपभृत स्रुक्, ध्रुवास्रुक, पुष्करस्रुक, अग्निहोत्रहवणी, वैकङ्कतस्रुव यह तथा और भी अनेक स्रुवों के भेदहैं यह गोलमुख शङ्कुमुख पर्व में खुदे हुये समानही होतेहैं। अब अरणीको कहते हैं जो पीपल अच्छी भूमि में उत्पन्न हुआ हो उसके मध्यमें शमी का वृक्ष उगा (जमा) हो उसकी जो पूर्व उत्तर वा ऊपर को गई शाखा हो उसकी अरणी होती है उसके मध्यकी उत्तर अरणी होती है और रचेहुये सारवाले काष्ठकी ओखली बननीहै जो शमीके मूलका

है काष्ठ उसको शमीगर्भ कहतेहैं यदि शमीगर्भ न मिले तो ऊपरके ही काष्ठकी निर्माण करै २४ अंगुष्ठ लम्बी और छः अंगुल चौड़ी हो और चार अंगुल ऊंची हो यह अरणी का मान कहागया है । अठारह अंगुलका प्रमन्थ होता है १२ अंगुल का चात्र हो ओविली १२ अंगुल की हो इसप्रकार यह मंथनयंत्र बनता है जहां जहां अंगुष्ठ अंगुल का मान दिया है वहां वहां पै; पोरुये की ग्रन्थि से प्रमाण माने, गोवाल और सन मिलाकर तिलड़ी रस्सी करै यह व्यामप्रमाण बड़ीहो इससे अग्नि मथी जाती है शिर, नेत्र, कान, मुख, कन्धे यह सब एक अंगुष्ठमात्र हो, छाती दो अंगुलकी, अंगुष्ठमात्र हृदय, तीन अंगुष्ठ का उदर, एक अंगुष्ठ की कटि, दो की बस्ति, दो अंगुष्ठ का गुह्यस्थल, ऊरु, जंघा, चरण यह क्रम से चार, तीन, एक अंगुष्ठ के हैं, यह अरणी के आयतन यज्ञके ज्ञाताओं ने कहेहैं, जो गुह्य स्थलहै वही देवयोनि है, इससे जो अग्नि उत्पन्न होती है वह कल्याणकारी कहाती है, यजमान पात्री आदिमात्रको लेनी और यज्ञ में आस्थापित कृष्णाजिन मृगचर्म ग्रहण किया है ॥२५।२२॥ इति पात्राधिकार ॥

मंडप चित्र.

जामातृहस्त चतुष्टयम्.

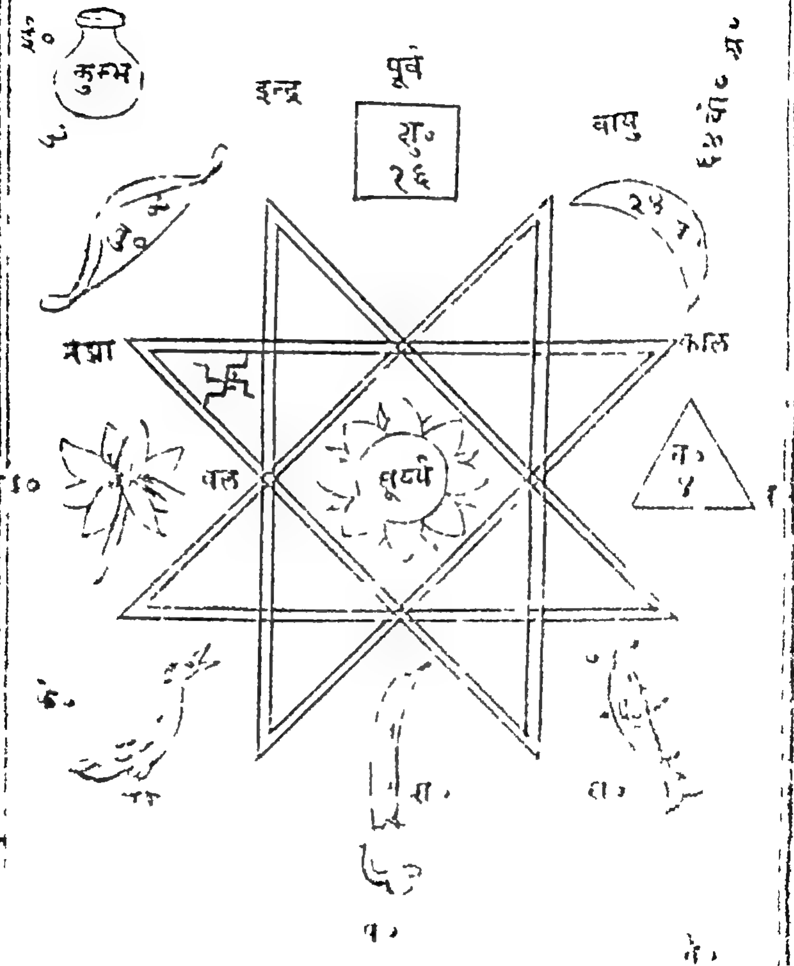
। ४ ।



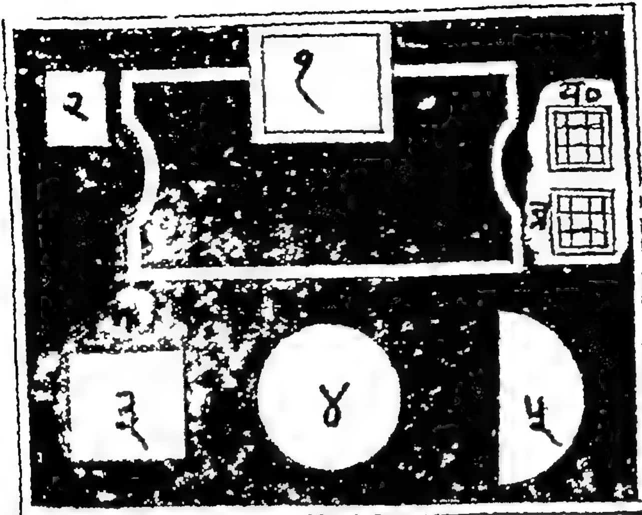
मंडप

ई०	पूर्व०	अ०
उ०	१६ । कन्या हस्त षोडश	द०
वा०	प०	कौतुकागार नै०

अथ तिलकनाम मंडल चित्रम्



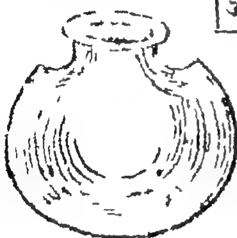
अथ पञ्चाग्नि कुंड चित्रम्.



आहवनीयकुण्डम१ आवसथ्यकुण्डम् २ सभ्यकुण्डम ३ गार्हपत्य कुण्डम४ दक्षिणाग्निकुण्डमिति ५ ब्रह्मासनम्. यजमानासनम्. ।

अथ पात्राणामाकृतयः

आज्यस्थाली १



चरुस्थाली २

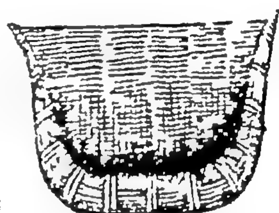


प्रणीतापात्र ३ प्रोक्षणीपात्र ४





स्रुव ५	उपस्तत्स्रुक् ६	धृतास्रुक् ७
[illegible] ८	अग्निहोत्र हवणी ९	[illegible] स्रुक् १०

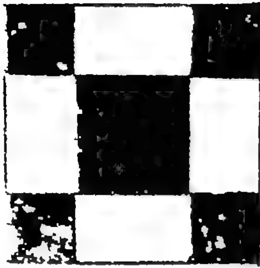
उलूखल ११	मुसलं १२	शूर्पम १३
		

१४ शम्या	१५ स्फ्य	घृतावदान १६	उपवेष १७
			

कूर्म १८	१९ हयत्	२० उपल	२१ [illegible]
२२ मंत्रि	२३ अर्गि	२४ रतारणि	२५ [illegible]

२६ प्रमथ.	२७ नेत्रम्.

२८ अन्तर्धान कट	२९ हविर्धानपात्री	३० प्राशित्र हरणान	३१. चमसा·
३२ इडापात्री	३३ यजमानासनम्.	३४ पत्न्यासनम्	३५ होत्रासनम्

३६ ब्रह्मासनम्.	३७ यजमानस्यपात्री.
	
३८ पत्नीपात्री.	३९ कृष्णाजिनम्.
	

अथ होम्यद्रव्यस्यप्रमाणानीहकथ्यन्ते ॥

शाकल्यप्रमाणमाहकात्यायनः—
चतुर्भागांस्तिलान्कृत्वाद्विभागञ्चाज्यमेवच ।
भागत्रयंयवानांचभागमेकंतुतण्डुलान् ॥ १ ॥
तण्डुलार्द्धंशर्करायास्तदर्द्धंचान्यवस्तुकम् ।
एतत्परिमितंद्रव्यं सर्वहोमेविधीयते ॥ २ ॥
तिलाधिक्ये भवेल्लक्ष्मीर्यवाधिक्येदरिद्रता ।
तण्डुलाधिक्यताहानिर्घृताधिक्येवसुप्रदः ॥ ३ ॥
तंतमाहूयहोतव्यंतत्रतेविहितोनलः ।
अन्यथाविफलङ्कर्म सर्वंतद्राक्षितंभवेत् ॥ ४ ॥
अथद्रव्यंतुमूलानांफलानांस्वप्रमाणतः ।
आम्रमात्रमथाक्षरयपञ्चसूत्राणिहोमयेत् ॥ ५ ॥
पनसस्यफलस्याथशतंभागाःप्रकीर्तिताः ।
शतंतथैवभागाश्चकूष्माण्डस्यप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥
नारिकेलस्यविद्वद्भिर्भागाःप्रोक्तास्तुषोडश ।
तावन्तएवभागाःस्युःकदलस्यफलुत्तमे ॥ ७ ॥
खर्जूरफलभागाश्चपञ्चप्रोक्तामनीषिभिः ।
पत्रमेकैकमेवस्यात्तथापुष्पंचहूयते ॥ ८ ॥
तिलाश्चशीतिसंख्याकास्तथाषष्टियवाःस्मृताः ।

व्रीहयश्च यवा ग्राह्या गोधूमाः षष्टिकान्विताः ॥ ९ ॥
शिम्ब्यश्च विज्ञेया विडालपदमात्रकाः ।
तथैव तण्डुलाः प्रोक्ता होमलक्षणकोविदैः ॥ १० ॥
फलानि बदरादीनि पञ्च पञ्चैव हावयेत् ।
पर्वमात्रा इक्षुहोमे स्युः पल्लवाः फलाः स्मृताः ॥ ११ ॥
शर्कराश्च गुडाश्चैव विडालपदमात्रकाः ।
अतिसूक्ष्माणि बीजानि फलानि च तथैव हि ॥ १२ ॥
गन्धकुसुमान्यपि स्वार्थं नखमात्राणि हावयेत् ।

पञ्चमुद्राविजानीयाद्धौम्यद्रव्यग्रहेबुधः ॥ १ ॥
न्यञ्जेनपाणिनाद्रव्यंतर्जनीरहितेनच ।
आदायहूयतेविप्रैर्मयूरींतांविदुर्बुधाः ॥ २ ॥
अङ्गुष्ठयन्त्रितास्सर्वाअङ्गुलयांतानलालिताः ।
हवनेक्रियतेताभिःकुक्कुटीसाप्रकीर्तिता ॥ ३ ॥
विकनिष्ठातुहंसीस्यान्मुकुलाभाचशूकरी ।
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्मृगीसेवोच्यतेबुधैः ॥ ४ ॥
फलमूलयजेष्टेष्टामुद्राज्ञेयाशिखण्डिनी ।
जारणेमारणेचैवकुक्कुटीचप्रशस्यते ॥ ५ ॥
वश्योच्चाटनपूर्वाणांकर्म्मणांशूकरीमता ।
शान्तिकेपौष्टिकेकार्येमृगीहंसीप्रशस्यते ॥ ६ ॥
कुक्कुटीपत्रपुष्पाणांशालिहोमेतुशूकरी ।
यवानांचतिलानांचहंसीप्रोक्तामनीषिभिः ॥ ७ ॥
सामग्रीरहितामुद्रांनयातत्रनहोमयेत् ।
अन्यथाजुहुयाद्यस्तुनचकर्मफलभाग्भवेत् ॥ ८ ॥
उत्तानेनसुवर्णेनपाणिनाकठिनंहविः ।
स्रुवाचतंतस्मांसंलजानंजालिनायजेत् ॥ ९ ॥
होमपात्रमनादेशेद्रवद्रव्येस्रुवःस्मृतः ।
पाणिरेवेतरस्मिंस्तुस्रुचेपात्रंतुहूयते ॥ १ ॥
जहां पर कोई पात्र न कहाहो वहां होमका पात्र

समझना जहां इन द्रव्य (घी आदि) कहे हों वहां स्रुवा समझना और इतर साकल्य में हाथ लेना और यज्ञमें होम स्रुक् से ही होता है ॥ १ ॥

खादिरोवाथपालाशोद्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः ।
स्रुग्बाहुमात्राविज्ञेयावृत्तस्तुग्रहस्तयोः ॥ २ ॥

खैर अथवा ढाक का और दो बिलस्त का स्रुवा होता है और एक भुजा की स्रुक् होती है इन दोनों का ग्रहण (पकड़ने की जगह) वृत्त गोल होती है ॥ २ ॥

प्राञ्चप्राञ्चंमुदगग्नेरुदगग्रंसमीपतः ।
तत्तथासादयेद्द्रव्यंयद्यथाविनियुज्यते ॥ ५ ॥

पूर्व २ द्रव्य को अग्नि के समीप उत्तरदिशा में जिस २ द्रव्य को ऐसे प्रकार से रक्खे जिस २ क्रम से वह द्रव्य नियुक्त किया (दिया) जायगा ॥ ५ ॥

आज्यंद्रव्यमनादेशेजुहोतिषुविधीयते ।
मन्त्रस्यदेवतायाश्चप्राजापतिरितिस्थितिः ॥ ६ ॥

सब होमों में जहां किसी द्रव्य का नाम नहीं कहा वहां घी को ही द्रव्य कहा है जहां किसी मन्त्रका देवता नहीं कहा प्रजापति देवता समझना यही मर्यादाहै ६॥

नाङ्गुष्ठादधिकाग्राह्यासमित्स्थूलतयाक्वचित् ।
नवियुक्तात्वचाचैवनसकीटानपाटिता ॥ ७ ॥

अंगूठे से अधिक मोटी और जिसके त्वचा (वक्कल) न हो और जिसमें कीड़े हों और जो फटी हो ऐसी समिध नहीं लेनी ॥ ७ ॥

प्रादेशान्नाधिकानोनानतथास्याद्विशाखिका ।
नसपर्णानिर्वीर्य्याहोमेषुचविजानता ॥ ८ ॥

जो प्रादेश (अंगुष्ठ और तर्जनी का प्रमाण) से अधिक हो या न्यून और जिसके शाखा (डाली) न हो और जिसके पत्ते हों और जो घुनी हो ज्ञानवान् पुरुष होम में ऐसी समिध न लेवें ॥ ८ ॥

समझना जहां द्रव द्रव्य (घी आदि) कहे हों तहां स्रुव समझना और इतर साकल्य में हाथ लेना और यज्ञमें होम स्रुक् से ही होता है ॥ १ ॥

खादिरोवाथपालाशोद्विवितस्तिःस्रुवःस्मृतः ।
स्रुग्बाहुमात्राविज्ञेयावृत्तस्तुप्रग्रहस्तयोः ॥ २ ॥

खैर अथवा ढाक का और दो बिलस्त का स्रुवा कहा है और एक भुजाकी स्रुक् होतीहै इनदोनों का प्रग्रहण (पकड़ने की जगह) वृत्त गोल होती है ॥ २ ॥

स्रुवाग्रेघ्राणवत्खातंद्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलम् ।
जुह्वाःशरावखात्खातंसनिर्व्वाहंषडङ्गुलम् ॥ ३ ॥

स्रुवके अग्रभागमें नालिकाके समान खात (गड्ढा) अंगूठे की बराबर करना और जुहू (होमका पात्र) के अग्रभाग में शराव (सरवा) के समान सनिर्वाह (पनाले के समान) छः अंगुल का गड्ढा करना ॥ ३ ॥

तेषांप्राक्शःकुशैःकार्य्याःसम्प्रमार्गोजुहूषता ॥
प्रतापनंचलिप्तानांप्रक्षाल्योष्णेनवारिणा ॥ ४ ॥

प्राञ्चप्राञ्चंमुदग्गनेरुदगग्रंसमीपतः ।
तत्तथासादयेद्द्रव्यंयद्यथाविनियुज्यते ॥ ५ ॥

पूर्व २ द्रव्य को अग्नि के समीप उत्तरदिशा में जिस २ द्रव्य को ऐसे प्रकार से रक्खे जिस २ क्रम से वह द्रव्य नियुक्त किया (दिया) जायगा ॥ ५ ॥

आज्यंहव्यमनादेशेजुहोतिषुविधीयते ।
मन्त्रस्यदेवतायाश्चप्राजापतिरितिस्थितिः ॥ ६ ॥

सब होमों में जहां किसी द्रव्य का नाम नहीं कहा वहां घी को ही हव्य कहा है जहां किसी मन्त्र का देवता नहीं कहा प्रजापति देवता समझना यही मर्यादा है ६॥

नाङ्गुष्ठादधिकाग्राह्यासमित्स्थूलतयाक्वचित् ।
नवियुक्तात्वचाचैवनसकीटानपाटिता ॥ ७ ॥

अंगूठे से अधिक मोटी और जिसके त्वचा (वकल) न हो और जिसमें कीड़े हों और जो फटी हो ऐसी समिध नहीं लेनी ॥ ७ ॥

प्रादेशान्नाधिकानोनानतथास्याद्विशाखिका ।
नसपर्णानिर्वीर्याहोमेषुचविजानता ॥ ८ ॥

जो प्रादेश (अंगुष्ठ और तर्जनी का प्रमाण) से अधिक हो वा न्यून और जिसके शाखा (डाली) न हो और जिसके पत्ते हो और जो घुनी हो ज्ञानवान् पुरुष होम में ऐसी समिध न लेवें ॥ ८ ॥

प्रादेशद्वयमिध्मस्यप्रमाणम्परिकीर्तितम् ।
एवंविधाःस्युरेवेहसमिधःसर्वकर्मसु ॥ ९ ॥

दो उक्त प्रादेश ईंधन का प्रमाण कहाहै सब कर्मों में ऐसेही समिध होती है ॥ ९ ॥

समिधोऽष्टादशेध्मस्यप्रवदन्तिमनीषिणः ।
दर्शेचपौर्णमासेचक्रियास्वन्यासुविंशतिः ॥ १० ॥

विद्वान् मनुष्य अमावस और पूर्णमासी के होम में इध्म (ईंधन) की अठारह १८ समिध कहते हैं और अन्यकर्म्मों में बीस ॥ १० ॥

समिधादिषुहोमेषुमन्त्रदैवतवर्जिता ।
पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चहीन्धनार्थंसमिद्भवेत् ॥ ११ ॥

जो होम समिधों से कियेजाते हैं उनके पहिले अथवा पीछे ईंधन के लिये जो समिध होती है उसका मंत्र और देवता कोई भी नहीं होता है ॥ ११ ॥

इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषुस्मृतः ।
यत्रचास्यनिवृत्तिःस्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् १२

एध (ईंधन) के लिये इध्म (अठारह समिध) को भी आचार्य कहते हैं कि यह भी आहुतियों में हवि (साकल्य) है और जिसकर्म में यह इध्म नहीं उसको मैं स्पष्ट (प्रकट) करताहूं ॥ १२ ॥

अङ्गहोमसमित्तन्त्रसोष्यन्त्याख्येषुकर्म्मसु ।
येषांचैतदुपर्य्युक्तंतेषुतत्सदृशेषुच ॥ १३ ॥

अंगहोम (बड़े यज्ञमें कर्त्तव्य और छोटे यज्ञ में जो होना है) समित्तंत्र गर्भाधान आदि संस्कार और जिनमें पहिले कहा है उनमें और उनके समान कर्म्मों में ॥ १३ ॥

अक्षभङ्गादिविपदिजलहोमादिकर्म्मणि ।
सोमाहुतिषुसर्वासुनैतेष्विधमोविधीयते ॥ १४ ॥

नेत्र के भंग (फूटने) आदि विपत्ति में जल के निमित्त जो होम तिसमें और सम्पूर्णहोम और आदिति यज्ञों में इध्म नहीं कहाहै ॥ १४ ॥

सूर्य्येऽस्तशैलमप्राप्तेषट्त्रिंशद्भिःसदाङ्गुलैः ।
प्रादुष्करणमग्नीनांप्रातर्भासांचदर्शनात् ॥ १५॥

जिससमय सूर्य्य अस्ताचलपर्वत से छत्तीस अंगुल ऊपर हैं उससमय सन्ध्या को और प्रातःकाल किरणोंके दीखनेपर अग्नियों को प्रज्वलित करै ॥ १५ ॥

हस्तादूर्ध्वंरविर्यावद्गिरिंहित्वानगच्छति ।
तावद्धोमविधिःपुण्योनात्येत्युदितहोमिनाम् १६॥

सूर्योदय पर होम करनेवालों की होमविधि तब तक भ्रष्ट नहीं होती जबतक उदयाचल से हाथसे ऊपर

सूर्य न पहुंचे अर्थात् एकहाथ सूर्य के चढ़ने पर भी उदय कालही रहता है ॥ १६ ॥

यावत्सम्यग्नभाव्यन्तेनभस्यृक्षाणिसर्वतः ।
नचलौहित्यमापैतितावत्सायञ्चहूयते ॥ १७ ॥

जबतक आकाश में भलीप्रकार नक्षत्र न दीखे और आकाश की लाली दूर न हो तबतक सन्ध्या का होम करै ॥ १७ ॥

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरितेरवौ ।
संध्यामुद्दिश्यजुहुयाद्धुतमस्यनलुप्यते ॥ १८ ॥

यदि सूर्य धूलि नीहार (कोल) धूम, मेघ, वृक्ष, इन से ढका हो उससमय सन्ध्या समझकर जो होम करै उसका होम नष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥

नकुर्य्यात्क्षिप्रहोमेषुद्विजःपरिसमूहनम् ।
वैरूपाक्षंचनजपेत्प्रपदंचविवर्जयेत् ॥ १९ ॥

द्विज क्षिप्र (शीघ्रताकी) होमों में परिसमूहन (कुशाओं से वेदीकी स्वच्छता) न करै और विरूपाक्ष-मंत्र न जपे और प्रपद (प्रारंभ) भी न करै ॥ १९ ॥

पर्य्युक्षणंचसर्वत्रकर्त्तव्यमुदितेत्विति ।
अन्तेचवामदेव्यस्यगानंकुर्य्यादृचस्त्रिधा ॥ २० ॥

सबहोमों की आदि में पर्य्युक्षण (कुशाओं से होम

की वस्तु छिड़कना) और अंत में वामदेव ऋचा का तीन वार गान कर पाठ होताहै ॥ २० ॥

नोट-ॐकयानश्चित्रइतिवामदेवऋषिर्गायत्रीछन्दः इन्द्रोदेवताशा न्त्यर्थकर्मणिजपेविनियोगः ॥

ॐकाऽ२३४ याय । न ५ श्चा ४ऽ३यि ३ आ २३ आ ४ भू ४ वा ५ नू ५ । ३ । तीसदावृध २ स्साखा । अ २३ हो ३ ह २ यि २ कयाऽ २३ श ३ च ३ यि ३ । ष्ठ ३ यौ ३ हो २३ । हुम्मा २३ । वाऽ २३ तौ २ऽ ३५ ह २ यि २ ॥ १ ॥ का २ ऽ ४ स्त्वा ५ । स ५ त्यो २३ मा २३ दा ४ ना ५ मू ५ ७ हिष्ठो २ मात्सद २ धा । सा अ २३ हो हा २ ह २ । दृढाऽ २३ चि ३ दा ३ रु ३ जौ ३ हो २३ । हुम्मा ४ ३ । वाऽ २३ सो ३२३४ हा २ । हामि २ ॥ २ ॥ आ ३ ऽ ४ भी ५ । षु ५ ण ४ ऽ ३ स्स २३ खि ४ ना ५ मू ५ आ ऽ विता २ जरायितॄ २ । णाम् । अ २३ हो ३ हा २ यि २ । शताऽ २३ म्भा ३ व ३ । सि ३ यौ ३ हो २३ हुम्मा ४३ । ताऽ २३ यो २३ ऽ ५ हा २ यि २ ॥ ३ ॥ कयानश्चित्रआभुवदूती सदावृधस्सखा ॥ कयाशचिष्ठयावृता ॥ १ ॥ कस्त्वासत्योमदानाम्मा ७हिष्ठोमत्सदन्धसः ॥ दृढाचिदारुजेवसु ॥ २ ॥ अभीषुणस्सखीनामवि ताजरितॄणाम् ॥ शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ ॐस्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवाःस्व स्तिनःपूषाविश्ववेदाः ॥

अहोमकेष्वपिभवेद्यथोक्तंचन्द्रदर्शनम्।
वामदेव्यंगणेष्वन्तेबल्यन्तेवैश्वदेविके ॥ २१ ॥

जिन पूर्णिमाओं में होम नहीं होता उनमें चंद्रमा का दर्शन जैसे होता है ऐसेही सब गणों (यज्ञों के समूहों) के अन्तमें और बलिवैश्वदेव के अन्तमें वामदेवसूक्त (सामवेदकेमंत्र) का जप होता है ॥ २१ ॥

यान्यधस्तरणान्तानिनतेषुतरणंभवेत्।
एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनापिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

अधस्तरण के अंत तक जितने कर्म हैं उनमें तरण नहीं होता—एक कार्य के लिये होने से परिधियों (जो कुंड के चारों तरफ मर्यादा की जाती है) को भी उन कर्मों में न करै ॥ २२ ॥

बर्हिःपर्युक्षणंचैववामदेवजपस्तथा।
कृताहुतिषुसर्वासुत्रिकर्मतन्नविद्यते ॥ २३ ॥

बर्हि, (१६ कुशा) पर्युक्षण, वामदेव का जप इन से तीन कर्म संपूर्ण यज्ञों की आहुतियों में नहीं होते अर्थात् कहीं होते कहीं नहीं ॥ २३ ॥

हविष्येषुयवामुख्यास्तदनुव्रीहयःस्मृताः।
माषकोद्रवगौरादिसर्वालाभेऽभिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

सब हविष्यों में जो मुख्य हैं वे न मिलें तो व्रीहि (धान) होते हैं यदि ये न मिलें तो उड़द कोदो गेहूं इनको वर्ज दे और तिल आदि की आहुति देदे ॥ २४ ॥

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका
कंसादिनाचेत्स्रुवमात्रपूरिका ॥
दैवेनतीर्थेनचहूयतेहविः
स्वङ्गारिणिस्वर्चिषितच्चपावके ॥ २५ ॥

हाथ से जो आहुति दे तो इतने की दे जिससे बारह पर्व (अंगुल) चारों अंगुलियों के भर जांय यदि पात्रसे दे तो स्रुवेको भरके दे और शाकल्य को दैव-तीर्थ (अंगुलियों के अग्रभाग में होता है) से ऐसी अग्नि में आहुति दे जिसमें अंगार और ज्वाला अत्यंत हों ॥ २५ ॥

योऽनर्चिषिजुहोत्यग्नौव्यङ्गारिणिचमानवः ।
मन्दाग्निरामयावीचदरिद्रश्चसजायते ॥ २६ ॥

जिसमें ज्वाला और अंगार नहीं ऐसी अग्नि में जो आहुति देता है वह मंदाग्नि और रोगी और दरिद्री होता है ॥ २६ ॥

तिलसे आरोग्य, अवस्था और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मी की इच्छा करनेवाला पुरुष अच्छी अग्निमें होम करै जो अग्नि न जलती हो उसमें कभी न करे। जिस अग्निमें होम करनाहो वा किया हो उसको हाथ, सूप, स्फय (एक यज्ञका पात्र) काठ इनसे प्रज्वालित न करे किन्तु वीजने (वेना) आदि से ही करे। कोई मुखसे अग्निको जलाते हैं क्योंकि यह अग्नि मुखसेही पैदा हुआ है और कोई यह कहते हैं कि मुख से अग्निको न जलावै यह कहना लौकिक (साधारण अग्नि) के लिये है यज्ञकी अग्नि में मुख से फूंकना चाहिये २७-२६ ॥

अथ श्रागादिबलिदानंदद्यायथा-

हृदण्डायैनमः। इतिमन्त्रेणगन्धादिभिरभ्यर्च्य। तस्यमुष्टिदेशे। वागीश्वरीब्रह्माभ्यांनमः। मध्ये। उमामाहेश्वराभ्यांनमः। अग्रे। इति सम्पूज्यतं ध्यात्वाभिमन्त्रयेत्। ॐखड्गाधासुखाद्यायदेवका र्यायतत्परः। पशुश्छेद्यस्त्वमाशीघ्रंखड्गनाथनमो स्तुते॥ गन्धाक्षतजलादिकमादायमूलमुच्चार्य। अद्येत्यादि०। उल्लेखनान्तेअमुकगोत्रोमुकशर्मा दीर्घायुः।सुहृदांभिदुःखनिवृत्तिपरानन्ददशाश्वमे धगमफलधनमालाकुलविमान। आरोहणंपूर्वदि विलोकगमनोत्तरशाश्वतसमाधिंचिन्मया खण्ड विजयकामः श्रीमहाकालसहितंश्रीदक्षिणकालि के। इमंपशुंतुभ्यमहंप्रददेइत्युत्पादिकजलादिकं पशोःशिरसिनिक्षिपेत्। ततःपशोःशिरोधृत्वा।ॐ यज्ञार्थेपशवः श्रेष्ठायज्ञार्थेपशुघातनम्। अत स्त्वांरिपतागतः। उद्बुध्यस्वपशस्त्वंहिनाशिवत्वं शिरोभिहि। इतिबोधयित्वा।खड्गं। आदायस्नौ। प्रस्रावफट्ठिन्धिस्वा हेतिमन्त्रेणखड्गंस्कन्धयो जयेत्। ततः। देवरूपांभूत्वानिर्विकल्पसन्नसमेके नंप्रहारेणछिन्द्यात्,सविकल्पःसाधकोनछेदयेत्। नास्मणातिरिक्तैः। स्वगात्रशोणितदानरूपोबलि

देयः। इति आगमकल्पलतायांद्वादशोल्लास धृतविधिःसनातिमगात्॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गेनिदीध्यदैन्द्रोऽपा नोऽअङ्गेऽअङ्गेनिधीतः॥ देवत्वष्टर्भूरितेसंसमेतुसलक्ष्माषद्विषुरूपंभवाति। देवत्रायन्तमवसेसखायोनुत्वामातापितरोमदन्तु॥ २०॥ [२]

छिन्न भिन्न (भवति) हुये थे वह सब (ते) तुम्हारे अनन्त प्रसाद से (भूरि) अत्यन्त (सम्) संयुतहोकर (गच्छेतु) भलीप्रकार से यथायोग्य एकीभावको प्राप्त हों अर्थात् यथायोग्य होकर जीवित होजाओ हे पशो ! प्राण और अपने अंगसे इसमंत्र से दृढ़ हुये तुम जीवित हुये (देवत्रा) देवताओं के प्रति (यन्तम्) जाते हुये (त्वा) तुमको (सखायः) मित्रभूत दूसरे पशु (माता) तुम्हारी माता (पितरः) पितृगण (अनसे) प्रसन्नता से ना रक्षा के अथवा तुम्हारे सुखसे अपने सम्पूर्ण कुल को स्वर्गप्राप्ति के निमित्त (अनुमदन्तु) अनुमति प्रदान करें ॥ २० ॥

"जालनंदर्भकूर्चेन सर्वत्रस्रोतसांपशोः।
तूष्णींभिच्छाक्रमेण स्यादपार्थेप्राणदारुणी॥
सप्तनावन्मूर्धन्यानि तथास्तानचतुष्टयम्।
नाभिःश्रोणिरपानंच गोस्रोतांसिचतुर्दश॥
जुरोमांमावदानार्थः कृत्स्नास्त्वष्टकृदावृता।
वपामादायजुहुयात्तत्र मन्त्रंसमापयेत्॥
हृजिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृद्वृक्कौगुदंस्तनाम्।
श्रोणिस्कन्धसटापार्श्वं पश्वङ्गानिप्रचक्षते॥
एकादशानामङ्गानामवदानानिसंख्यया।
पार्श्वस्यवृक्कसक्थ्नोश्च छित्वादाहुश्चतुर्दश॥
चरितार्थाश्रुतिःकार्य्या यस्मादप्यनुकल्पशः।
अतोऽष्टर्चेनहोमःस्याच्छागपक्षेचरावपि॥
अवदानानियावन्ति क्रियेरन्प्रस्तरेपशोः।
तावन्तःपायसान्पिण्डान्पश्वभावेपिकारयेत्॥
आलंभपञ्जनार्थंतु पश्वभावेऽपिपायसम्।
प्राचीनावीतिनाकार्य्यं पित्र्येपुप्रोक्षणंपशोः॥"
धर्मप्रदीपतीसरा प्रपाठक अध्याय २९

कारण वही मंत्र होनेसे भी उनकी शक्ति लुप्तप्राय हो रही है जिसप्रकार मूर्ख के हाथमें सितार देनेसे उसकी ध्वनि लुप्तप्राय होजाती है किन्तु उलटीही ध्वनि निकलती है और सितार भी टूटजाता है इसीप्रकार ताल के बिना भेद में मन्त्रों का प्रभाव लुप्त रहता है तथा दोष प्रगट होता है शौनककृत ऋग्विधान तथा अन्य कई सूत्रों में इनके सिद्धिके विधान लिखे हैं ऋग्विधान में लिखा है—

"नित्य [illegible] मन्त्राणां [illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥"

"क्षालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः।
तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्यादपार्थे प्राणदारुणी ॥
सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तानचतुष्टयम्।
नाभिः श्रोणिरपानं च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥
क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्नास्त्वष्टकृदाहृता।
वपामादाय जुहुयात्तत्र मन्त्रं समापयेत् ॥
हृज्जिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृद्वृक्कौ गुदं स्तनाम्।
श्रोणिस्कन्धसटापार्श्वं पश्वङ्गानि प्रचक्षते ॥
एकादशानामङ्गानामवदानानि संख्यया।
पार्श्वस्य वृक्कसक्थ्नोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥
चरितार्था श्रुतिः कार्या यस्मादप्यनुकल्पशः।
अतोऽष्टर्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥
अवदानानि यावन्ति क्रियेरन्प्रस्तरे पशोः।
तावन्तः पायसान्पिण्डान्पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥
अह्नं व्यञ्जनार्थं तु पश्वभावेऽपि पायसम्।
प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्ये पुंप्रोक्षणं पशोः ॥"

धर्मप्रदीप तीसरा प्रपाठक अध्याय २९

पशु के स्रोतों को दर्भ (कुशा) के कूर्च (कूची) से धोवे बिना मन्त्र मौन होकर अपनी इच्छानुसार के क्रम से अर्थात् चाहे जिस स्रोत को पहिले धोवे वपाके

मांस का खाना छोड़ दे तो सारे मनोरथ और अपने अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है और मांस का खाना छोड़ घर में भी रहे तो वह ब्राह्मण मुनि तुल्य कहाता है ॥

जब ऐसा धूर्तों ने कहा तब शंकराचार्यजी बोले कि हे दुष्टो ! तुम बड़े वंचक हो अगर ऐसा होता तो जो राजा महाराजा करोड़ों धन खर्चकर अश्वमेधयज्ञ करते थे तो क्या वह बेवकूफ रहे अगस्त्य मुनिने रामचन्द्रजी को शिक्षा दे रामाश्वमेध यज्ञ कराई थी क्योंकि जो तुमने रावण का विनाश किया है तो तुम्हारा पाप दूर होजायगा उन्होंने पाप किया था

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

व्यास उवाच ॥
कदाचिदथकालेतुदशपञ्चसमाविभो।
प्राणिनांकर्मवशतोन ववर्ष शतक्रतुः ॥ १ ॥

व्यासजी बोले कि हे विभो ! एक समय प्राणियों के कर्मवश से पंद्रहवर्ष तक मेघ नहीं वर्षा था ॥१॥

अनावृष्टयाऽतिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम्।
गृहेगृहेशवानांतुसंख्यांकर्त्तु न शक्यते ॥ २ ॥

अनावृष्टि के कारण क्षयकारक घोर दुर्भिक्ष हुवा था सो घर घर में शवों की संख्या नहीं रही ॥ २ ॥

केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयन्तिक्षुधार्दिताः।
शवानिचमनुष्याणांभक्षयन्त्यपरेजनाः ॥ ३ ॥
बालंबालजननीस्त्रियंपुरुषएवच।
भक्षितुंचलिताःसर्वेक्षुधयापीडितानराः ॥ ४ ॥

और कोई क्षुधा से व्याकुल होकर अश्व (घोड़ा) वराह तथा कोई निकृष्ट मृतक (मरे हुवे मनुष्यों) के शरीर (मांस) भक्षण करने लगे बालकों को, माता खाने लगी स्त्री को पुरुष यह सबही ने क्षुधासे व्याकुल हो खाने की इच्छा करनेलगे कुछ भी विचार न रहा ॥ ३ । ४ ॥

कोई पश्चिम दिशा से आये और कोई उत्तर दिशासे आये इसप्रकार अनेक दिशाओं से ब्राह्मणों को आये देखकर गौतमजी ने प्रणाम किया ॥ ७।८।९ ॥

आसनाद्युपचारैश्चपूजयामासवाडवान् ।
चकारकुशलप्रश्नंततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥
तेसर्वेस्वस्ववृत्तान्तंकथयामासुरुत्तमयाः ।
दृष्ट्वातान्दुःखितान्विप्रानभयंदत्तवान्मुनिः ११ ॥
युष्माकमेतन्सदनंभवद्दासोऽस्मिसर्वथा ।
काचिन्ताभवतांविप्रामयिदासेविराजति ॥१२ ॥
धन्योऽहमस्मिन्समयेयूयंसर्वेतपोधनाः ।
येषांदर्शनमात्रेण दुष्कृतंसुकृतायते॥ १३ ॥
तेसर्वेपादरजसा पावयन्ति गृहं मम ।
कोमदन्योऽस्तिधन्योभवतां समनुग्रहात ॥ १४ ॥
स्थेयंभवद्भिःसुखेनैव संध्याजपपरायणैः ।
व्यास उवाच ॥

कोई पश्चिम दिशा से आये और कोई उत्तर दिशासे आये इसप्रकार अनेक दिशाओं से ब्राह्मणों को आये देखकर गौतमजी ने प्रणाम किया ॥ ७। ८। ९ ॥

आसनाद्युपचारैश्चपूजयामासवाडवान् ।
चकारकुशलप्रश्नंततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥
तेसर्वेस्वस्ववृत्तान्तंकथयामासुरुत्समयाः ।
दृष्ट्वातान्दुःखितान्विप्रानभयंदत्तवान्मुनिः ११ ॥
युष्माकमेतत्सदनंभवद्दासोऽस्मिसर्वथा।
काचिन्ताभवतांविप्रामयिदासेविराजति ॥ १२ ॥
धन्योऽहमस्मिन्समयेयूयंसर्वेतपोधनाः ।
येषांदर्शनमात्रेण दुष्कृतंसुकृतायते ॥ १३ ॥
तेसर्वेपादरजसा पावयन्ति गृहं मम ।
कोमदन्योभवेद्धन्योभवतां समनुग्रहात् ॥ १४ ॥
स्थेयंसर्वैःसुखेनैव संध्याजपपरायणैः ।

व्यास उवाच ॥

इतिसर्वान्समाश्वास्यगौतमोमुनिराट्ततः ॥ १५ ॥

आसनादि उपचारों से सबको पूजन किया और कुशलप्रश्न तथा आगमनका कारण पूंछा और उन सबने भी अपना२ सारा वृत्तांत कहा तब मुनि गौतमजी ने ब्राह्मणों को दुःखी देखकर अभय दिया और कहा कि आपका ही तो स्थान है मैं तुम्हारा सर्वथा

ब्राह्मणाबहवस्तत्रविचारंचक्रुरुत्तमम् ।
तपोधनोगौतमोऽस्तिसनःखेदं हरिष्यति ॥ ५

और उससमय बहुत से ब्राह्मण यह उत्तम विच करने लगे कि तपस्वी गौतमजी हमारे खेद (दुःख को दूर करेंगे ॥ ५ ॥

सर्वैर्मिलित्वागन्तव्यंगौतमस्याश्रमेऽधुना ।
गायत्रीजपसंसक्तोगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६ ।

इससमय सब मिलकर हमलोग गौतम के आश्र को चलें वहां पर गौतमजी गायत्री जपमें लगेहुये हैं॥ ६

सुभिक्षंश्रूयतेतत्रप्राणिनोबहवोगताः ।
एवंविमृश्यभूदेवाःसाग्निहोत्राःकुटुम्बिनः ॥ ७

सगोधनाःसदासाश्चगौतमस्याऽऽश्रमंययुः ।
पूर्वदेशाद्ययुःकेचित्केचिद्दक्षिणदेशतः ॥ ८ ॥

पाश्चात्याश्चोत्तराहाश्चनानादिग्भ्यःसमाययुः
दृष्ट्वासमाजंविप्राणांप्रणनामसगौतमः ॥ ९ ॥

और वहां पर सुभिक्ष सुनाजाता है और ब से वहां पर (गौतम के आश्रम में) प्राणी (मनुष्य गये भी हैं ऐसा मनमें विचारकर भूदेव, अग्निहो कुटुंबी, गौ, और दासों (सेवकों को साथ लियेहुये को साथ लेकर गौतमजी के स्थान पर गये और क पूर्वदिशा से आये और कोई दक्षिणदिशासे आये ३

एभिस्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २१ ॥

भक्ति से नम्रकंधर हो गायत्री की प्रार्थना करने लगे कि हे देवि! महाविद्ये, वेदमाता, परात्परे तुम को मैं प्रणाम करता हूं व्याहृति आदि महामंत्र के रूपवाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्था में स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणी को प्रणाम है स्वाहा, स्वधास्वरूप सब अर्थ को देनेवाली तुम को प्रणाम है हे देवि! तुम भक्तों को कल्पवृक्ष और तीनों अवस्था की साक्षिणी हो तुरीयातीतस्वरूप सच्चिदानन्दरूपिणी सब वेदान्त से जानने योग्य सूर्यमंडल में निवास करनेवाली प्रभात में रक्तवर्ण बालास्वरूप मध्याह्नमें युवती सन्ध्या में कृष्णवर्ण वृद्धारूप को नित्य प्रणाम करता हूं सब प्राणियों की पालनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध को क्षमा करना इसीप्रकार स्तुति को प्राप्त हो जगन्माता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १९ । २१ ।

दासहूं हे ब्राह्मणो ! मुझसे नक के होते आपको क्या चिंता है मैं इस वक्त धन्य हुवा हूं जो तुम सब तपोधनों का दर्शनपाया जिनके दर्शन से दुष्कृत भी सुकृत होजाते हैं वे सब चरणरज से मेरे घरको आय पवित्र करेंगे जब तुम्हारा अनुग्रह हुवा तो मुझसे अधिक और दुनिया में कौन धन्य है आप सबको संध्या जपमें परायण हो सुखपूर्वक निवास करना चाहिये तब तो व्यासजी बोले कि मुनिराज गौतम जी इसप्रकार सबको सावधान करके ॥ १० । १५ ॥

गायत्रींप्रार्थयामास भक्तिसन्नतकन्धरः ।
नमोदेविमहाविद्येवेदमातः परात्परे ॥ १६ ॥
व्याहृत्यादिमहामन्त्ररूपे प्रणवरूपिणि ।
साम्यावस्थात्मिकेमातर्नमोह्रींकाररूपिणि॥१७॥
स्वाहास्वधास्वरूपेत्वां नमामिसकलार्थदाम् ।
भक्तकल्पलतांदेवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ १८॥
तुर्यातीतस्वरूपांच सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
सर्ववेदान्तसंवेद्यांसूर्य्यमण्डलवासिनीम् ॥ १९॥
प्रातर्बालांरक्तवर्णां मध्याह्नयुवतीं पराम् ।
सायाह्नकृष्णवर्णांतां वृद्धांनित्यंनमाम्यहम् ॥२०॥
सर्वभूतारणेदेवि क्षमस्वपरमेश्वरि ।

प्रीतिस्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २१ ॥

भक्ति से नम्रकंधर हो गायत्री की प्रार्थना करने लगे कि हे देवि! महाविद्ये, वेदमाता, परात्परे तुम को मैं प्रणाम करता हूं व्याहृति आदि महामंत्र के रूपवाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्था में स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणी को प्रणाम है स्वाहा, स्वधास्वरूप सब अर्थ की देनेवाली तुम को प्रणाम है हे देवि! तुम भक्तों को कल्पवृक्ष और तीनों अवस्था की साक्षिणी हो तुरीयावस्थास्वरूप सच्चिदानन्दरूपिणी सब वेदान्त से जानने योग्य सूर्यमंडल में निवास करनेवाली प्रभात में रक्तवर्ण बालास्वरूप मध्याह्नमें युवती संध्या में कृष्णवर्णी वृद्धारूप को नित्य प्रणाम करता हूं सब प्राणियों की तारनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध को क्षमा करना इसीप्रकार स्तुति को प्राप्त हो जगन्माता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १८ । २१ ।

जिस २ वस्तु की इच्छा करोगे सो २ सब उस उस की पूर्ति इस मेरे पात्रद्वारा होगी ऐसा कह वह परम कला गायत्री देवी अन्तर्धान होगई ॥ २२ । २३ ॥

अन्नानांराशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः ।
षड्रसाविविधाराजंस्तृणानिविविधानिच ॥ २४ ॥

उस पात्रसे पर्वत के समान अन्नों के ढेर निर्गत होने लगे हे राजन्! अनेकप्रकार के षड्रस और विविध तृण प्रकट हुये ॥ २४ ॥

भूषणानिचदिव्यानि क्षौमाणिवसनानिच ।
यज्ञानांचसमारम्भाः पात्राणिविविधानिच ॥२५॥

दिव्य भूषण, क्षौम वस्त्र, यज्ञों के समारंभ अनेक प्रकार के पात्र प्रकटहुए ॥ २५ ॥

यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्य महात्मनः ।
तत्सर्वंनिर्गतंतस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥ २६ ॥

हे राजन्! जो कुछ भी उन मुनिराजको इष्ट होना था वह सबही उस गायत्री के पूर्णपात्र से निर्गत होता था ॥ २६ ॥

अथाऽहूयमुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा ।
धनंधान्यंभूषणानि वसनानिददौमुदा ॥ २७ ॥

तब मुनिराज गौतमजी सब मुनियों को बुलाकर धन धान्य भूषणादि प्रसन्नता से देते हुये ॥ २७ ॥

गोमहिष्यादिपशवो निर्गताःपूर्णपात्रतः।
निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्रुक्स्रुवप्रमृतीन्ददौ॥ २८॥

बहुत क्या उस पूर्णपात्र से गो महिषी आदि पशु भी निर्गत हुये यज्ञके संभार स्रुक्स्रुव प्रभृति निर्गत हुये॥ २८॥

तेसर्वेमिलितायज्ञांश्चक्रिरेमुनिवाक्यतः।
स्थानंतद्देवमृयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम्॥ २९॥

तब वे सब मिलकर मुनि के कथनानुसार यज्ञ करनेलगे वह स्थान देवयज्ञ के कारण स्वर्ग के समान होगया॥ २९॥

यत्किंचिद्विपुलोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते।
तत्सर्वंतत्रनिष्पन्नंगायत्रीदत्तपात्रतः॥ ३०॥

नरोगादिभयंकिंचिन्नच दैत्यभयंक्कचित् ॥ ३२ ॥

इसप्रकार मुनिजनों के आश्रममंडल में नित्य उत्सव प्रवृत्त हुवा रोग दैत्यादि किसी का कुछ भय न रहा ॥ ३२ ॥

समुनेराश्रमोजातः समन्ताच्छतयोजनः ।
अन्येचप्राणिनोयेऽपितेऽपितत्रसमागताः ॥३३॥

वह मुनि का आश्रम सौयोजन तक घिरगया दूसरे प्राणी भी सव उस स्थान में आगये ॥ ३३ ॥

तांश्चसर्वान्पुपोषाऽयंदत्त्वाऽभयमथात्मवान् ।
नानाविधैर्महायज्ञैर्विवित्कल्पितैःसुराः ॥ ३४ ॥

यह विचारवान् उन सवको अभय कर पालन करने लगे और अनेकप्रकार के महायज्ञों की कल्पना से देवता ॥ ३४ ॥

संतोषंपरमंप्रापुर्मुनेश्चैवजगुर्यशः ।
सभायांतत्रहाभूयोजगौश्लोकंमहायशाः ॥ ३५ ॥

परमसंतोष को प्राप्त हो मुनि गौतमजी का यश करने लगे उससमय अपनी सभामें स्वयं इन्द्रने यह श्लोक कहा था ॥ ३५ ॥

अहोअयंनःकिलकल्पपादपो
मनोरथान्पूरयतिप्रतिष्ठितः ।

नोचेद्कृतःएडेककहांविर्वपावा
सुदुर्लभायत्रतुजीवनाशा ॥ ३६ ॥

कि अहो इससमय यह गोतम हमको कल्पवृक्ष स्वरूप होरहाहै प्रतिष्टित हो हमारे मनोरथ पूर्ण करना है नहीं तो इस दुर्लभ समय में हवि वपा कहां प्राप्त होसकती है? जब कि जीवन की आशा दुर्लभ होरही है ॥ ३६ ॥

इत्थंद्वादशवर्षाणिपुपोपमुनिपुङ्गवान्।
पु...न्मुनिराड्गर्वगन्धेनपरिवर्जितः ॥ ३७ ॥

मध्याह्नेयुवतीवृद्धासायंकालेतुदृश्यते ।
तत्रैकदासमायातोनारदोमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥

मध्याह्न में युवती और सायंकाल में वृद्धास्वरूप दिखाई देती है और एकसमय वहांपर नारदजीका आगमन हुवा ॥ ४० ॥

रणयन्महतींगायन्गायत्र्याःपरमान्गुणान् ।
निषसादसभामध्येमुनीनांभावितात्मनाम् ॥४१॥

जो अपनी महतीनामक वीणाको बजाते और उसमें गायत्री के परम गुण गातेथे उससमय वह उन ज्ञानी मुनियोंकी सभा में स्थित हुये ॥ ४१ ॥

गौतमादिभिरत्युच्चैःपूजितःशान्तमानसः ।
कथाश्चकार विविधायशसोगौतमस्यच ॥ ४२ ॥

और गौतमादिने भी उनकी उच्च पूजाकी फिर शांतमनसे नारदजी ने अनेकप्रकार से गौतमजी का यश कहा ॥ ४२ ॥

ब्रह्मर्षेदेवसदसिदेवराट्त्वयद्यशः ।
जगौबहुविधंस्वच्छंमुनिपोषणजंपरम् ॥ ४३ ॥

हे ब्रह्मर्षि ! राजा इन्द्रने भी अपनी सभा में यह तुम्हारा ऋषिपोषणरूप निर्मल यश बहुत प्रकारसे वर्णन किया है ॥ ४३ ॥

श्रुत्वाशचीपतेर्वाणींत्वांद्रष्टुमहमागतः ।

धन्योऽसि त्वंमुनिश्रेष्ठजगदम्बाप्रसादतः ॥ ४४ ॥

इन्द्रकी यह वाणी सुनकर मैं तुमको देखने आया हूं हे मुनि गौतमजी ! तुम जगदम्बा (गायत्री) के प्रसाद से धन्य हो ॥ ४४ ॥

इत्युक्त्वामुनिवर्यंतंगायत्रीसदनंययौ ।
ददर्शजगदम्बांतांप्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ ४५ ॥

मुनिश्रेष्ठ से इसप्रकार के वचन कहकर नारदजी गायत्री के स्थान में गये और प्रेमसे उत्फुल्ललोचन (नेत्र) होकर उन्हों ने जगदंबाका दर्शनकिया ॥४५॥

तुष्टावचविधिवद्देवींजगामात्रिदिवंपुनः ।
अथनव्यतिवर्ष तत्रब्राह्मणामुनिपोषिताः ॥४६ ।

समय पर कार्यसाधन करेंगे यह सबने निश्चय किया फिर कुछसमयमें अच्छीतरह से वर्षाहुई ॥ ४८ ॥

व्यास उवाच।

सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषुनृपसत्तम।
श्रुत्वावार्तांसुभिक्षस्यामिलिताःसर्ववाडवाः ॥४९॥

व्यासजीने कहा कि हे राजन्! सब देशों में सुभिक्ष हुवा सुभिक्षकी बात सुन सब ब्रह्मचारी (ब्राह्मण लोग) मिलकर ॥ ४९ ॥

गौतमंशप्तुमुद्योगं हाहाराजन्प्रचक्रिरे।
धन्यौतेषांचपितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥ ५० ॥

गौतम के शाप देने का उद्योग करने लगे हे राजन्! यह बड़े खेद की बातहै उनके माता पिताको धन्य है जिनकी ऐसी उत्पत्ति है ॥ ५० ॥

कालस्य महिमाराजन्वक्तुं केनहिशक्यते।
गौर्निर्मितामाययैकामुमूर्षुर्जरतीन्नृप ॥ ५१ ॥

हे राजन्! कालकी महिमा कौन कहसका है उन मुनियों ने याने ब्राह्मणों ने मायारूपी एक बड़ी वृद्धा मरण को प्राप्त गौ माया से निर्माण किया ॥ ५१ ॥

जगामसाचशालायां होमकालेमुनेस्तदा।
हुंहुंशब्दैर्वारितासाप्राणांस्तत्याजतत्क्षणे॥ ५२ ॥

और वह गौ मुनिके होमसमय शाला में गई ज्योंही

गौतमजीने हुंहुंशब्दसे उसको निवारण किया कि उसी समय उसने प्राण त्यागदिया ॥ ५३ ॥

गौर्हताऽनेनदुष्टेनेत्येवंतेचुक्रुशुर्द्विजाः।
होमंसमाप्यमुनिराड्विस्मयंपरमंगतः ॥ ५४ ॥

तब ब्राह्मण कोसने लगे कि अहो इस दुष्ट ने गौको मारडाला तब मुनिराज होम समाप्त करके परम विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥

समाधिमीलिताक्षः संचिन्तयामासम्कारणम्।
ज्ञातंमयैद्विजैरेतद्विनिर्मात्वातद्बवमः ॥ ५५ ॥

हे ब्राह्मणो ! जो वेदमाता गायत्री सर्वस्वरूप है तुम उसके ध्यान और जपमें उन्मुख (विमुख) होगे गायत्रीत्यागी होनेसेही ब्राह्मणों में अधमहोगे ॥ ५७॥

वेदवेदोक्तयज्ञेषुतद्वार्तासुतथैवच ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ५८॥

हे ब्राह्मणाधमो ! वेद यज्ञ, और उसकी वार्ता से तुम सदाही विमुख होगे ॥ ५८ ॥

शिवेशिवस्यमन्त्रेचशिवशास्त्रेतथैवच ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ५९ ॥

हे ब्राह्मणाधमो ! शिव शिवमन्त्र और शिवशास्त्र से तुम सदा विमुख होगे ॥ ५९ ॥

मूलप्रकृत्यांश्रीदेव्यांतद्ध्यानेतत्कथासुच ।
भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६० ॥

मूलप्रकृति श्रीदेवी उसका ध्यान और कथा इससे विमुख होकर तुम सदा ब्राह्मणाधम होगे ॥ ६० ॥

देवीमन्त्रेतथादेव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि ।
भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६१ ॥

देवी के मंत्रस्थान और अनुष्ठान से विमुख होकर ब्राह्मणाधम होगे ॥ ६१ ॥

देव्युत्सवादिदृष्टायां देवीनामानुकीर्तने ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६२ ॥

हे अधमो ! देवी के उत्सव देखने देवी के नामकीर्तन में तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६२ ॥

देवीभक्तस्यसान्निध्ये देवीभक्तार्चनेतथा ।
भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥६३॥

हे ब्राह्मणाधमो ! देवी भक्तिकी निकटता उसका अर्चन इसमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६३ ॥

शिवोत्सवादिदृष्टायां शिवभक्तस्यपूजने ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६४॥

अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शान्तिदान्त्यादिसाधनम् ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६७॥

अद्वैत ज्ञानकी निष्ठा शांति व दांतिकी निष्ठा के साधन में तुम सदा विमुख होगे ॥ ६७ ॥

नित्यकर्माद्यनुष्ठानेप्यग्निहोत्रादिसाधने ।
भवताऽनुन्मुखायूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६८ ॥

हे ब्राह्मणो ! नित्यकर्म के अनुष्ठान अग्निहोत्र के साधनमें तुम सदा विमुख होगे ॥ ६८ ॥

स्वाध्यायाध्ययनेचैवतथाप्रवचनेऽपिच ।
भवतानुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६९ ॥

हे ब्राह्मणाधमो ! वेदपाठ स्वाध्याय प्रवचन में तुम सदा विमुख होगे ॥ ६९ ॥

गोदानादिप्रदानेषुपितृश्राद्धेषुचैवहि ।
भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ७० ॥

हे ब्राह्मणाधमो ! गोदानादि दान और पितृश्राद्ध में तुम सदा विमुख होगे ॥ ७० ॥

कृच्छ्रचान्द्रायणेचैवप्रायश्चित्तेतथैवच ।
भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ७१ ॥

हे ब्राह्मणाधमो ! कृच्छ्रचान्द्रायण और प्रायश्चित्तसे तुम सदा विमुख होगे ॥ ७१ ॥

श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः।
शङ्खचक्राद्यङ्कितारच भवतब्राह्मणाधमाः॥ ७२ ॥

हे ब्राह्मणो! तुम गायत्रीदेवी को छोड़कर दूसरे देवताओं में श्रद्धा भक्तिसे संयुक्त शंखचक्रादिसे अंकित होकर ब्राह्मणाधम होगे॥ ७२ ॥

कपालिकमतासक्ताबौद्धाःशास्त्ररताःसदा।
पाखण्डाचारनिरताभवतब्राह्मणाधमाः॥ ७३ ॥

कापालिक मतमें आसक्त, बौद्ध शास्त्रमें रत, पाखंडाचारमें निरत होकर ब्राह्मणाधम होगे॥ ७३ ॥

पितृमातृसुतभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा।
भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवतब्राह्मणाधमाः॥ ७४ ॥

बनाया है) और कामशास्त्र, और कापालिक मत और बौद्धों में श्रद्धावाले होगे ॥ ७६ ॥

मातृकन्यागामिनश्चभगिनीगामिनस्तथा ।
परस्त्रीलम्पटाःसर्वेभवतब्राह्मणाधमाः ॥ ७७ ॥

तुम सब माता, कन्या, भगिनीगामी, परस्त्रीलंपट होने से स्त्रीलंपट होगे ॥ ७७ ॥

युष्माकंवंशजाताश्चस्त्रियश्चपुरुषास्तथा ।
मद्दत्तशापदग्धास्तेभविष्यन्तिभवत्समाः ॥ ७८ ॥

तुम्हारे वंश के स्त्री वा पुरुष मेरे शापसे दग्ध होकर तुम्हारी ही समान होंगे ॥ ७८ ॥

किंमयाबहुनोक्तेनमूलप्रकृतिरीश्वरी ।
गायत्रीपरमाभूयाद्युष्मासुखलुकोपिता ॥ ७९ ॥

और मेरे बहुत कहने से क्या है वह मूलप्रकृति ईश्वरी परम गायत्री तुमपर क्रुद्ध हमेशा रहेगी ॥ ७६ ॥

अन्धकूपादिकुण्डेषुयुष्माकंस्यात्सदास्थितिः ।

व्यास उवाच ॥

वाग्दण्डमीदृशंकृत्वाप्युपस्पृश्यजलंततः ॥ ८० ॥

अंधकूपादि कुंडो में तुम्हारी स्थिति होगी तब व्यासजी बोले कि इसप्रकार गौतमजी वाग्दंड देकर जलस्पर्शकर ॥ ८० ॥

जगामदर्शनार्थंचगायत्र्याःपरमोत्सुकः।
प्रणनाममहादेवींसाऽपिदेवीपरात्परा ॥ ८१ ॥

परमउत्सुकहो गायत्री के दर्शनों को गये महादेवी को प्रणाम किया वह भी परात्परा देवी ॥ ८१ ॥

ब्राह्मणानांकृतिंदृष्ट्वाऽस्मयंचित्तेचकार ह।
अद्यापिनस्यावदनंस्मययुक्तंचदृश्यते ॥ ८२ ॥

ब्राह्मणों के कर्तव्यको देख बड़ी विस्मित हुई अब तक उनका मुख स्मययुक्त दीखता है ॥ ८२ ॥

उवाचमुनिवर्यंतंस्मयमानामुखाम्बुजा।
भुजङ्गायापितंदुग्धंविपायैवोपजायते ॥ ८३ ॥

तब शापदग्ध होने के कारण ब्राह्मण वेद भूल गये तथा गायत्री भी विस्मृत हुई यह बड़ी अद्भुत बात हुई ॥ ८५ ॥

तेसर्वेऽथमिलित्वानुपश्चात्तापयुतास्तथा।
प्रणेमुर्मुनिवर्य्यंतंदण्डवत्पतिताभुवि ॥ ८६ ॥

वे सब मिलकर पश्चात्ताप करने लगे और दंडवत् पतित हो मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम करने लगे ॥ ८६ ॥

नोचुःकिंचनवाक्यंतुलज्जयाऽधोमुखाःस्थिताः।
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः ॥८७॥

और लज्जा से नीचे को मुखकर कुछ न बोले प्रसन्न हो २ ऐसा बार २ कहनेलगे ॥ ८७ ॥

प्रार्थयामासुरभितःपरिवार्यमुनीश्वरम्।
करुणापूर्णहृदयोमुनिस्तान्समुवाचह ॥ ८८ ॥

इसप्रकार मुनिको घेर सबओर से प्रार्थना करनेलगे तब करुणा से पूर्णहृदयहोकर मुनिने उनसेकहा ॥८८॥

कृष्णावतारपर्यन्तंकुम्भीपाकेभवेत्स्थितिः।
नमेवाक्यंमृषाभूयादितिजानीथसर्वथा ॥ ८९ ॥

कि कृष्णावतारपर्यंत तुम्हारी कुंभीपाक में स्थिति होगी मेरा वाक्य असत्य नहीं होसक्ता यह तुम सर्वथा सत्य जानो ॥ ८९ ॥

ततःपरंकलियुगेभुविजन्मभवेद्धिवाम् ।
यदुक्तंसर्वमेतत्तुभवेद्देवनचान्यथा ॥ ६०
फिर कलियुग में तुम्हारा जन्म होगा यह
कहा हुआ होगा इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ६
मच्छापस्यविमोक्षार्थं युष्माकंस्याद्यदीप
तर्हिसेव्यंसदासर्वंगायत्रीपदपङ्कजम् ॥ ६
मेरे शापके दूर करनेकी यदि इच्छा होवे तो
को गायत्रीके चरणकमलका सेवन करनाचाहि

व्यास उवाच ॥

इतिसर्वान्विसृज्याथगौतमोमुनिसत्तमः ।
आरब्धमितिमत्वान्तुचित्तशान्तिंजगामह ।
व्यासजी बोले कि मुनिश्रेष्ठ गौतम
सबको विदा कर आरब्ध है यह जानकर चित्त
हुये ॥ ६२ ॥

एतस्मात्कारणाज्जन्माले द्विजोत्तमानि
कलौयुगेभवत्सेतुकुम्भीपाकात्तुनिर्गताः ॥

सन्ध्यात्रयविहीनाश्चगायत्रीभक्तिवर्जिताः॥९४॥

वह पहिले शाप से दग्ध हुये पृथ्वी पर जन्मे वहीं तीनों कालकी सन्ध्या से विहीन गायत्री की भक्ति से वर्जित हुये ॥ ९४ ॥

वेदभक्तिविहीनाश्चपाखण्डमतसाश्रिताः।
अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः९५॥

वेदभक्तिसे हीन पाखण्डमतगामीथे अग्निहोत्रादि सत्कर्म स्वाहा, स्वधा से वर्जित हुये॥ ९५ ॥

मूलप्रकृतिमव्यक्तांनैवजानन्तिकर्हिचित्।
तप्तमुद्राङ्किताःकेचित्कामाचाररताःपरे॥ ९६ ॥

मूल प्रकृति अव्यक्त को वह नहीं जानते कोई तप्त-मुद्रा से अङ्कित कोई कामाचार में तत्पर हुये॥ ९६ ॥

कापालिकाःकौलिकाश्चबौद्धाजैनास्तथापरे।
पण्डिताअपितेसर्वेदुराचारप्रवर्तकाः॥ ९७॥

कापालिक, कौलिक, बौद्ध, जैनमतों में पण्डित होकर भी वे दुराचार में प्रवृत्त हुये ॥ ९७ ॥

लम्पटाःपरदारेषुदुराचारपरायणाः।
कुम्भीपाकंपुनःसर्वेयास्यन्तिनिजकर्मभिः॥ ९८ ॥

पराई स्त्रियों में लम्पट दुराचार में परायण हुये यह सब अपने कर्मोंसे फिर कुम्भीपाक में जायँगे॥ ९८ ॥

तस्मात्सर्वात्मनाराजन्संसेव्यापरमेश्वरी।

नविष्णूपासनानित्यानशिवोपासनातथा॥ ९९॥

हे राजन्! इसकारण सर्वात्मा से परमेश्वरी का सेवन करना चाहिये शिव, विष्णु की उपासना नित्य नहीं है॥ ९९॥

नित्याचोपासनाशक्तेर्याविनानुपतत्यधः।
सर्वमुक्तंसमासेन यत्पृष्टंतत्त्वयाऽनघ॥ १००॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

---

१ चौपाई—तपबल रचै प्रपञ्च विधाता । तपबल विष्णु सकल जगत्राता ॥ तपबल शम्भु करहिं संहारा । तपबल शेष धरहिं महिभारा ॥ तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहु जाय तप अस जिय जानी ॥ यह पार्वती जी ने अपनी माता से कहा है कि हमको ऐसा स्वप्न हुआ है सो बालकाण्ड में विस्तारपूर्वक वर्णित है ॥

पाखण्डी आदि जनों का निषेध ।

पाखण्डिनोविकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्चवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥ १ ॥

मनुस्मृतिः अ० ४ श्लोक ३० ॥

पाखण्डी, निषिद्धकर्मी. वैडालव्रातिक, शठ, हैतुक और वकवृत्तिक इनको वाणीसे भी नहीं पूजनकरे॥१॥

वैडालव्रातिकसंज्ञक ब्राह्मणादिकों में दानका निषेध ।

नवार्यपिप्रय[illegible]राच[illegible]व्रतिकेद्विजे ।
नबकव्र[illegible]नःसर्वयास्या[illegible]दिधर्मवित् ॥ २ ॥

धर्म[illegible]यों में लम्पट [illegible]लव्रतिक और वकव्रतिक और जो [illegible] कुम्भ[illegible]न तीनों को जल भी न दे अर्थात् ये तीनों दान के अधिकारी नहीं हैं ॥ २ ॥

त्रिष्वप्येतेषुदत्तंहिविधिनाप्यर्जितंधनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेवच ॥ ३ ॥

विधिसे संचित किया भी धन इन तीनोंको विधि-पूर्वक देने से भी दाता और प्रतिग्रह लेनेवाला इन दोनों के अनर्थ के लिये (नरक के लिये) होता है ॥३॥

यथाप्लवेनौपलेननिमज्जत्युदकेतरन् ।
तथानिमज्जतोऽधस्तादज्ञौदातृप्रतीच्छकौ ॥४॥

जैसे पाषाण की नावसे जल में तैरताहुआ मनुष्य डूबता है इसी प्रकार दान प्रतिग्रह के शास्त्र को जान-नेवाले दाता प्रतीच्छक (दान लेनेवाला) नीचे (नरक में) डूबते हैं (अनपात्रत्वनर्थोत्थानः) इसमें लेनेवाले की प्रधानता से और दाता की प्रधानतासे निन्दा की है इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है ॥ ४ ॥

आदिसे जगत् का वंचकहो—और जो हिंसामें तत्पर हो—और सर्वाभिसंधक (पराये गुणोंके न सहने से सबकी निन्दा करै) उसको वैडालव्रातिक जानना—अर्थात् जैसे विडाल मूषकों के भक्षणार्थ ध्यानी सा प्रतीत होताहै तैसही वह ब्राह्मण भी है ॥ ५ ॥

वकव्रातिक के लक्षण ॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकःस्वार्थसाधनतत्परः ।
शठोमिथ्याविनीतश्चवकव्रतचरोद्विजः ॥ ६ ॥

जो द्विज अपने विनय की प्रसिद्धि के लिये नीचे को ही दृष्टि रक्खै और जो नैष्कृतिक (निठुरता से रहै) हो और जो अपने प्रयोजन की सिद्धि में तत्परहो—और जो मिथ्या विनीत (कपट से विनयशील) हो वह वकव्रतचर होताहै अर्थात् जैसे वकमच्छियों के पकड़ने के निमित्त अधोदृष्टि आदिरूप को वनाता है ऐसेही वह भी होता है ॥ ६ ॥

वैडालव्रातिक और वकव्रातिक की निन्दा ।

येवकव्रतिनोविप्रायेचमार्जारलिङ्गिनः ।
तेपतन्त्यन्धतामिस्रेतेनपापेनकर्मणा ॥ ७ ॥
मनुस्मृतिः अ० ४ श्लो० १९२से १९७ तक ॥

जो ब्राह्मण वकुला और मार्जार के व्रतका आचरण करते हैं वे उस पाप (निंदित) कर्मसे अन्धतामिस्र नरक में पड़ते हैं ॥ ७ ॥

पांच ब्राह्मण वर्जने योग्य ॥

मागधोमाथुरश्चैव कापटःकौटकानजौ।
पञ्चविप्रानपूज्यन्ते बृहस्पतिसमायदि ॥ ८ ॥
अत्रिस्मृति अ० १ श्लो० ३८६ ॥

मागधदेश का वासी-और माथुर (चौबे) कपटदेश का वासी और कानदेश (कांचीपुरी) का वासी ये पांच ब्राह्मण बृहस्पति के समान विद्या पढ़े हों तो भी इनको न पूजे ॥ ८ ॥

चार ब्राह्मण वर्जनीय ॥

आविकश्चित्रकारश्चवैद्योनक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्रानपूज्यन्ते बृहस्पतिसमायदि ॥ ९ ॥

कंठ से तोतेकी तरह उपदेशकरै) पुराण के पढ़नेवाले इतने ब्राह्मणों को श्राद्ध यज्ञ और महान् दान में कदापि नहीं बुलावे अर्थात् औरों के अभाव में ही इनका अधिकार है अन्यत्र नहीं ॥ १० ॥

श्राद्धंचापितरंघोरंदानंचैवतुनिष्फलम् ।
यज्ञेचफलहानिस्स्यात्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ११

अत्रि० अ० १ श्लो० ३८४ ॥

श्राद्ध में पूर्वोक्त ब्राह्मणों के जिमाने से पितर घोर नरक में जाते हैं और दान निष्फल होताहै और यज्ञ में फलकी हानि होती है इस से पूर्वोक्त ब्राह्मणों को वर्ज दे ॥ ११ ॥

श्रुतिःस्मृतिश्चविप्राणांनयनेद्वेप्रकीर्तिते ।
काणःस्यादेकहीनोपिद्वाभ्यामन्धःप्रकीर्तितः १२

वेद और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र कहेगये हैं इनके मध्य में एक जो नहीं जानता वह काण और जो दोनों न जानता हो वह अन्धा शास्त्र में कहाहै १२॥

नश्रुतिर्नस्मृतिर्यस्य नशीलंनकुलंयतः ।
तस्यश्राद्धंनदातव्यंत्वन्धकस्यात्रिरब्रवीत्॥१३॥

जिसके वेद न हो और स्मृति न हो–न शील हो–न कुलहो उस अन्धे को श्राद्ध नहीं देना यह अत्रि ऋषिने कहा है ॥ १३ ॥

गौ, भूमि, तिल और सोनाआदि जो कुछ वस्तु देनी हो सो विधिपूर्वक सुपात्र को देवे और अपनी भलाई चाहे तो जान बूझकर कुपात्रको न देवै॥ २५॥

विद्यातपोभ्यांहीनेननतुग्राह्यःप्रतिग्रहः।
ग्रहात्प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेवच॥ २६॥

जो ब्राह्मण विद्या (श्रुति स्मृति से हीन हो) तप (और गृह्यादि के अनुकूल कर्म न करने वाले) से हीन हो तो वह दान न लेवे क्योंकि दान लेकर वह देने वाले और अपने को भी नरक में लेजाता है॥ २६॥

दातव्यंप्रत्यहंपात्रेनिमित्तेतुविशेषतः।
याचितेनापिदातव्यंश्रद्धापूतन्तुशक्तितः॥ २७॥
याज्ञवल्क्यस्मृतिअ० १श्लो० २०१से२०३॥

सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन सुपात्र को दान देवै यदि कोई ग्रहणआदि निमित्त आपड़े तो विशेष करके देना और मांगलेपर श्रद्धापूर्वक-शक्तिके अनुसार देना चाहिये॥ २७॥

ब्राह्मणों का शुभाऽशुभ दान देने का फल।

अभिगम्यकृतेदानं त्रेतास्वाहूयदीयते।
द्वापरेयाचमानाय सेवायदीयतेकलौ॥ २८॥

और सतयुग में ब्राह्मणके समीप जाकर और त्रेता में ब्राह्मण को बुलाकर दान देते थे और द्वापर में

मांगने वाले को और कलियुग में जो सेवा करै उसे देते हैं ॥ २८ ॥

अभिगम्योत्तमंदानमाहूयैव तु मध्यमम्।
अधमंयाचमानन्तु सेवादानन्तुनिष्फलम्॥२९॥
पराशरस्मृति–अ० १श्लो० २८। २९ ॥

समीप जाकर जो दिया दान है वह उत्तम और बुलाकर जो दिया वह मध्यम है मांगने वाले को जो दिया वह अधम और सेवक को जो दिया वह निष्फलहै ॥ २९ ॥

अश्रोत्रियःपितायस्य पुत्रःस्याद्वेदपारगः।
अश्रोत्रियोवापुत्रःस्यात्पितास्याद्वेदपारगः ३० ॥
ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्यस्याच्छ्रोत्रियःपिता।
मंत्रसम्पूजनार्थंतुसत्कारमितरोऽर्हति ॥ ३१ ॥
मनुस्मृति० अ० ३ श्लो० १३६। १३७ ॥

जिसका पिता वेदपाठी न हो और पुत्र वेद के पार को जानता हो और जिसका पुत्र वेदपाठी न हो और पिता वेदके पारको जानताहो इन दोनों में वही श्रेष्ठ जानना जिसका पिता वेदपाठी हो और जो स्वयं वेदपाठी हो और मूर्खका पुत्र हो वह मंत्र (विद्या) के पूजन सेही सत्कार के योग्य है ॥ ३० । ३१ ॥

सम्पूज्यविदुषोविप्रानन्येभ्योपिप्रदीयते।

तत्कार्यंनैवकर्त्तव्यंनदृष्टंनश्रुतंमया ॥ ३२ ॥

अत्रिस्मृति० अ० १ श्लो० ३४१ ॥

और विद्वान् ब्राह्मणों को प्रथम पूजन करके अन्य (मूर्ख) ब्राह्मणों को भी दान दिया जाता है और उस कार्य को नहीं करना जो हमने न तो देखा हो न सुना हो ॥ ३२ ॥

विद्वान् ब्राह्मण के अभाव में मित्र को यथेच्छ जिमावे परन्तु अभिरूप (विद्वान्) भी विद्वान् को न जिमावै क्योंकि शत्रुने जो खाया श्राद्धमें वह परलोक में निष्फल नहीं होता है । और जो ब्राह्मण चोर, महापातकी, नपुंसक और नास्तिक हों इन ब्राह्मणों को हव्य कव्य में वर्ज दे । और ब्रह्मचारी (जो विना जाने ब्रह्मचर्य करता है) विना पढ़ा जिसकी चर्म बिगड़ी हो, जो जुआरीहो, और अनेकों को यज्ञ होम करावे इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में न जिमावे । और वैद्य, मंदिर के पुजारी, मांसके वेंचने वाले, जो व्यापारसे जीविका करते हों इतने ब्राह्मण देव पितृ कार्य में वर्जित हैं, नीच की नौकरी करने वाला जिसके नख बिगड़े हों। जिसके काले दांतहों, और जो गुरु के विरुद्ध आचरण करें, और जिसने श्रुति व स्मृति की अग्नि त्यागदीहो और जो व्याजसे जीता हो ये भी ब्राह्मण हव्य कव्य में वर्जित हैं । और क्षयीरोगी, पशुओं को पालनेवाला

पंच यज्ञों से रहित, ब्राह्मणों का वैरी, और अनेकों के उपकारार्थ दिये धनको जो भोगे ये भी वर्जितहैं और नचानेवाला, जिसका स्त्री के सम्बन्ध से ब्रह्मचर्य नष्ट होगयाहो अथवा पहिलेही आश्रम में जो संन्यासी हो और अपनी सजातीय स्त्री के विवाहे विना जिसने शूद्रा विवाह ली हो पुनर्भू स्त्री का पुत्र, और जिसके घर में उपपति (जार) हे इतने ब्राह्मण देव पितृ ब्रह्म-भोज में वर्जित हैं। वेतन लेकर जो पढ़ावे और वेतन लेकर जिसे पढ़ावे—और शूद्रका शिष्य, और शूद्र का गुरु कठोर जिसकी वाणी हो, अथवा जिसे शाप लगा हो और कुंडपति जीव ते जो जार से पैदाहो—और गो-लक जो पतिके मरे पर जार से पैदाहो ये भी हव्य कव्य में वर्ज दे। जो विना कारण माता, पिता, गुरु इनको त्यागदे अर्थात् सेवा आदि न करे अध्ययन कन्यादान आदि सम्बन्धों से जो पतितों के संग स-म्बन्ध को प्राप्त हुआ हो कदाचित् कोईकहे कि पतित से इसका निषेध सिद्ध है सो ठीक नहीं क्योंकि वर्ष दिन में पतित के सम्बन्ध से पतित होता है और वर्ष दिन से पहले इसको समझना ये दोनों भी हव्य कव्य में वर्जित हैं। और जो घर में आग्नि लगावे, विषदेने वाला, कुण्ड, और गोलक के अन्न को भोजन करै, सोमलता को जो वेचे, जो समुद्रों में होकर अन्यद्वीपों में जाय, भाट. तेली. झूंठी साक्षी देने वाला, इनको

भी हव्य कव्य में वर्जे दे । पिता के संग जो विवाद करै, कैतव, मदिरा पीनेवाला, कुष्ठी, जिसको महापातक आदि से अभिशाप लगाहो, दम्भी, रसों को जो वेचे ये भी हव्य कव्य में वर्जित हैं । धनुष और वाणों को बनाने वाला, और अग्रेदिधिषूका पति, मित्र का द्रोही द्यूतवृत्ति, और जो पुत्र से पढ़ाहो इन ब्राह्मणोंको हव्य कव्य में न जिमावै । अपस्मारी जिसको अपस्मार (मिरगी) का रोगहो, जिसको गंडमालाका रोग हो, और जो श्वेत कुष्टरोगी हो, और जो पिशुन (सूचक वा चुगल) उन्मादी, अन्धा और वेद का निंदक, ये भी हव्य कव्य में वर्जने योग्य हैं । हाथी, वैल, घोड़े, ऊंट इनको जो दमन (शिक्षादे) और जो नक्षत्रों (ज्योतिःशास्त्र) से जीविका करै, जो खेल के लिये पिंजरे में पक्षियों को पाले, और जो युद्धका आचार्य (आयुधविद्या का उपदेश करनेवाला) इनको भी श्राद्ध में वर्जदे । जल के प्रवाहों को तोड़नेवाले और रोकने वाला, वास्तुविद्या से जो जीवै, पूत, वृक्षों को लगाने वाला (माली) इनको भी हव्य कव्य में न जिमावै । क्रीड़ा के लिये जो कुत्तों को पाले श्येनों (वाज) के लेन देन से जो जीवै, और कन्याके संग जो गमन करै, हिंसा में तत्पर, शूद्र से जिसकी वृत्ति का वर्तमान हो, और विनायकआदि गणों की जो यज्ञ करावै उनको भी श्राद्धों न जिमावै । गुरु अतिथि

आदिको प्रत्युत्थान देनेआदि आचरण से हीन, क्लीब अर्थात् धर्मकार्य में उत्साह रहित, नित्ययाच्ञा दूसरों का उद्वेजक जो स्वयं की हुई अन्यथा निर्वाह होनेपर भी खेती से जीवे, और जो श्लीपदी व्याधि से जिस के चरण स्थूल हों, और जो किसी कारण से सच्चे मनुष्यों की निंदा करै। मेष (मेढ़े) और महिष (भैंसे) इनसे जो जीवै और पर पूर्वा (पुनर्भू) का पति और धन लेकर जो प्रेतों को लेजाय अर्थात् धर्मार्थ नहीं, क्योंकि इस श्रुति से (एतद्वैपरमंतपोयत्प्रेतमरण्यंहरन्ति) वन में प्रेत का लेजाना परम तप कहाहै—इतने ब्राह्मणों को बड़े यत्न से वर्ज दे। निंदित है आचरण जिनका और सज्जनों के संग एक पंक्तिमें भोजन करने के अयोग्य इन नीच ब्राह्मणों (पूर्वोक्त काणआदि) को शास्त्र का ज्ञाताद्विजातियों में श्रेष्ठ (ब्राह्मण) देव पितरों के कर्म में वर्ज दे अर्थात् पूर्वजन्म में संचित पाप से प्राप्त हुआ है काणआदि स्वरूप जिनको ऐसे ये देवता और पितरों के कर्म के अयोग्य हैं। विनापढ़ा ब्राह्मण तृण की अग्नि के समान शांत (बुझा) होजाता है इससे उसको दान न देवे क्योंकि भस्म में होम नहीं किया जाता है। अप्रसिद्ध होने से परिवेत्ता आदि का लक्षण कहते हैं कि विना विवाहे जेठभाई के विद्यमान होने से जो विवाह और अग्निहोत्र ग्रहण करै उस छोटे भाई को परिवेत्ता और बड़े को परिवित्ति

कहते हैं अर्थात् बड़ेभाई के विवाह आदि होने परही छोटाभाई अग्न्याधान और विवाह करे। प्रसंग से परिवेदन के सम्बन्धियों को जो अनिष्ट फल होता है उसको कहते हैं कि परिवित्ति, परिवेत्ता और जिस कन्यासे परिवेद न हुआहो और कन्या का दाता और याजक (विवाहका होम करनेवाले पंडित) ये पांचों नरक में जाते हैं॥ धर्म से गुरुआदि ने नियुक्त की भी मरेहुये भाई की स्त्री में जो मनुष्य कामनासे अनुरक्त होता है वह दिधिषूपति जानना। पराई स्त्री में दो पुत्र कुण्ड और गोलक पैदा होते हैं ऐसे निंदित होने से श्राद्ध आदि में अभोज्य हैं। परलोक में पैदा हुये वे दोनों प्राणी दाताओं के दिये हव्य और कव्योंको इस लोक और परलोक में नष्ट करते हैं॥

अपाङ्क्तदन (सत्पुरुषों के संग एक पंक्तिमें भोजन करने के योग्य) द्विज (चोरआदि) जितने भोजन करते हुये ब्राह्मणों को देखे उतने ब्राह्मणों को भोजन कराने के श्राद्ध के फल को दाता प्राप्त नहीं होता इस से ऐसे स्थान में भोजन करावे जहां स्तेनआदि न देखसकें अन्धा यदि देखताहो अर्थात् अन्धे को देखने का तो असम्भव है किन्तु देखने के योग्य देश में बैठा हुआ होय तो नब्बे ९० ब्राह्मणों के फल को और काणा साठ ६० ब्राह्मणों के और श्वेत कुष्ठवाला सौ १०० ब्राह्मणों के और पापरोगी एक सहस्र १०००

ब्राह्मणों के दाता के फल को नष्ट करता है यह वचन इसलिये है कि अन्ध आदिकों को समीप न रहनेदे-और छोटी व बड़ी संख्या को कथन है सो इसलिये है कि अधिक संख्या में दोष भी अधिक संख्या में दोष भी अधिक है और उसका प्रायश्चित्त भी अधिक है शूद्रको यज्ञ करनेवाला अपने अंगों से जितने ब्राह्मणों का स्पर्श (छूना) करै दाता को उतने ब्राह्मणों के श्राद्ध का फल नहीं होताहै वेदका पाठी भी ब्राह्मण लोग से शूद्र याजक के प्रतिग्रहको ग्रहण करके शीघ्रही इसप्रकार नष्ट होता है जैसे कच्ची मिट्टी का पात्र जल में। सोमलता के बेचने वाले को दियादान दाता के भोजन के लिये विष्ठा होता है अर्थात् देने वाला विष्ठ खानेवालों (शूकरआदि) में पैदा होता है-और वैद्यको दिया हुआ दान पूय (राद) और शोणित (रुधिर) होता है-और देवलक (पुजारी) को दिया दान नष्ट (निष्फल) होता है-और वार्द्धुषि (व्याज लेनेवाला) को दियादान अप्रतिष्ठ (जिसका कोई आश्रय न हो अर्थात् निष्फल) होता है। वाणिज (लेन देन) करने वाले ब्राह्मण को दिया हुआ दान इसलोक और परलोक के लिये नही होता और पुनर्भू स्त्री के पुत्र को जो दिया दान है वह भस्म (राख) में होम किये हविके समान होता है अर्थात् निष्फल होता है। पंक्ति भोजन में अयोग्य और यथाक्रम से कहे

हुये इतर असाधुओं को दिये हुये अन्नको बुद्धिमान् मनुष्य मेदा, रुधिर, मांस, मज्जा, और अस्थिरूप कहते हैं अर्थात् इनको देनेवाले मेदाआदि के भोजन करने वालों की योनि में पैदा होते हैं। मनुस्मृति०—अ० ३ श्लोक—१४४ से १८२ श्लोक तक कहा है सो हम ने इतना प्रमाण दिया है। और धर्मशास्त्र में भी इन ब्राह्मणों को हव्य कव्य में वर्जित किया है इससे दाता और ब्राह्मण सहित ये दोनों नरक में अवश्यही जायँगे इससे वर्जने योग्यहै जिससे ब्राह्मणोंको परीक्षाकरै कि।

"दूरादेवपरीक्षेतब्राह्मणंवेदपारगम्।"

मनु०—अ०—३श्लो०१३०।

वेदका पार जो जानेवाला ब्राह्मण अर्थात् जो वेद की सम्पूर्ण शाखाओं को जानता हो उसकी दूर सेही परीक्षा करे॥

नब्राह्मणंपरीक्षेतदैवेकर्मणिधर्मवित्।
पित्र्येकर्मणितुप्राप्तेपरीक्षेतप्रयत्नतः॥ ३२॥

मनु०—अ० ३ श्लो० १४९।

धर्म का जानने वाला पुरुष देवकर्म में न परीक्षित अर्थात् लोक में प्रसिद्धि मात्र से भी भलीप्रकार ब्राह्मणको जिमावै और पितरों के लिये जब श्राद्धआदि कर्मकरै तब तो बड़े यत्न से परीक्षा करै॥ ३२॥

पितरों के अर्थ ब्राह्मण भोजन का नियम।

एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थेपांचयज्ञिके।
नचैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवंप्रतिद्विजम् ॥ ३३ ॥

मनुस्मृति–अ० ३–श्लो० ८३।

पितरों के निमित्त किया जो पंच यज्ञोंका कर्म उस में चाहे एक भी ब्राह्मण को जिमावे अर्थात् सामर्थ्य होय तो बहुत भी ब्राह्मण जिमावे–और वैश्वदेव के लिये किसी एक ब्राह्मण को भी न जिमावे ॥ ३३ ॥

अथ भोजनविधिर्लिख्यते।

पञ्चार्द्रोभोजनंकुर्य्यात्प्राङ्मुखोमौनमास्थितः।
हस्तौपादौतथैवास्यमेपुपञ्चार्द्रतामता ॥ ३४॥

ब्राह्मणस्यचतुरस्रंमण्डलम्।

धर्मराजायनमः। चित्रायनमः। चित्रगुप्तायनमः। सन्मुखेदद्यात्।

हस्तौप्रक्षाल्य।

भूपतयेनमः। भुवनपतयेनमः। भूतानांपतयेनमः।

दक्षिणभागेदद्यात्।

नीलकण्ठायनमः। गुरुभ्योनमः। क्षेत्रपालायनमः। सरस्वत्यैनमः। वामभागेदद्यात्।

नैवेद्यं । आचमनम्। अमृतोपस्तरणमिति।
तर्ज्जनीमध्यमाङ्गुष्ठ लग्नाप्राणहुतिर्भवेत् ।
मध्यमानामिकांगुष्ठैरपानेजुहुयात्ततः ॥ ३५ ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानेचजुहुयात्ततः ।
तर्ज्जनींचवहिष्कृत्वा उदाने जुहुयाद्धविः ॥ ३६ ॥
समानेसर्वहस्तेन समुदायाहुतिर्भवेत् ।

अमृतापिधानमसि । पुनराचमनम् । उच्छिष्टोदकदानम् ।

रौरवेपुण्यनिलयेपद्मार्बुदनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकइच्छूनामक्षय्यमुपातिष्ठताम् ॥३७॥

यह हमने भोजनविधि कही है इसके अनुसार जो कोई भोजन करता है वही द्विजाति है अन्य नहीं। हमने आज कल जहां तहां देखा है कि दिन दिन दो मर्तबा भोजन कर लेते हैं फिर सायंकाल में भोजन नहीं करते हैं यह उन लोगों की भूल है और धर्मशास्त्र से भी विरुद्ध है (अगर जो उनलोगों से दिन दिन भोजन करने के बाबत में पूछा जाय तो यह कहेंगे कि दिन दिन भोजन करना चाहिये क्योंकि न मालूम रात को कीड़े वगैरह पड़ जायें इससे खौफ है इस कारण रात को भोजन नहीं करना चाहिये यह मत नवानगरों की बात है) इससे यही मालूम होता है कि ये

लोग धर्मशास्त्र से भी शापित हैं इस वास्ते दिन दिन भोजन करलेते हैं और रात को नहीं करते हैं, हे महाशयो ! देखो धर्मशास्त्र में दिन में दो मर्तवा भोजन करने का निषेध किया है कि ॥३४ । ३७॥

॥ श्लोक ॥

कृतहोमस्तुभुञ्जीत रात्रौचतिथिभोजनम् ।
सायंप्रातर्द्विजातीनामशनंश्रुतिचोदितम् ॥ ३८॥
नांतराभोजनंकुर्यादग्निहोत्रसमोविधिः ।
शिष्यानध्यापयेच्चापिअनध्यायेविसर्जयेत्॥३९॥

होम को करके और अभ्यागत को भोजन कराकर रात्रि को भोजन करै—सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करना द्विजातियों को वेदमें कहा है जो बीच में (दिन में दुबारा) भोजन नहीं करना है यह विधि अग्निहोत्र के तुल्य है—शिष्यों को पढ़ावे और अनध्याय में शिष्यों का विसर्जन करै (छुट्टी देदेवै) ॥३८।३९॥

॥ श्लोक ॥

वर्जयेन्मधुमांसञ्चभौमानिकवकानिच ।
भूस्तृणंशिग्रुकञ्चैवश्लेष्मानकफलानिच ॥४०॥

भावार्थ ॥ मद्य—मांस और सबप्रकार के कवक और भूस्तृण—और शिग्रु और श्लेष्मानक इनको वानप्रस्थ त्यजै ॥ तात्पर्य ॥ मद्य—मांस और भौम (जो भूमि

में पैदाहों) ऐसे कवक (छत्राक) भूस्तृण (जो मालवे में होता है ऐसा शाक) और शिग्रु (वाह्लीक देश में प्रसिद्धशाक) और श्लेष्मातक (बहेड़ा) के फल-इन सबको वानप्रस्थ वर्ज दे-यहां कवकों का जो भौमानि विशेषण दिया है उसका यह तात्पर्य नहीं है कि जो छत्राकार भूमि में पैदा हों वेही वर्जित हैं किन्तु वृक्ष पर पैदा हुये भी वर्जित हैं-यहांपर गोविन्दराज का तो यह कथन है कि कवकों का जो भौम विशेषण किया है उससे यह प्रतीत होता है अन्य वृक्ष आदि के कवक भक्षण के योग्य हैं-यह ठीक नहीं क्योंकि मनुजी ने द्विजातियों को सबप्रकार के कवक अभक्ष्य कहे हैं और वानप्रस्थ को नियम की अधिकताही उचित है अर्थात् सबप्रकार के कवक त्यागने योग्य हैं यमराज ने तो इस वचन से यह कहा है कि भूमि में अथवा वृक्ष में पैदा हुये छत्राकों को जो भक्षण करते हैं उनको ब्रह्महत्यारे जानना और वे ब्रह्महत्यारों में भी निंदित हैं अर्थात् वृक्षपर पैदा हुये कवक भी नहीं खाने चाहिये और मेधातिथि ने भौमानि इस पद से गोजिह्वा (गोभी) का निषेध कहा है यह भी ठीक नहीं क्योंकि भौमपद का गोजिह्वा अर्थ किसी भी अभिधान कोशआदि में प्रसिद्ध नहीं है-यद्यपि

[illegible]

कवकों का निषेध पांचवें अध्याय में कह आये थे यहां पर पुनः जो निषेध है सो भूस्तृण आदि के भक्षण का जो प्रायश्चित्त है वही प्रायश्चित्त कवकों के भक्षण में है यह जताने के लिये है ॥ ३४ ॥

भोजन के लिये कुलगोत्र के कहने का निषेध।

नभोजनार्थंस्वेविप्रःकुलगोत्रेनिवेदयेत् ।
भोजनार्थंहितेशंसन्वान्ताशीत्युच्यतेबुधैः॥ ३५ ॥
मनु० अ०३ श्लो० १०९ ।

ब्राह्मण भोजन के लिये अपने कुल और गोत्र को न कहे क्योंकि भोजन के लिये कुल गोत्र को कहते हुये ब्राह्मण को पण्डितजन वान्ताशी कहते हैं अर्थात् वमन किये पदार्थको भक्षण करनेवाला कहतेहैं ३५ ॥

आत्माही के लिये पाक करनेका निषेध।

अघंसकेवलंभुङ्क्तेयःपचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनंह्येतत्सतामन्नंविधीयते ॥ ३६ ॥
मनु०अ० ३ श्लो० ११८

जो पुरुष केवल अपने लियेही पाक करता है वह पाप को भोगता है क्योंकि वह यह जो यज्ञ से शेष अन्न का भक्षण कहा है सोई सत्पुरुषों का अन्न कहाहै क्योंकि इस श्रुति में यह लिखा है कि—

"केवलाघोभवतिकेवलादी यस्माद्यदेव पाक यज्ञावशिष्टमशनमन्नमश्यते इति श्रुतेः"

जिससे जो अकेला आपही खाता है वह केवल पापरूप है और पाप यज्ञ से अवशिष्ट अन्न खायाजाता है वही अशन (भोजन) है ॥ ३६ ॥

हव्य और कव्य वेदपाठी ब्राह्मणको देना चाहिये।

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः ।
अर्हत्तमायविप्रायतस्मैदत्तंमहाफलम् ॥ ३७ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० १२८।

दाताओं को हव्य और कव्य वेदपाठी और आचार आदि पूजने योग्य ब्राह्मण को ही देने क्योंकि उसको जो दिया जाता है अत्यन्त फल को देता है ॥ ३७ ॥

प्र०—जो मनुष्य आजकल कहते हैं कि श्राद्ध करने से क्या होता है श्राद्ध के पिंडों का देनेवाला कौन है मरेहुये क्या लेने के वास्ते लौट आवेंगे ॥

उत्तर—भीष्मपितामहजी गया करने के वास्ते गया जी में गये थे सो वेदीपर उनके पिता का हाथ देख पड़ा तब पंडितों से पूछा कि पंक्ति में क्या लिखा है तब पंडितों ने उत्तर दिया कि कुश के ऊपर रखो हाथ में पिंडदान न दो तब भीष्मजी के पिता प्रकट हुये और कहा कि हे पुत्र ! तू ने आज वेद की मर्यादा रक्खी नहीं तो आज ही वेद की मर्यादा नष्ट होगई थी अगर

तू मेरे हाथ में पिंडदान दे देता तो मैं तुमको शाप देता क्योंकि हाथकी परीक्षा कोई नहीं है यद्यपि मैं हूं तथापि कोई मेरे से जबरदस्त हो तो मुझको धक्का देकर अपना हाथ कर दे तो यह ठीक नहीं कुश के ऊपर वेद के आज्ञानुसार पिंड रक्खा जाता है सो जिसको दिया जाता है वही पाता है अन्यत्र नहीं पाता है तो हे पुत्र ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूं और मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्त्ति युग २ में बनी रहै और यश को पाओ और हे पुत्र ! कलियुग में किसी का हाथ पांव नहीं देख पड़ेगा अगर जो तू मेरे हाथमें पिंडदान देता तो कलियुग के मनुष्य यही कहते कि हाथ में पहिले पिंडदान दिया जाता था अब किस को दें अब कोई हाथ देखता नहीं सो यह बात हरिवंशपुराण में लिखी है और पिंडदान का लेना कुशके ऊपर धरने पर ऋक् यजुः, साम–पिताका हक ऋग्वेद–पावाका हक यजुर्वेद आजा का हक सामवेद–वसुपिता, बाबा रुद्र, आजा सूर्य, ये पिंडदान लेते हैं इनको दियाजाता है और वही हमारे पितर जहां होंगे वहीं पहुंचाते हैं और जो इनको नहीं मानता उनके मुंहमें उन्हीकी विटा पड़े॥

अब पितृगणों की उत्पाति कहते हैं ।

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
येच्चैवमुपचर्याःस्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥ ३८ ॥

इन सब पितरों की जिससे उत्पत्ति है और जो पितर हैं और जिन ब्राह्मणों के और जिन शास्त्रोक्त उपायों से पूजने योग्य पितर होते हैं–उन सब को तुम सुनो ॥ ३८ ॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्ययेमरीच्यादयःसुताः ।
तेषामृषीणांसर्वेषांपुत्राःपितृगणाःस्मृताः॥ ३९ ॥

ब्रह्मा के पुत्र स्वायंभुव मनु के जो मरीचि आदि पुत्र हैं उन सब ऋषियों के पुत्र मनु आदि ने पितरों के गण कहे हैं ॥ ३९ ॥

विराट्सुताःसोमसदः साध्यानांपितरःस्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्चदेवानाम्मारीचालोकविश्रुताः ४०

विराट् के पुत्र सोमसद–साध्यों के पितर कहाते हैं – और जगत् में विख्यात मरीचि के पुत्र अग्निष्वात्त देवताओं के पितर मनुआदि ने कहे हैं ॥ ४० ॥

दैत्यदानवयक्षाणांगन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणांचस्मृताबर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ ४१ ॥

दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण और किन्नर इनके पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद मनुआदिकों ने कहे हैं ॥ ४१ ॥

सोमपानामविप्राणांक्षत्रियाणांहविर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपानांच शूद्राणांतमकालिनः॥४२॥

ब्राह्मणों के पितर सोमपा, क्षत्रियों के हविर्भुज वैश्यों

के आज्यप, और शूद्रों के सुकालिपितर मनुआदि ने कहे हैं ॥ ४२ ॥

सोमपास्तुकवेःपुत्राहविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाःपुत्रावसिष्ठस्यसुकालिनः॥४३॥

सोमप भृगु के पुत्र, हविर्भुज अंगिरा के पुत्र आज्यप पुलस्त्यके पुत्र और सुकालि वसिष्ठ केपुत्रहैं ॥ ४३ ॥

अनग्निदग्धानाग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा॥
अग्निष्वात्ताश्चसौम्याश्चविप्राणामेवनिर्दिशेत्॥

अग्निदग्ध और अनाग्निदग्ध और काव्य तथा बर्हिषद और अग्निष्वात्त और सौम्य इनको ब्राह्मणों केही पितर जानै ॥ ४४ ॥

यएतेतुगणामुख्याः पितॄणांपरिकीर्त्तिताः।
तेषामपीहविज्ञेयंपुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ ४५ ॥

जो ये प्रधान २ पितरों के गण कहे हैं उनके भी अनन्त पुत्र और पौत्र इस जगत् में जानने और इसी श्लोक से सूचित किये (जताये) अन्य भी मार्कण्डेयपुराणादिकों में कहे हुये वर वरेण्य आदि पितरों के गण सुने जाते हैं ॥ ४५ ॥

ऋषिभ्यःपितरोजाताःपितृभ्योदेवमानवाः।
देवेभ्यस्तुजगत्सर्वंचरंस्थाण्वनुपूर्वशः ॥ ४६ ॥

मनु० अ० ३ श्लो० १९३ से२०१ तक

वाद शूद्र कहँ द्विजनसन, हम तुम ते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखावहिं डाटि॥ ५॥

चौ०। परत्रियलम्पट कपट सयाने। मोह द्रोह मनता लपटाने॥ तेउ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चारित्र कलियुग कर॥ आपु गये अरु आनहिं घालहिं। जो कोउ श्रुतिमारग प्रतिपालहिं॥ कल्प कल्प भरि इक इक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति कर तरका॥ जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा। श्वपच किरात कोल्ह कलवारा॥ नारि मुई गृहसम्पति नासी। मूड़ मुड़ाइ भये संन्यासी॥ ते विप्रन सन पांव पुजावहिं। उभय लोक निजहाथ नशावहिं॥ विप्र निरक्षर लोलुप कामी। निराचार शठ वृषली स्वामी॥ शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि वरासन कहहिं पुराना॥ सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरणि अनीति अपारा॥

दोहा।

भये वर्णसंकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भवरुजशोक वियोग॥ ६॥
श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ, संयुत ज्ञान विवेक॥
ते न चलहिं नर मोहवश, कल्पहिं पन्थ अनेक॥ ७॥

छन्द॥

बहुदाम संवारहिं धामयती। विषया हरि लीन गई
बिरती। तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात

न जात कही ॥ कुलवन्ति निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरिनिचेरिगती ॥ सुत मानहिं मात पिता तव लौं । अवलानन दीख नहीं जवलौं ॥ ससुरारि पियारि लगी जवते । रिपुरूप कुटुम्ब भये तवते ॥ नृप पापपरायण धर्म्म नहीं । करु दण्ड विदण्ड प्रजा नितहीं ॥ धनवन्त कुलीन मलीन अपी । द्विजचिह्न जनेउ उघार तपी ॥ नहिं मानपुराणहिं वेदहिं जो । हरिसेवक सन्त सही कलि सो ॥ कविवृन्द उदार दुनी न सुनी । गुण दूषक वात न कोपि गुनी ॥ कलि वारहिं वार दुकाल परे । विनु अन्न दुखी वहु लोग मरे ॥

दोहा ॥

सुनु खगेश कलि कपट हठ, दम्भ दोष पाखण्ड ।
काम क्रोध लोभादि मद, व्यापिरहे ब्रह्मण्ड ॥ ८ ॥
तापस धर्म्म करहिं नर, जपतपमख व्रतदान ।
देव न वर्ष धरणि पर, वये न जामहिंधान ॥ ९ ॥

छन्द ॥

अवला कच भूषण भूरि क्षुधा । धनहीन दुखी ममता वहुधा ॥ सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म्मरता । मति थोरि कठोर न कोमलता ॥ नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान विरोध अकारणहीं ॥ लघु जीवन संवत पंचदशा । कल्पान्त न नाश गुमान अशा ॥ कलिकाल बेहाल किये मनुजा । नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥ नहिं तोष विचार न शीतलता । सब जाति कुजाति भये

अँगता ॥ इरशा परुषा छल लोलुपता । भरि पूरि रही समता विगता ॥ सब लोग वियोग विशोक हये । वर्णाश्रमधर्म्म अचार गये ॥ दम दान दया नहिं जानपुनी । जड़ता परिपंचक तायमुनी ॥

दोहा ॥

सुन व्यालारि कराल कलि, मल अवगुण आगार ।
गुणों बहुत कलिकालकर, बिनु प्रयास निस्तार ॥ १० ॥

अब कलियुग के राजाओं का वर्णन करते हैं ।

श्रीकृष्णजी के रहने तक द्वापरयुग था उनके पीछे कलियुग में जो राजा हुये उन्होंने सचाई व धर्म को छोड़ दिया व थोड़ी आयुर्बल रहने से कुछ शुभ कर्म भी नहीं करसके थे जब श्रीकृष्णजी वैकुण्ठधाम को गये तब पाण्डवों के वंश में चक्रवर्ती राजा परीक्षित हुये व उनके उपरान्त वज्रनाभ जो जन्मेजय चक्रवर्ती राजा होंगे व जरासन्ध का बेटा जो सहदेव था उस के वंश में पुरञ्जित नाम राजा होगा उसे शौनक मन्त्री मारकर प्रद्योतन अपने पुत्रको राज्य देगा उसके वंश में तीनसौ अड़तीस (३३८) वर्षतक राजगद्दी रहेगी फिर शिशुनाग नाम राजा होगा उसके कुलमें काकौन व क्षेमधर्मादिक उत्पन्न होकर तीनसौ साठ (३६०) वर्ष राज्य करेंगे फिर महानन्दी राजा के नन्दनाम [illegible] उत्पन्न होकर [illegible] सब क्षत्रियों का

धर्म नष्ट करैगा व उसके डरसे सब कुलीन क्षत्री भागकर पंजाब में जा बसैंगे व पर्वतके रहनेवाले क्षत्री शूद्रधर्म्म रक्खैंगे व राजा विन्द के आठ बेटे राज्य करैंगे व उन आठोंको चन्द्रगुप्त नाम दास मारकर आप राजगद्दी पर बैठ जायगा व उसके वंश में वारीचरी व देवहूती आदिक उत्पन्न होकर हज़ार (१०००) वर्षतक वह राजा रहैंगे फिर कण्वनाम मन्त्री देवहूती अपने राजा को स्त्री के विषयमें फँसे रहने से मारकर आप राज्य करैगा उसी कुल में वसुदेव व वहुमित्र व नारायण नामआदिक उत्पन्न होकर उनके वंशमें तीन सौ पैंतालीस (३४५) वर्षतक राज्य रहैगा फिर कमल नाम शूद्र नारायण नाम अपने राजाको मारकर आप राजगद्दी पर बैठ जायगा उसके वंशमें कृष्ण व पूर्णमास आदिक उत्पन्न होकर तीस पीढ़ी साढ़े आठ सौ वर्षतक राज्य करैंगे उमरनी शहरके रहनेवाले सात अहीर राजा होकर उन्हें मारने उपरान्त कानों का राज्य होगा व उनके पीछे चौदह पीढ़ी तक मुसलमान राजा होकर वादशाह कहलावैंगे व एक हज़ार निन्नानवे (१०६६) वर्ष राज्य रहैगा व मुसलमानों को जीतकर दश पीढ़ी गोरण्ड राज्य करैंगे उनके पीछे ग्यारहपीढ़ी निन्नानवे वर्षतक मौनका राज्य होगा इतने लोग कलियुगमें नामी राजा होकर। फिर अहीर व शूद्र व म्लेच्छ राजा होंगे व कलियुगवासी राजा अपना २

कर्म व धर्म छोड़कर स्त्री व बालक व गौका वध करेंगे व दूसरे का धन व स्त्री व पृथ्वी बरजोरी से छीनकर काम, क्रोध, लोभ अधिक रक्खेंगे उनकी दशा देखने से प्रजालोग अपने कर्म व धर्मसे न रहकर बहुत पाप करेंगे जब अन्त कलियुगमें इसी तरह घोर पाप होगा जब ब्राह्मणलोग अत्यन्त दुःखी होंगे तब नारायणजी धर्मकी रक्षाके वास्ते सम्भल देश में गौड़ ब्राह्मणके घर कलङ्कीकन्या से (दश वर्षकी कन्या बिना बिवाही के उदरमें उत्पन्न होंगे) अवतार लेवैंगे व नीले घोड़े पर चढ़कर हज़ारों राजा व अधर्मी व पापियों को खड्ग से मारडालेंगे जब उनके दर्शन मिलने से बचेहुये मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त होजावैगा तब वहलोग पाप करना छोड़कर अपने धर्म (कुलकी मार्ग) में चलेंगे उसके आठसौ वर्ष उपरान्त सत्ययुग होकर सब छोटे बड़े अपना अपना धर्म करेंगे ॥

विद्या व धर्म।

कवित्त ॥

सीखे सबै भूलत मैथिलाक्षर और देवनागरी ॥ १ ॥

बड़े २ ओहदे चहैया अंगरेजी पढ़े जाके सब सामने नचावैं जांय पागरी। याही ते लाभ जान कलियुग में याकी सबै सादर सप्रेम साथ मानत गुणागरी ॥ उर्दू फार्सी व अरबी आदि हे सुजान जहां तहां देखो होत उन्नति उजागरी। शिवगोविन्द भावैं सब ठौर २ गाजी फिरैं हाय आज मारी फिरै मातु देवनागरी २॥

कलि के मनुष्य सब वेदपथ त्यागि चलें मानत न नेक मूढ़ जो है यश आगरो। मातु पितु सेवा मन लावैं नहिं साधु सन्त कारण विन क्रोध औ भावैं तलब वागरो॥ साधक ते हीन दुःख दारिद्र शूलादि सहैं पापही है शिवनाथ जिनके शिर पागरो। कौन भांति धारहिंगे हिय में सुकर्म जीव याते महिमण्डल में होवै गुण नागरो ॥ ३ ॥

कोई जाने उर्दू अरु फारसी जबान कोई कोई मुसलमानी इल्म जाने अर्वि नागरी। कोई तो ईसाइयों का अंगरेजी पाठ जाने कोई तो पहाड़ी तुर्की हुण्डी हिन्दी सागरी ॥ कोई बंगला अरु उड़ैसा ब्रजभाखी जाने कोई द्राविड़ी पंजाबी जाने वलिकुमांगरी। शिवगोविन्द लखि देखेउ पोथी औ पुराणों बीच सर्वोपरि विद्या एक संस्कृत औ नागरी ॥ ४ ॥

हिन्दी सरक्षक को फारसी ने लुप्त किया अंगरेजी प्रधान भई सर्व गुण आगरी। देश के निवासी सुख-

रासी इल्म छोड़दिये दास स्वीकार किये हिन्दी पर त्यागरी ॥ सुमुखी अवलोक किये भारत की अनि दशा आशा अब एक यही मेरे मन लागरी । भारतके भाई यदि अबहूं भलाई चहैं करैं तो प्रचार फेर देश देव नागरी ॥ ५ ॥

छन्द ॥

अंगरेजी फ़ारसीके शीश पै न पागरी । मोहिं कैथी बंगाली गुरुमुखी उजागरी ॥ द्राविड़ी तिलंगि पालि सूरसेनि आगरी । सर्व इलीपियों में शुद्ध स्पष्ट देवनागरी ॥ मारवाड़ी मागधी जितेन्द्र धर्म सागरी । भोड़ सिन्धि कच्छिगी पिसोरटी उजागरी ॥ लिपि देश देश की अनेक जाग जागरी । सर्व में शिरोमणी प्रसिद्ध देवनागरी ॥ ६ ॥

छप्पय ॥

पढ़ि २ केतिक भये मूढ़ नर जग महँ पण्डित ।
बुद्धिमान बलवन्त किते रह रनमहँ मण्डित ॥
केतिक देश विदेश घूमि बहु चतुर भये नर ।
कीन्ह किते धन जोरि २ परिपूरन घर दर ॥
ये जन्म लीन्ह पुनि चलिबसे बुधिबल धन बिन आगरी ।
कृत न नहिं जो देश लगि जन्म लियो सोइ नागरी॥७॥

धर्म तो लुकात जात कोने में। भक्ष्याभक्ष्य आदि का विचार सब छूटा जात लागत न देर निजवर्णधर्म खोने में॥ सेवा वृत्ति छोड़के न और व्यवसाय होत कौनभारी लाभ ऐसे विद्यावान होने में। विद्या वृद्धि साथ धन धर्मकी जो वृद्धि होति कहै द्विज दीन तो सुगन्ध होत सोने में॥ ८॥

स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपिद्विजः।
महानवम्यांद्वादश्यां भरण्यामपिपर्व्वसु॥ १॥
तथाक्षयातृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः।
माघमासेतुसप्तम्यां रथ्याख्यायान्तुवर्जयेत्॥२॥
अध्यापनंसमभ्यस्य स्नानकालेचवर्जयेत्।
नीयमानंशवंदृष्ट्वा महीस्थंवाद्विजोत्तमः॥ ३॥
नपठेद्रुदितंश्रुत्वा सन्ध्यायान्तुद्विजोत्तमाः।
दानानिचप्रदेयानि गृहस्थेनद्विजोत्तमाः॥ ४॥
हिरण्यदानंगोदानं पृथ्वीदानंतथैवच।
एवंधर्म्मोगृहस्थस्य सारभूतउदाहृतः॥ ५॥
यएवंश्रद्धयाकुर्यात् सयातिब्रह्मणःपदम्।
ज्ञानोत्कर्षश्चतस्यस्यान्नारसिंहप्रसादतः॥ ६॥
तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्रह्म[illegible]द्विजसत्तमाः।
एवंहिविप्राःकथितोमयावः[illegible]तःशाश्वत[illegible]

नोट—[illegible]

राशिः। गृहीगृहस्थस्यसतोहिधर्म्मं कुर्वन्प्रयाया हरिमोतियुक्तम् ॥ ८ ॥

जो ये सम्पूर्ण अनध्याय धर्म्मशास्त्र और पुराणों में कहे हैं कि कार्तिक सुदी महानवमी (भादों सुदी) द्वादशी भरणी नक्षत्रयुत पर्व अक्षय तृतीया (बैशाख सुदी ३) इनमें भी शिष्यों को न पढ़ावै माघ महीने की रथ सप्तमी को भी वर्जि देवे उबटना करने के और स्नानके समय पढ़ाने को वर्जिदे शव (मुर्दा) को ले जाते अथवा पृथ्वी पर पड़े को देखकर अथवा रोने को सुनकर और सन्ध्या के समय हे द्विजोंमें उत्तमो ! न पढ़ो; और हे ब्राह्मणो ! ये दान भी गृहस्थी को देने कि सोना, गौ, पृथ्वी ये दान हैं यह गृहस्थी का साधारण धर्म कहा जो श्रद्धासे इसप्रकार करता है यह नरहरि (वैकुण्ठ) को प्राप्त होताहै और नृसिंह भगवान की कृपासे उस ज्ञानकी अधिकता होतीहै

इन शिष्योंको वेदआदि पढ़ाना कि अपने आचार्य का पुत्र और शुश्रूषा (सेवा) करनेवाला और इतर ज्ञानका दाता और धर्मका ज्ञाता और मिट्टी और जल से शुद्ध और आप्त (अपना बन्धु) और शक्त (पढ़े हुये को समझने और धारण करने में समर्थ) और द्रव्यका ज्ञाता साधु और अपनी ज्ञाति इन दश शिष्यों को धर्म से पढ़ावै ॥ ९ ॥

नापृष्टःकस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेनपृच्छतः।
जानन्नपिहिमेधावी जडवल्लोकमाचरेत् ॥ १० ॥

जिसने एक दो अक्षर और स्वरहीन पढ़ाहो अर्थात् विना पूछेही किसी अन्यको पढ़ाते हुये गुरु से सुनकर कण्ठ कियाहो उसको तत्त्व न बतावै और अपने शिष्यको तो विना पूछे भी बता दे और भक्ति और श्रद्धासे रहित होकर जो अन्याय से पूछे उसको भी न बतावे और बुद्धिमान् मनुष्य जानता हुआ भी जगत् में जड़ (मूक) के समान व्यवहार करे अर्थात् अपने गुणको विदित न करे ॥ १० ॥

अधर्मेणचयःप्राहयश्चाधर्मेणपृच्छति।
तयोरन्यतरःप्रैतिविद्वेषंवाधिगच्छति ॥ ११ ॥

पूर्व श्लोक में कहेहुये दोनों निषेधों के न माननेमें यह दोष है कि जो अन्याय से कहै अथवा जो अन्याय से पूछे उन दोनों में से एक मृत्युको प्राप्तहोताहै अथवा

उसके संग विद्वेष (वैर) को प्राप्त होता है अर्थात् न्याय से कहना और पूछना दोनों निषेध हैं॥ ११ ॥

धर्मार्थौयत्रनस्यातां शुश्रूषावापितद्विधा ।
तत्रविद्यानवक्तव्या शुभंबीजमिवोषरे ॥ १२ ॥

जिस शिष्यमें धर्म अथवा अर्थ (धन) न हों अर्थात् जो धार्मिक न हो अथवा जिससे धन न मिले अध्यापन के समय होने योग्य जो सेवा भी न करे उसको विद्याका उपदेश इसप्रकार न करे जैसे अच्छा बीज ऊसर भूमिमें धन लेकर पढ़ाने में भृतकाध्यापनपने के होने की शंका नहीं करनी क्योंकि उसमें यह नियम नहीं है कि यदि मुझे इतना धन दोगे तो इतना पढ़ाऊंगा यदि यह नियम होगा तो उक्त दोष है॥ १२॥ मनु०॥

विद्ययैवसमंकामं मर्तव्यंब्रह्मवादिना ।
आपद्यपिहिघोरायां नत्वेनामिरिणेवपेत् ॥ १३॥
विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेस्मिरक्षमाम् ।
असूयकायमांमादास्तथास्यांवीर्यवत्तमा ॥ १४॥

फिर भी छान्दोग्य ब्राह्मण में यह कहा कि—

विद्ययासार्द्धंम्रियतेनविद्यामूषरेवपेत् ।

विद्या के साथही मरजावे परन्तु ऊपर में विद्याको नहीं बोवे याने मूर्खको कदापि नहीं पढ़ावे ॥

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मित्वमु माञ्चपालय। अनर्हतेमानिनेचैवमादा गोपायमां श्रेयसीतथाहमस्मीति ॥

विद्या ब्राह्मणके पास आई और कहा कि मैं तेरी हूं तू मेरी पालना कर और जो तेरी सेवा न करे उसे मुझे मत दे अगर देगा तो मैं बड़े वीर्यवाली हो जाऊंगी इससे न देना ॥

तएवहित्रयोलोकास्त एवत्रयआश्रमाः ।
तएवहित्रयोवेदास्तएवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ १५ ॥

जिससे माता पिता आचार्य ये तीनों ही तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्निरूप हैं इससे अपमान करने योग्य नहीं हैं ॥ १५ ॥

पितावैगार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेतागरीयसी ॥ १६ ॥

पिताही गार्हपत्य अग्नि और माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि है ये तीनों अग्नियां

के समूह अत्यन्त श्रेष्ठ हैं यह वचन स्तुति के लिये है
इससे वस्तुतः विरोध नहीं समझना ॥ १६ ॥

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही ।
दीप्यमानःस्ववपुषा देववद्दिविमोदते ॥ १७॥

इन तीनों में प्रमाद को नहीं करता हुआ, गृहस्थी तीनो लोकोंको जीतता है और अपने देहसे दिप्त हुआ स्वर्गमें देवताओंकी तुल्य आनन्द भोगता है१७॥

इमंलोकंमातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषयात्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ १८ ॥

माता की भक्ति (सेवा) से इस लोक को पिता की भक्तिसे मध्यम (अन्तरिक्ष) लोक को और आचार्य की भक्ति से ब्रह्मा के लोक को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैतेत्रयआदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाःक्रियाः १९

करै किन्तु उनकी प्रीति और हितमें तत्पर हुआ उन की ही सेवा करै ॥ २० ॥

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यंयद्यदाचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ २१ ॥

उनके अविरोध से (अनुकूलता)से जो २ परलोक में फलदाता कर्म्म करै उन तीनोंको इसप्रकार निवेदन करै कि मैंने यह काम किया है ॥ २१ ॥

त्रिष्वेतेष्विवकृत्यंहि पुरुषस्यसमाप्यते ।
एषधर्मःपरःसाक्षादुपधर्मोऽन्यउच्यते ॥ २२ ॥

इन तीनोंकी शुश्रूषासे पुरुषका सम्पूर्ण कर्म सफल होताहै इससे यही साक्षात् परमधर्म है और इससे अन्य उपधर्म (निषिद्ध) है ॥ २२ ॥

दुर्गा महिमा और अङ्कपाद व्रतका विधान कहते हैं ॥

राजा युधिष्ठिरजी पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! घड़े घोर वन में समुद्रतारण में संग्राममें चोर आदिके भयसे व्याकुल हुआ मनुष्य किस देवता का स्मरण करै जो इस संकट के समय उसकी रक्षा करै यह आप वर्णन करें ॥

तब श्रीकृष्णचन्द्रजी कहनेलगे कि हे राजा युधिष्ठिरजी ! सर्वमंगल मंगला श्रीदुर्गा भगवती का स्मरण करनेहारा पुरुष कभी दुःख और भयको नहीं प्राप्तहोताहै

जब हम और बलदेवजी अपने गुरुसे सब विद्या पढ़ चुके उससमय हमने गुरुदक्षिणा के लिये कहा तब गुरु ने हमारा दिव्यप्रभाव जानकर यही कहा कि हे पुत्र! हमारा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गयाथा सो वहां उसको किसीने मार दिया अब हम उसी पुत्रको चाहते हैं जहां हो वहां से तुम लाकर हमको दे दो तब हम यमलोक को गये वहां से गुरुपुत्र लेकर गुरुके समीप आये और उनको उन का पुत्र दिया और हम गुरुको प्रणाम कर चलने लगे॥

तब गुरुने कहा कि हे पुत्र! इस स्थानमें तुम अपने पाद का चिह्न कर जाओ॥

तब हमने भी गुरुकी आज्ञानुसार किया उस दिन से दक्षिणपाद बलदेवजी का मध्य में सर्वमंगला देवी जी का और वाम पाद हमारा सब वहां पूजते हैं प्रतिमासकी शुक्ल त्रयोदशी को एकभक्त नक्त अथवा उपवास रहकर मृत्तिका अथवा सुवर्णकी प्रति बनाय गंध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु, शीधु, सुरा और सब मांस और बलिदान करके जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करे वह सब पापों से मुक्तहो स्वर्ग में निवास करता है जहां शुक्ल त्रयोदशी को पुष्प, मांस, सुरा, बलि आदि करके पाद के अंकका पूजन कियाजाय वहां बीमारी दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते हैं॥

इति श्रीसामवेदिपण्डितशिवगोविन्दकृतसभाष्य कुलोचितधर्मशिक्षायांत्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पापाद्भवेदन्धः कस्मात्पापाद्दरिद्रता ।
कस्मात्पापाद्भवेत्कुष्ठी वददेवजनार्दन ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

परदारभवादन्धः परदेवाद्दरिद्रता ।
पूर्वहत्याभवात्कुष्ठी शृणुहे पाण्डुनन्दन ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पुण्याल्लभेत्स्वर्णंकस्मात्पुण्याद्गजाश्वकम्
कस्मात्पुण्याल्लभेन्नाकं कथयस्वजनार्दन ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

हेमदानाल्लभेत्स्वर्णं भूमिदानाद्गजाश्वकम् ।
अन्नदानाल्लभेत्स्वर्गं श्रूयतांपाण्डुनन्दन॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पापान्म्रियेन्नारीकस्मात्पापादपुत्रता ।
कस्मात्पापाद्भवेत्षण्ढो वददेवजनार्दन ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

ऋणपापान्म्रियेद्भार्या योनिपापादपुत्रता ।
मनोभङ्गाद्भवेत्षण्ढो श्रूयतांपाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥

अर्जुन उवाच ॥
त्पुण्यात्सदाभोगी वददेवजनार्दन ॥ ७ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥
द्दानाद्भवेद्रोगी श्रूयतांपाण्डुनन्दन ॥ ८ ॥
अर्जुन उवाच ॥
त्पुण्याल्लभेदर्थं किम्पुण्यात्पूतपुत्रकम् ।
त्पुण्याल्लभेद्रूपं वददेवजनार्दन ॥ ९ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥
नाल्लभेदर्थं सुकाव्यात्पूतपुत्रकम् ।
नानाल्लभेद्रूपं श्रूयतांपाण्डुनन्दन ॥१०॥
अर्जुन उवाच ॥
पान्नरकंयाति कस्मात्पापादपुत्रता ।
त्पापाद्भवेद्रोगी वददेवजनार्दन॥ ११ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥
धनादधोयाति ब्रह्मदोषादपुत्रता ।
पाद्भवेद्रोगी श्रूयतांपाण्डुनन्दन ॥ १२ ॥
अर्जुन उवाच ॥
त्पापाद्भवेद्वन्ध्या कस्माद्गर्भक्षयोभवेत् ।
त्पापान्म्रियेद्बालःकथयस्वजनार्दन १३॥

श्रीभगवानुवाच ॥

गर्भपाताद्भवेद्वन्ध्या तस्माद्गर्भक्षयोभवेत्।
पितृदोषान्म्रियेद्बालः शृणुभोःपाण्डुनन्दन १४

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पुण्याल्लभेद्राज्यंकस्मात्पुण्याद्धनाधिकम्।
कस्मात्पुण्याल्लभेद्विद्यां वददेवजनार्दन १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

वाराणस्यांमृतेराज्यं यज्ञादिभ्योधनादिकम्।
पूर्वपुण्याल्लभेद्विद्यां श्रूयतांपाण्डुनन्दन १६ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पापाद्भवेद्भेकः कस्मात्पापाच्चगर्दभः।
कस्मात्पापाद्भवेच्छ्वाच वददेवदयानिधे १७ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

सुरापानाद्भवेद्भेको वेश्यासङ्गाच्चगर्दभः।
मृतसङ्गाद्भवेच्छ्वावा श्रूयतांपाण्डुनन्दन १८ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पापाद्भवेत्काणः कस्मात्पापाच्चपङ्गुला।
कस्मात्पापात्कर्महीनो वददेवजनार्दन १९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

दृष्टिपापाद्भवेत्काणस्तीर्थपापाच्चपङ्गुला।

अविश्वासात्कर्महीनः श्रूयतांपाण्डुनन्दन २० ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पापाद्भवेन्म्लेच्छः कस्मात्पापाच्चतस्करः ।
कस्मात्पापान्मित्रद्रोही कथयस्वजनार्दन २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

धर्माभावाद्भवेन्म्लेच्छः कान्तानग्नात्तुतस्करः ।
कुपानान्मित्रद्रोहीस्याच्छृणुहेपाण्डुनन्दन २२ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कस्मात्पुण्याल्लभेत्सङ्गं कस्मात्पुण्याच्चमुक्तिकम् ।
कस्मात्पुण्याद्भवेज्ज्ञानी कथ्यतांसुरसत्तम २३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

द्रव्यदानाल्लभेत्सङ्गं ब्रह्मज्ञानात्तुमुक्तिकम् ।
आत्मज्ञानाच्चविज्ञानी श्रूयतांपाण्डुनन्दन २४ ॥

इति कृष्णार्जुनसंवादः समाप्ति पर्काण ॥

कौशल्याप्रति भरतजीको शपथ करना ॥

चौ० ॥ छलविहीन शुचि सरल सुवाणी । बोले भरत जोरि युगपाणी ॥ जो अघ मातु पिता गुरु मारे । गाइ गोठ महिसुर पुर जारे ॥ जो अघ तिय बालक वध कीन्हे । मीन महीपति माहुर दीन्हे ॥ जो पातक उपपातक अहहीं । कर्म वचन मन भव कवि कहहीं ॥ सो पातक

म्वहिं देहु विधाता। जो यह होइ मोर मत माता॥

दोहा॥

जो परिहरि हरि हर चरण, भजहिं भूतगण घोर।
तिनकै गति म्वहिं देहुविधि, जो जननी मत मोर॥

चौ०॥ वंचहिं वेद धर्म्म दुहि लेहीं। पिशुन पराव पाप कहि देहीं॥ कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। वेद विदूषक सन्तविरोधी॥ लोभी लम्पट लोलुप चारा। जो ताकहिं परधन परदारा॥ पावउँ मैं तिन कै गति घोरा। जो जननी यह सम्मत मोरा॥ जो नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ विमुख अभागे॥ जो न भजैं हरि नरतनु पाई। जिनहिं न हरि हर सुयश सुहाई॥ तजि श्रुति पन्थ वामपथ चलहीं। वंचक विरचि वेष जग छलहीं॥ तिनकै गति म्वहिं शंकर देऊ। जो जननी यह जानहुँ भेऊ॥

छन्द॥

मन वचन कर्म्म कृपायतन कर दास मैं सुनु मातुरी।
उर वसत राम सुजान जानत प्रीति अरु छल चातुरी॥
अस कहत लोचन वहन जल तनु पुलकलखेउ नमहीं।
हिय लाय लिये बहोरि जननी जानि प्रभु पदरत सहीं॥

वशिष्ठजी का भरतजी को उपदेश देना॥

चौ०॥ वामदेव वशिष्ठ मुनि आये। सचिव महाजन सकल बुलाये॥ मुनि बहुभाँति भरत उपदेशे। कहि

परमारथ वचन सुदेशे॥ बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥ भरत वशिष्ठ निकट बैठारे। नीति धर्म्ममय वचन उचारे॥ प्रथम कथा सब मुनिवर बरणी। केकयि कुटिल कीन्हि जसि करणी॥ भूप धर्म्म व्रत सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥ कहत राम गुण शील सुभाऊ। सजल नयन पुलके मुनिराऊ॥

दोहा॥

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कही मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ॥

चौ०॥ अस विचारि केहि दीजिय दोषू। व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू॥ तात विचार करहु मनमाहीं। शोच योग दशरथ नृप नाहीं॥ शोचिय विप्र जो वेदविहीना। तजि निज धर्म्म विषय लयलीना॥ शोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राणसमाना॥ शोचिय वैश्य कृपण धनवानू। जो न अतिथि शिव भक्त सुजानू॥ शोचिय शूद्र विप्र अपमानी। मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी॥ शोचिय पुनि पतिवंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥ शोचिय बटु निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दोहा॥

शोचिय गृही जो मोहवश, करै धर्म्मपथ त्याग।
शोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग॥

चौ०। वैखानस सोइ शोचन योगू। तप विहाय जेहि भावै भोगू॥ शोचिय पिशुन अकारणक्रोधी। जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी॥ सब विधि शोचिय परअपकारी। निजतनुपोषक निर्दय भारी॥ शोचनीय सबही विधि सोई। जो न छांड़ि छल हरिजन होई॥ शोचनीय नहिं कोशलराऊ। भुवन चारिदश प्रकट प्रभाऊ॥ भयउ न हैं नहिं होनेहुहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥ विधि हरि हर सुरपति दिशिनाथा। वर्णहिं सब दशरथगुणगाथा॥

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं
राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना
गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र॥ १॥

रसोई में सब पदार्थ तैयार हैं परन्तु घृत नहीं तो रसोई बिना घृत शोभा को नहीं प्राप्त होती, शहर सुन्दर बना हुआ है लेकिन उस शहर में राजा नहीं है तो वह शहर शोभा को नहीं प्राप्त होता और सभा के मध्य में विद्वान् पण्डित प्राप्त है लेकिन उसके अन्दर बोल नहीं सकता अर्थात् शर्म करता है तो पड़ना सभा में शोभा को नहीं प्राप्त हुआ और ज्योतिष को विद्वान् ने पढ़ा है परन्तु गोलाध्याय गणित जिसने नहीं पढ़ा तो उसका ज्योतिष का पढ़ना सभा में शोभा को नहीं प्राप्त होता है १

कुण्डलिया ॥

वैरि बन्धुआ बानियां ज्वारी चोर लवार।
व्यभिचारी रोगी ऋणी नगरनारिको यार ॥
नगरनारि को यार भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौ सौहैं खाय चित्त एकौ नहिं दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय घरै आवै अनगैरी।
हितकी कहै बनाय चित्तमें पूरो वैरी १ ॥
विना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो जग में होत हँसाय ॥
जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सनमान राग रँग मनहिं न आवै ॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जियमाहिं कियो जो विना विचारे २ ॥

आत्मबुद्धिसुखंचैव गुरुबुद्धिविशेषतः।
परबुद्धिविनाशाय स्त्रीबुद्धिप्रलयंकृतः ॥ २ ॥
हितन्नवाच्यमहितन्नवाच्यं
हिताहितन्नैवकदापिवाच्यम्।
सौराष्ट्रदेशे शिवनामयोगी
हितोपदेशे मरणं प्रयाति ॥ ३ ॥

इति योगीवाक्यम् ॥

[स्व, से, मी, रा,]

श्वासासारःशरीरस्य वाचासारोमहीपतेः।
वाचाविचलतेयेन तेहरन्तिशुकृन्तिच ४॥
सेतुवद्धसमुद्रस्य महानद्यांसमागमः।
ब्रह्महामुच्यतेकाश्यां मित्रद्रोहीनमुच्यते ५॥
मित्रद्रोहीकृतघ्नीच येचविश्वासघातकाः।
तेनरानरकंयान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ६॥
राजोवाराजपुत्रोवा ब्राह्मणोवातथाविदुः।
यस्तुपापंसुकुर्वीत सयातिनरकंध्रुवम् ७॥

इति कालिदासवाक्यम्॥

गृहेवसतिकल्याणी गृहादन्यत्रगच्छति।
सिंहभल्लुमनुष्याणां कथंजानातिसुन्दरि ८॥

इति राजभोजवाक्यम्॥

देवींगुरुप्रसादेन जिह्वायांमेसरस्वती।
तस्मात्सर्वंविजानीयाद्भानुमत्यास्तिलंयथा ९॥

गतन्न शोचामि कृतं न मन्ये
खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्
किं कारणं भोज भवामि मूर्खः १०॥

इति कालिदासवाक्यम्॥

आदौमैत्रींपुनर्वैरं पुनर्मैत्रीं न कारयेत् ।
स्मरणं पुत्रतःशोकं स्मरणंममपुच्छकम् ११ ॥
परस्परारिमर्माणि ये वदन्ति नराधमाः ।
तेनराश्चत्तयंयान्ति वल्मीकाद्वैद्विसर्पयोः १२॥
इति सर्पवाक्यम् ॥

दिवसस्याष्टमेभागे साकंपततिस्वगृहे ।
अनृणी च प्रवासी च सवारिपरमोदितः १३ ॥
इति महाभारतवाक्यम् ॥

दोहा ॥

सातद्वीप नवखण्ड में, आयो जम्बूद्वीप ।
बिना फिकिर का मानवा, भयो न दृष्टि समीप ॥
चौ० ॥ बिन सन्तोष न काम नशाहीं ।
काम अछत चिनु सपनेहु नाहीं ॥

असंतुष्टाद्विजानष्टाः संतुष्टश्चमहीपतिः ।
सलज्जागणिकानष्टा निर्लज्जाचकुलाङ्गना १४
नित्यंछेदस्तृणानां भुवि नखलिखनं पादयोर
ल्पशौचं दन्तानामल्पपूजा वसनमलिनता रूक्षता
मूर्धजानाम् । सन्ध्याकाले च निद्रां विवसनशय
नं ग्रासहासातिरेकं स्वाङ्गेवाद्यञ्च पुंसान्निधनमुप
नयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीः १५ ॥

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं
मेघस्य मार्गं यमदण्डकालम् ।
स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतोमनुष्यः १६ ॥
शशिनिखलु कलङ्कः कण्टकोपद्मनालः
उदधिजलमपेयं पण्डिते निर्धनत्वम् ।
धनवति कृपणत्वं निर्भगत्वं सुरूपे
स्वजनजनवियोगे निर्विवेकी विधाता १७ ॥
इक्षोरसाया मतयःकवीनां
गवांरसां बालकभाषणञ्च ।
ताम्बूलमन्नं युवतीकटाक्ष-
मेते पदार्था न भवन्ति स्वर्गे १८ ॥

अथ गुरुमहिमा व्याख्यायते ।

दोहा॥

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकरबारि।
यदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥

सोरठा॥

फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै बिरंचिसम॥

चौ०। जो अहिसेज शयन हरि करहीं। बुध कछु तिन कहँ दोष न धरहीं॥ भानु कृशानु सर्व्व रस खाहीं। तिनकहँ मन्द कहत कोउ नाहीं॥ शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहहीं। सुरसरि कोउ न अपावन कहहीं॥ समरथ कहँ नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

दोहा॥

जो ऐसहि ईर्षा करहिं, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं कल्पभरि नरक महँ, जीव कि ईशसमान॥

चौ०। सुरसरि जलकृत वारुणि जाना। कबहुँ न सन्त करहिं तेहि पाना॥ सुरसरि मिले सुहावन जैसे। ईश अनीशहि अन्तर तैसे॥ पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्रपदपूजा॥ सानुकूल तिहिंपर सबदेवा। जो तजि कपट करै द्विजसेवा॥

दोहा॥

अवरौ एक गुप्तमत, सबहिं कहौं करजोरि।
शङ्कर भजन बिना नर, भक्ति न पावहिं मोरि॥

चौ०। जपहु जाय शंकर शत नामा। होइहि हृदय

तुरत विश्रामा॥ कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे। अस प्रतीति त्यागहु जनि भोरे॥ जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी॥ अस उर धरि महि विचरहु जाई। अब न तुमहिं माया नियराई॥

दोहा॥

बहु विधि मुनिहिं प्रबोधि प्रभु, तब भे अन्तर्द्धान।
सत्यलोक नारद चले, करत विष्णुगुणगान॥

चौ०। तब रघुराज अनुज उरलावा। निज आसन समीप बैठावा॥ मघवासुतसुत अरु हनुमाना। इन सम भाग्यवन्त नहिं आना॥ अमलाम्बुज पद गहि निज पानी। परसे सबनि सनेह भवानी॥ जामवंत लंकेश हरीशा। प्रभु समीप सब मुदित मुनीशा॥ अनुज सखा नारान्तक करणी। युद्धप्रसङ्गना बहुविधि बरणी॥ शिव प्रसाद तेहि अमित प्रतापा। मरत न दीन्हे बहु संतापा॥ सुने वचन रघुपति मुसुकाने। अतिसनेह हरचरित बखाने॥ सुनहु सकल हरि शम्भु न आना। जिनहिं भेद ते वश अज्ञाना॥

दोहा॥

जे सुमिरहिं शिव सह उमा, ते जानहु मम प्रीय।
शंकर भजहिं सो मोहिं भजैं, मोहिं सो शम्भु अतीय॥

चौ०। चारि पदारथ करतल ताके। बसहि महेश उमा उर जाके॥ जो मम भक्त शिव सदा निवाहा। सो जय देत न संशय आहा॥ सुख कल्पन जय विनय

विभूती । शंकर सुमिरत होइ अकूती ॥ भक्ति मोरि शंकर आधीना । जलाधीन जिमि जीवन मीना ॥ कह आश्चर्य नरान्तक एहा । मोपर गिरिपति परम सनेहा ॥ सुमिरहु सदा शिव यक नाथा । कपट त्यागि सब नावहु माथा ॥ होइहि विजय धीर मन धरहू । वेगि उपाव पाव सुख करहू ॥ शम्भु उपासनकर मम दासा । तात हृदय धरि दृढ़ विश्वासा ॥

दोहा ॥

जो नर चाहत भक्ति मम, सो छल कपट दुराइ ।
शिवा समेत गिरीश पद, निशि दिन रह मनलाइ ॥

चौ० । मन क्रम वचन शम्भु पद आसा । करहिं ताहि उर सब गुण वासा ॥ निर्भय कर जो हरपद नेहू । ता उर रमा सहित मम गेहू ॥ भववारिधि नाँघहिं बिनु खेवहिं । यह विचारि बुधजन भव सेवहिं ॥ भवभंजन यह हित उपदेशा । अनुजहि सखहिं बुझाव रमेशा ॥ शुभ वाणी सुनि अतिसुखपावा । कपिपति राम चरण शिरनावा ॥ अंगद हनूमान नलनीला । कपिपति आदि सकल सुशीला ॥ सहित विभीषण राजन माना । सुनि श्रीमुख हरयश विलखाना ॥ रामहिं शिवहि एक जे जाने । भय तजि नाम जपत हरषाने ॥ लिंग थापि विधिवत करि पूजा । शिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥ शिवद्रोही मम दास कहावे । सो नर सपनेहु मोहि न पावे ॥ शंकरविमुख भक्ति चह मोरी । सो नर मूढ़ मन्द मति थोरी ॥

दोहा ॥

शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ वास ॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखण्डी हरपद विमुख, जानहिं झूठ न सांच ॥

चौ०। अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥ लम्पट कपटी कुटिल विशेखी। सपनेहु संतसभा नहिं देखी ॥ कहहिं ते वेद असम्मत वानी। जिनहिं न सूझ लाभ अरु हानी ॥ मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। शिवरूपहि देखहिं किमि दीना ॥ जिनके अगुण न सगुण विवेका। जल्पहिं कल्पित वचन अनेका ॥ हर माया वश जगत भ्रमाहीं। तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥ वातुल भूत विवश मतवारे। ते नहिं बोलहिं वचन सँभारे ॥ जिन कृत महामोह मद पाना। तिनकर कहा करिय नहिं काना ॥ बिनु गुन भवनिधि तरै न कोई। जो विरंचि शंकरसम होई ॥

वेद में तीन काण्ड हैं कर्मकाण्ड व उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड—कर्मसेही मन शुद्ध होता है उस में उपासना में अधिकार उसके द्वारा ईश्वरसाक्षित्व और ज्ञान से मोक्ष (मुक्ति) होता है, वैदिककर्म मुख्य कर यज्ञ है, वह दो प्रकारका है आभ्यन्तर और वाह्य, नवीन अधिकारी उसको वाह्य उपकरण से करते हैं और ज्ञानी उसको मनमें करते हैं, स्वजनादि अभ्यास

से अनन्तर अभ्यास दृढ़ होता है, वाह्य साधन दर्श पौर्णमास से अग्निहोत्र पर्य्यन्त लिखे हैं, अब ज्ञानियों के अनन्तर साधन को दिखाते हैं कि जिस यज्ञ को ज्ञानी ब्राह्मणादि निरन्तर सम्पादन करते हैं यूपरसना से शोभित इस शरीर यज्ञका यजमान पत्नी ऋत्विज्, अध्वर्यु, होता, ब्राह्मणाच्छंसी इत्यादि वर्णन करते हैं, जितनी सामग्री यज्ञ में होती हैं उनको इस शरीरयज्ञ में वर्णन करते हैं, यथाहि—

अस्य शरीरयज्ञस्य यूपरसनाशोभितस्य आत्मा यजमानः, बुद्धिः पत्नी, वेदा महर्त्विजः, प्राणो ब्राह्मणाच्छंसी, अपानः प्रतिप्रस्थाता, व्यानः प्रस्तोता, समानो मैत्रावरुणः, उदान उद्गाता, अहङ्कारोऽध्वर्युः, होता चित्तं, शरीरं वेदिः, नासिकोत्तरवेदिः, मूर्द्धा द्रोणकलशः, दक्षिणहस्तः स्रुवः, सव्यहस्त आज्यस्थाली, श्रोत्रे आघारौ, चक्षुषी आज्यभागौ, ग्रीवा धारापोता, तन्मात्राणि सदस्याः, महाभूतानि प्रयाजाः, भूतान्यनुयाजाः, जिह्वेडा, दन्तोष्ठौ सूक्तवाकः, तालुः शंयोर्वाकः, स्मृतिर्दयाक्षान्तिरहिंसापत्नीसंयाजाः ओंकारो यूपः, आशा रसना, मनो रथः, कामः पशुः, केशा दर्भाः, बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि, कर्मेन्द्रि-

याणि हवींषि, अहिंसा इष्टयः, त्यागो दक्षिणा, अवभृथं मरणात्।

"सर्वाह्यस्मिन्देवताःशरीरेऽधिसमाहिताः।
वाराणस्यांमृतोवापि इदं वा ब्रह्म यःपठेत्॥"

एकेनजन्मनाजन्तुर्मोक्षञ्च प्राप्नुयादितिप्राणाग्निहोत्रोपनिषद् खं० ४ यह उपनिषद् चार खण्डों में है यहां हमने कार्य्यमात्र लिखा है। सूर्य्य अग्नि मूर्धा स्थान में स्थित है, दर्शनाग्नि आहवनीयरूप से मुख में स्थित है, जाठराग्नि दक्षिणाग्नि है यह हृदय में स्थितहै, कोष्ठाग्नि गार्हपत्यरूप से नाभि मध्य में स्थित है, इस शरीर में इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा मुख्य तीन नाड़ी हैं—ललाट में स्थित चन्द्रमण्डल से नाड़ी द्वारा च्युत हुये शुक्ररूप अमृत से प्रजा उत्पत्ति के कर्मवाला पुंलिङ्ग मूल अग्निकुण्ड मध्य में है, उस अग्निकुण्ड में पतित हुआ शुक्र प्राणसे आकृष्टहो लिङ्गद्वारा गर्भाशय में प्रवेश कर प्रजा होता है इससे यह शरीर अग्नीषोमात्मक है। अब इसके यजमानादि कहते हैं अस्येति—यूपरसनाशोभित शरीर यज्ञ का आत्मा यजमान है, बुद्धि पत्नी, वेदमहाऋत्विक्, प्राण ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विक्, अपान प्रतिप्रस्थाता ऋत्विक् अहङ्कारी व्यान प्रस्तोता स्तुति करनेवाला ऋत्विक्, समान मैत्रावरुण ऋत्विक्, उदान उद्गाता ऋत्विक्, अहंकार

अध्वर्य्यु, होता हवन करनेवाला चित्त, शरीर वेदि, नासिका उत्तरवेदि, मूर्द्धा शिर द्रोणकलश, दक्षिण हाथ स्रुव, बायां हाथ घृतस्थाली, दोनों कान आधार, दोनों नेत्र घृतभाग, गर्दन धारापोता (पात्रमानी, पढ़नेवाली), तन्मात्रा सभासद्, महाभूत प्रयाज (यज्ञ स्तुति), पंचभूत अनुयाज, जिह्वा इडापात्र, दन्तोष्ठ सूक्तवाक, तालु शंयोर्वाक, स्मृति दया सहनशीलता अहिंसा ये पत्नीसंयाज हैं, ॐकार यूप, आशा रस्सी, मन रथ, कामही पशु, बाल कुशा, बुद्धिइन्द्रिय यज्ञके पात्र, कर्मइन्द्रियही हवि, अहिंसा इष्टि, त्याग दक्षिणा, देहरूप मलका दूर करनाही यज्ञान्तस्नान है यदि कहो कि देवता के बिना यज्ञ किस प्रकार होगा इस पर कहते हैं सब अधिदैव अध्यात्म हैं, चक्षु आदि नें सूर्य्य आदि देवता स्थित हैं इस यज्ञको जो करते हैं उनको वाराणसी में मृतक हुये के समान मुक्ति होती है जो इसको पढ़ते हैं वे एकही जन्म में मुक्त होतेहैं। इस प्रकार से ज्ञानयज्ञ करनेसे मुक्ति होतीहै॥

इतनी बातको सुनकर ब्राह्मणों ने शङ्कराचार्यजी को प्रणाम किया और कहा कि हमको डूबतेहुये समुद्र से बाहर निकाला हम कृतार्थ भये और आपसे हम कभी उऋण नहीं हैं तब शङ्कराचार्यजीने कहा कि तुम उत्तम हो सब वेदमार्गको नहीं छोड़ना यद्यपि कोई तुम्हारी निन्दा भी करै तो सुन लेना परन्तु अपना कर्म नहीं

छोड़ना कि जैसे हाथी गांवमें जाताहै तो गांव के कुत्ते भूँकते हैं मगर हाथीका कुत्ते क्या करसक्के हैं हाथी कुछ भी ख्याल नहीं करता केवल अपनी चाल चला जाता है और फिर कुत्तेही आखिरको शर्मिन्दा होकर लौट पड़ते हैं ऐसेही वेदपाठियोंका निंदकलोग कुछभी नहीं करसक्के केवल निंदकलोग पीछे से शर्मिन्दाहोकर अपने मुख में स्याही लगाकर चुप होजाते हैं और हेब्राह्मणो! हमने तुमको बहुत तरहसे समझायाहै अब॥

चौ०। करहु जाय जाकहँ जो भावा।
हम तो जन्म सुफल करि पावा॥

ऐसा शंकराचार्यजी कह अन्तर्द्धान हुये तब ब्राह्मण लोग अपने २ यज्ञादिक नित्यनैमित्तिक कर्म व वैदिक तान्त्रिकधर्म्म में आरूढ़होगये और जिन ब्राह्मणों को शंकराचार्यजी ने शिक्षा दिया था वे तो आमरण रहे नहीं परन्तु उनके लड़के व नाती अपने पिता के [illegible] दो पीढ़ीतक धर्म करते रहे पाने राजा भोज के [illegible] धर्म करतेरहे और राजा भोज के [illegible] राज्य हुई

किसी प्रकारका भय न रहा और जो टूटा फूटा वैदिक (यज्ञादि) कर्म करते रहे फिर उन पाखण्डियों ने निंदा करना शुरू करदिया और अबके जो राजा लोग हैं वे धर्म कर्म्म को समझते नहीं हैं वरन विडम्बना करते हैं और जो शूद्र हैं वे यज्ञोपवीत धारण करनेलगे राजा से कहा जाताहै तो वे कहतेहै कि इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है तब तो शूद्रलोग द्विजातियों की निंदा कर अपने मुताबिक धर्म करते हैं इसी से प्रजा व धर्म की हानि होती है और जो वर्णाश्रम मनुष्यहैं वे अपनेही धर्म को अच्छा समझतेहैं कि हमाराही मुख्य धर्म है उसी धर्म में द्विजातियों ने जाकर उनके शिष्य होकर अपने धर्म को त्याग कर उनके धर्म में आरूढ़ होगये फिर वेद तन्त्र की निंदा करने लगे और उनके संग से द्विजातियों ने अपने २ धर्म छोड़दिये इसी से द्विजातियों को आज कल अनेकानेक क्लेश भोगने पड़ते हैं और द्विजातियों के साथ हमभी अपना धर्म नहीं करने पाते इसकारण सब ग्रन्थान्तरों के संग्रह से यह कुलोचितधर्म प्रकाशित कियाहै इससे यह प्रतीतहोता है कि वे लोग स्वकल्पित बातों को मान कर धर्मशास्त्र की निंदा करते हैं

में राजा दंड नहीं देता सो इसीतरह से कोई युगहो जब अन्याय होगा तब दंड तो अवश्यही मिलेगा इसमें संदेह नहीं है लेकिन दूसरों को शिक्षा देने के लिये ब्रह्मज्ञानी बनते हैं और आप भीतर अधर्मकरते हैं तो क्या यमराज दंड नहीं देंगे लेकिन इसमें कारण यही है कि जबतक द्विजातीय अपने गायत्रीमाताका ध्यान व जपनहींकरेंगे तबतक उनके हृदयकी शंका दूर न होगी और उनके हृदयमें धर्म की बात समझमें नहीं आवेगी चाहै जितनी विद्या पढ़ता चलाजाय लेकिन वगैर देवीकी आराधना किये विना सब विषय की बात समझ में नहीं आवेगी इससे अवश्य सरस्वतीजीकी आराधना करना चाहिये॥

यइदन्धारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमनन्द्रिताः।
इहलोकेयशःप्राप्य ते यास्यन्तित्रिविष्टपम्॥ १॥
विद्यार्थीप्राप्नुयाद्विद्यान्धनार्थीचधनन्तथा।
आयुःकामस्तथाचायुःश्रीकामोमहतींश्रियम्॥२॥
श्लोकत्रयमपिह्यस्माद्यःश्राद्धेश्रावयिष्यति।
पितॄणान्तस्यतृप्तिःस्यादक्षय्यानात्रसंशयः॥३॥
ब्राह्मणःपात्रतांयाति क्षत्रियोविजयीभवेत्।
वैश्यश्चधान्यधनवानस्यशास्त्रस्यधारणात्॥४॥
यइदंश्रावयेद्विद्वान्द्विजान्पर्वसुपर्वसु।
अश्वमेधफलंतस्यतद्भवाननुमन्यताम्॥ ५॥

जो लोग आलस्य छोड़कर इस धर्मशास्त्र को धारण करेंगे वे इस लोक में यश और अन्त में स्वर्ग को पावेंगे। विद्यार्थी विद्याको पाता धनकीइच्छा करनेवाला धन पाता है, आयु के चाहने वालों की आयु बढ़ती है और जो श्री (शोभा आदि) चाहे तो उसकी श्री बढ़ती है। जो श्राद्धसमय इनमें से तीन श्लोक भी सुनावेगा तो उसके पितरोंको अक्षयतृप्ति प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं। ब्राह्मण इस शास्त्र को पढ़े तो पात्र होजाता है क्षत्री विजयी होता है और वैश्य भी धन धान्य से युक्त होता है। जो पण्डित इस धर्मशास्त्रको हरएक पर्व में द्विजातियों को सुनावे उसको अश्वमेधयज्ञ का फल होता है इन सबबातोंकी श्री अनुमति आप करैं ॥१५॥

अनेकधर्मसद्ग्रन्थानालोच्येदंकुलोचितम् ।
निर्मितंधर्मसारंहि शिवगोविन्दशर्मणा ॥ ६ ॥
श्रीगुरुंमनसाभूयो ध्यात्वालक्ष्मणपत्तने ।
सप्ताब्धिगोमहीवर्षे वैक्रमेपूरितंमया ॥ ७ ॥

इति श्रीउन्नामप्रदेशान्तर्गतबरौराग्रामनिवासिमिश्रा
शिवनगोत्रोद्भवमाधवप्रसादात्मजगोविन्द
कृतभाषाटीकाकुलोचितधर्मशिक्षायामेक
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति ग्रन्थःसमाप्तिमगाच्छुभम् ।
